हेमू और उनका युग

लेखक

मोती लाल भार्गव, एम० ए० डी० फिल

विभागीय उप-निरीक्षक शिक्षा प्रसार कार्यालय (शिविर) तथा भूतपूर्व

रिसर्च अधिकारी स्वतन्त्रता संग्राम इतिहास समिति

सचिवालय—उ० प्र० लखनऊ

१९६०

मूल्य—५)

सजिल्द—६)

मुद्रक—नव भारत प्रेस नादान महल रोड, लखनऊ।

मध्यकालीन भारत के
अमर शहीदों
को

पुस्तक के लिखने एवं प्रकाशन कराने के सम्बन्ध में मुझे जो प्रेरणा व सहायता पं० ज्वाला प्रसाद जी प्रयाग से मिली उसे भुलाया नहीं जा सकता। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का इतना शीघ्र प्रकाशन उन्हीं के अनवरत प्रयत्न का फल है।

प्रकाशकों व मुद्रकों ने इतनी शीघ्रता से पुस्तक मुद्रित कराके पाठकों के हाथों में पहुँचाया यह भी प्रशंसनीय है।

१५—१—१९६०

मो० ला० भार्गव

मध्यकालीन भारत के
अमर शहीदों
को

प्रस्तावना

मुसलमान शासकों से रचनात्मक सहयोग करनेवाले हिन्दुओं में हेमराज (हेमू) सबसे योग्य और अग्रणी कहा जा सकता है। उसका जन्म एक साधारण धूसर (दूसर) वैष्णव गृहस्थ के परिवार में हुआ जिसके पास न तो विशेष धन न राज और न सामन्ती बल था। एक साधारण व्यापारी से उसने जीवन आरम्भ किया और अपनी नैसर्गिक प्रतिभा उत्साह उद्यम एवं योग्यता से उसने अपनी प्रबन्ध शक्ति का प्रदर्शन किया जिससे सूरी वंश के इस्लाम शाह का और विशेष रूप से उसके चचाजाद भाई एवं साले मुबारिज खाँ का ध्यान आकर्षित हुआ। इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद जब मुबारिज खाँ दिल्ली के सिंहासन पर बैठा तब उसने हेमराज को आमंत्रित कर पाकशाला का निरीक्षक नियुक्त किया जिससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि वह सुल्तान का विश्वास पात्र था।

मुबारिज में वह योग्यता न था जिससे वह दुर्दमनीय अफगान सरदारों को अपने वश में रख सकता। सरदारों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे सुल्तान और उसकी सल्तनत को विनष्ट कर देंगे। ऐसी भयंकर स्थिति में सुल्तान को हेमराज ने आश्वासन दिया। विश्वासपात्र समझकर सुल्तान ने हेमराज को अपना मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। सल्तनत के इतिहास में हेमराज ही एकमात्र हिन्दू था जिसको यह महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने का गौरव प्राप्त हुआ। हेमराज को अपनी प्रतिभा और प्रबन्ध शक्ति का पूर्ण विकास पाने का अवसर मिला। अपने विलक्षण योग्यता उसने सेनापतित्व में प्रदर्शित की। सैन्य संगठन शासन तथा संचालन में उसने जो दक्षता दिखाई वह अद्वितीय थी। उसकी समता मुगल साम्राज्य का कोई हिन्दू सेनापति अथवा मुसलमान अमीरवर्ग भी संभवतः न कर सका। उसने बाईस युद्ध किए और प्रत्येक में विजय भी उसको प्राप्त हुई। विद्रोही अफगान सरदार उससे जितना भय खाते थे उतना ही उसके अफगान अनुयायी उससे अनुरक्त थे। अपने सहयोगी अफगान सरदारों और सैनिकों में उसने जो उत्साह साहस और विश्वास उत्पन्न कर दिया था वैसा न तो कभी उसके पहले और न बाद को मुसलमान शासनकाल के इतिहास में देखने में आया। हेमराज से हुमायूँ और उसके उद्भट सेनापति भी बहुत घबराते थे। यदि संयोगवश

विषय-सूची

		पृष्ठ
	प्रस्तावना	i
	दो शब्द	ii
	विषय-प्रवेश	१
१	जन्म व पितृ-परंपरा	११
२	अफगानों का उत्थान तथा हेमू	२४
३	हेमू का उत्थान	४०
४	हेमू की विजय	४७
५	हुमायूँ का अल्पकालीन शासन तथा हेमू	४८
६	दिल्ली पर आक्रमण तथा सिंहासनारोहण	७३
७	पानीपत की दूसरी लड़ाई	८४
८	हेमू का शहीद होना	९६
९	परिणाम व प्रतिकार	१०३
१०	दूसरों और अफगानों से मुगलों का राजीनामा	११३
	उपसंहार	१२१
	परिशिष्ट—क	१२५
	परिशिष्ट—ख	१२८

चित्र-सूची

		पृष्ठ के सामने
१	हेमू वीर	
२	हेमू का जन्म स्थान (अलवर का मानचित्र)	१०
३	ग्वालियर दुर्ग	३६
४	चुनार दुर्ग	५०
५	दिल्ली विजय	७३
६	हेमू का शिविर	७६

प्रस्तावना

मुसलमान शासकों से स्वतन्त्रता संग्राम करनेवाले हिन्दुओं में हेम चन्द्र (हेमू) प्रथम योद्धा और अग्रणी नेता कहा जा सकता है। उसका जन्म एक साधारण धूसर (दूसर) वैश्य जाति के परिवार में हुआ जिसके पास न तो विशेष धन, न राज्य और न सामग्री धन था। एक साधारण व्यापारी से उसने जीवन आरम्भ किया और अपनी असाधारण प्रतिभा, उत्साह, उद्यम एवं योग्यता से उसने अपनी प्रबन्ध शक्ति का प्रदर्शन किया जिससे सूरी वंश के इस्लाम शाह का और विशेष रूप से उसके भाग्यवान भाई एवं साले मुबारिज खां का ध्यान आकर्षित हुआ। इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद जब मुबारिज खां देहली के सिंहासन पर बैठा तब उसने हेमराज को आमन्त्रित कर पाकशाला का निरीक्षक नियुक्त किया जिससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि वह सुल्तान का विश्वास पात्र था।

मुबारिज में वह योग्यता न थी जिससे वह दुर्दमनीय अफगान सरदारों को अपने वश में रख सकता। सरदारों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे सुल्तान और उसकी सल्तनत का विनाश कर देंगे। ऐसी भयंकर स्थिति में सुल्तान को हेमराज ने आश्वासन दिया। विश्वासपात्र समझकर सुल्तान ने हेमराज को अपना मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। सल्तनत के इतिहास में हेमराज ही एकमात्र हिन्दू था जिसको यह महत्वपूर्ण स्थान मिलने का गौरव प्राप्त हुआ। हेमराज को अपनी प्रतिभा और प्रबन्ध शक्ति का पूर्ण विकास करने का अवसर मिला। अदल विश्वास योग्यता उसने सैन्य संचालन में प्रदर्शित की। सैन्य संगठन, शासन तथा संचालन में उसने जो क्षमता दिखाई वह अद्वितीय थी। उसकी समता युद्ध संचालन में कोई हिन्दू सेनापति अथवा मुसलमान अमीर उमरा भी समकक्ष न कर सका। उसने बाईस युद्ध किए और प्रत्येक में विजय श्री उसको प्राप्त हुई। विलायती अफगान सरदार उसके विरुद्ध सर उठाने का साहस ही न कर सके, अफगान अनुगामी उसके अनुयायी थे। अनेक महत्वाकांक्षी अफगान सरदारों और सैनिकों में उसने जो उत्साह, साहस और विश्वास उत्पन्न कर दिया था वैसा न कभी उसके पहले और न बाद की मुसलमान शासनकाल के इतिहास में देखने में आया। हेमराज ने हुमायूं और उसके उत्कृष्ट सेनाध्यक्षों को बहुत सताया था। ... अंतिम

बाण से आहत होकर वह मूर्छित न हो जाता तो बहुत संभव था कि पानीपत के दूसरे युद्ध में उसी को विजय भी प्राप्त होती जिससे कि तत्कालीन इतिहास की कुछ दूसरी गतिविधि हो जाती। आश्चर्य-सा जान पड़ता है कि एक व्यक्ति जो न तो हृष्ट-पुष्ट न लम्बा चौड़ा न सवारी-शिकारी अथवा व्यायाम का व्यसनी उतना शूरवीर, साहसी पराक्रमी और सैन्य संचालक कैसे हो गया।

हेमराज जैसे अद्वितीय व्यक्ति के जीवन चरित की इतिहास लेखकों ने अभी तक उपेक्षा ही की। इसका कारण संभवतः यह होगा कि उसके संबंध में यथेष्ट सामग्री का अभी तक अभाव है और जो कुछ सामग्री प्राप्त है वह भी इधर-उधर बिखरी-सी रही। हर्ष का विषय है कि डा० मोतीलाल भार्गव जी ने बिखरी तथा अद्यावधि प्राप्त सामग्री का केवल संकलन ही नहीं वरन् उसको पृष्ठ भूमि के साथ पाठकों के सामने उपस्थित करने का स्तुत्य कार्य भी किया है। यह आवश्यक नहीं है कि उनकी प्रत्येक धारणा सर्व स्वीकृत की जाय। हेमू का वंश अथवा उसका देहली का सिंहासन पर आरूढ़ होना आदि ऐसे कुछ विषय हैं जिन पर पाठकों को कुछ शंकाएँ उत्पन्न हों। सब शंकाओं का अन्तिम निर्णय तो दुस्साध्य है किन्तु यह सम्भव है कि उससे इतिहास प्रेमी तत्संबंधी सामग्री की खोज और ऊहापोह में दत्तचित्त हो सकें। इतना कुतूहल और ऐसी प्रेरणा भी यदि कुछ अध्यवसायी पाठकों में उत्पन्न हो जाय तो लेखक का प्रयत्न सफल मानना चाहिए। डा० भार्गव जी ने जो सामग्री एकत्रित की है और जिस प्रकार से उसको प्रस्तुत किया है उसके लिए इतिहास के प्रेमी उनके आभारी रहेंगे। आशा है कि इतिहास के पाठक पुस्तक का यथोचित मान करेंगे और हिंदी प्रेमियों का यह गर्व हो सकेगा कि हेमराज का जीवन-चरित्र सबसे पहले हिन्दी भाषा में ही प्रकाशित हुआ। दोनों भावों से प्रेरित होकर मैं लेखक को सहर्ष बधाई का पात्र समझता हूँ।

लखनऊ   रामप्रसाद त्रिपाठी
५-३ ६०

दो शब्द

मध्यकालीन भारत के विलक्षण प्रतिभाशाली सेना-नायक हेमू के विषय में अन्वेषण की ओर अनेक लेखक गत सौ वर्षों से अग्रसर व प्रयत्नशील रहे। परन्तु यथाशक्य सर्वादि के अतिरिक्त समस्त उपलब्ध सामग्री का संकलन एक स्थान पर न हो पाया। स्वयं हेमू के वंशजों में से बाबू धर्म मित्र कानौड़ निवासी एवं मेजर मनोहर लाल जी ने इस ओर सराहनीय कार्य किया। इधर कुछ वर्षों से उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीयुत कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी जी ने हेमू विषयक अन्वेषण की ओर पुनः ध्यान दिलाया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना से इस कार्य का सम्पन्न करने का परामर्श किया। डा० सक्सेना के आदेशानुसार तथा प्रयाग निवासी पं० ज्वाला प्रसाद भार्गव के आग्रह पर मैंने यह भार ग्रहण किया।

गत चार वर्षों के सतत परिश्रम के उपरान्त इतनी सामग्री संकलित हो सकी कि उसको पुस्तक का रूप दिया जा सके। इस कार्य में मुझे न्यायमूर्ति पं० विष्णु दत्त भार्गव व श्रीयुत कृष्ण सहाय जी इलाहाबाद व श्री राजेन्द्र बहादुर रिसर्च एसिसटेन्ट स्वतन्त्रता संग्राम इतिहास समिति लखनऊ से पर्याप्त सहायता मिली। उनका मैं सदैव ऋणी रहूँगा।

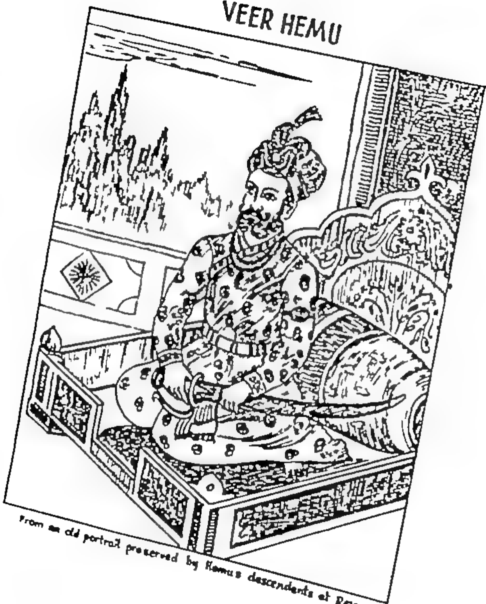
संकलित सामग्री का उपयोग करने व उसका ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में मूल्यांकन करने में मुझे श्रीयुत के० एम मुंशी डा० राम प्रसाद त्रिपाठी प्रसिद्ध इतिहास कार, अध्यक्ष हिन्दी समिति लखनऊ, व भूतपूर्व उपकुलपति सागर विश्वविद्यालय श्रीयुत कृष्णदयाल भार्गव डाइरेक्टर नेशनल आरकाईव्स नयी दिल्ली तथा डा० सक्सेना से समय समय पर जो परामर्श मिले उनसे अन्वेषण का कार्य सरल होता गया। यह सब धन्यवाद के पात्र हैं। डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना ने तो अपना अमूल्य समय देकर पाण्डुलिपि को आद्योपान्त देखा व उसमें संशोधन भी किये इसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ। हिन्दी संस्करण प्रस्तुत करने में मेरे लघु भ्राता जवाहर लाल सचिवालय उ० प्र० लखनऊ ने जो कार्य किया व सहायता दी वह सराहनीय है।

पुस्तक के लिखने एवं प्रकाशन कराने के सम्बन्ध में मुझे जो प्रेरणा व सहायता पं० ज्वाला प्रसाद जी प्रधान से मिली उसे भुलाया नहीं जा सकता। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का इतना शीघ्र प्रकाशन उन्हीं के अनवरत प्रयत्न का फल है।

प्रकाशकों व मुद्रकों ने इतनी शीघ्रता से पुस्तक मुद्रित कराके पाठकों के हाथों में पहुँचाया यह भी प्रशंसनीय है।

४—१—१९६०　　　　　　　　　　बी० डी० भार्गव

VEER HEMU



From an old portrait preserved by Hemus descendents at Rewari

विषय प्रवेश

भारतीय इतिहास का कौन ऐसा विद्यार्थी होगा जो हेमू व अकबर के नाम से परिचित न हो। परन्तु अभी तक किसी भी समकालीन अथवा आधुनिक इतिहासकार ने मुगल सम्राट अकबर के मुख्य प्रतिद्वन्द्वी हेमू अथवा हेम चन्द्र विक्रमादित्य के विषय में उपलब्ध सामग्री के अध्ययन करने का प्रयास नहीं किया। जिन इतिहासकारों ने हेमू के विषय में लिखा भी तो वह सभी पक्षपाती रहे हैं। इसके विपरीत समकालीन वर्णनकर्ताओं से हेमू के सम्बन्ध में ऐसी असत्य भ्रमात्मक तथा अनिश्चयात्मक बातें मिलती हैं कि ऐतिहासिक तथ्य विलुप्त से हो गए हैं। इन्हीं वर्णनों के आधार पर मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहासकारों ने हेमू की जीवनी तथा अन्य पक्षों पर अपना मत प्रकट किया है। कोई हेमू की वंशावली तथा कुलपरम्परा के विषय में अपना अज्ञान प्रकट करता है तो कोई अपनी प्रखर योग्यता प्रदर्शित करते हुए हेमू को 'बक्काल' लिख कर अपना वर्णन समाप्त करता है। कोई उसको एक वणिक का कार्य करते हुए दिल्ली की गलियों में घूमने वाला एक साधारण व्यक्ति समझता है। परन्तु वस्तुतः १६ वीं शताब्दी का अद्वितीय व आश्चर्यजनक प्रतिभाशाली सेनानायक तथा हिन्दू व अफगानों की अकर्मण्य सत्ता का संरक्षक कर्त्ता इन लेखकों का इतिहासकारों का अज्ञानतावश शिकार बन गया है यद्यपि ऐतिहासिक वास्तविकता इससे कहीं भिन्न है।

पानीपत के तीन युद्ध —

हेमू विषयक उपलब्ध सामग्री में सबसे अधिक वर्णन पानीपत के द्वितीय युद्ध का मिलता है। परन्तु इस द्वितीय युद्ध की महानता तथा जटिलता को समझने के लिए पानीपत के तीनों युद्धों का ज्ञान आवश्यक है। प्रमुखता व महत्व में पानीपत के तीनों ही युद्ध अद्वितीय हैं। पानीपत के प्रथम युद्ध में १५२६ ई० में भारत में तैमूर वंशीय मध्य एशिया निवासी मुगलों का आगमन हुआ जिसको अफगानों ने रोकने का प्रयत्न किया। सन् १५५६ ई० में मुगलों को भारत से बाहर निकल जाने से हेमू की आकस्मिक मृत्यु ने बचाया। इसी प्रकार १७६१ ई० में पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों तथा मुगलों को विदेशी आक्रमणकर्ता ने पराजित किया। तीनों बार रणभूमि का चुनाव आकस्मिक था अथवा जानबूझकर किया गया था कहना कठिन है परन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि तीनों बार उस रणभूमि में विजय-श्री विदेशियों के हाथ में रही।

पानीपत के तीनों ऐतिहासिक युद्धों की प्रकृति और स्वरूप प्रकट करते हैं कि संघर्ष ने, एक ओर भारतीयों तथा दूसरी ओर विदेशी आक्रमणकारी के मध्य एक सीधे युद्ध का आकार धारण किया। भारतियों का तात्पर्य हिन्दू व मुसलमानों दोनों से है। प्रथम दो युद्धों में अफगान भारतीय पक्ष म लड़े तृतीय में विदेश से आए हुए मुगलों ने अपने भारतीयकरण के पश्चात मराठा से मिलकर अहमद शाह अब्दाली से युद्ध किया।

पानीपत का द्वितीय युद्ध—

उपरोक्त दृष्टिकोण को सामने रखते हुए हेमू तथा मुगलों के मध्य हुआ पानीपत का द्वितीय युद्ध और भी अधिक महत्वपूर्ण है। उसका वास्तविक स्वरूप असत्य कथनों के मध्य दृष्टि से ओझल सा हो गया है। सन १५५६ ई० मे हेमू का यथार्थ कार्य भाग अब भी रहस्यमय है और आकस्मिक पाठक को उसके उज्ज्वल उत्थान और वीरतापूर्ण संघर्ष का संकेत मात्र मिलता है। परन्तु जैसे जैसे वर्णन सम्मुख आते हैं हेमू व अफगानों के पारस्परिक सम्बन्ध का आभास मिलता है। जिन विशेष परिस्थितियों के कारण हेमू २२ युद्धों का विजेता हुआ तथा दिल्ली जीत कर सम्राट बना उनकी केवल कल्पना ही हो सकती है। राजपूतों व अफगानों का हेमू का किस प्रकार इतना सहयोग प्राप्त था यह उसकी महानता का द्योतक है। मुगलों के प्रतिद्वन्दी सैनिकों में केवल एक ध्येय प्रधान था कि किसी प्रकार विदेशी आक्रमणकारियों को भारत वर्ष से निकाल दिया जाए। हिन्दुओं में यह भावना होना स्वाभाविक ही थी परन्तु शेरशाह के समय से ही अफगानों में भी यह भावना ओत-प्रोत थी। १५२६ ई० मे अकबर की विजय के उपरान्त भी मुगलों को अफगानों से लगभग २ वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा। हेमू व अन्य अफगान सेना-नायकों में आपसी वैमनस्यता व ईर्ष्या की कथाएं कल्पित ही जान पड़ती हैं क्योंकि द्वितीय पानीपत के पश्चात् भी अदली के गुलाम तथा हेमू के सेना-नायक अफगान मुगलों से संघर्ष करते रहे जैसे हाजी खां मेवाती तथा संग्राम खां।

प्रथम प्रयास—

ऐसे फुटकर वर्णनों के आधार पर हेमू की वास्तविक महत्ता को समझना समस्त उपलब्ध सामग्री का एक बार एकत्रीकरण तथा अध्ययन किए बिना कठिन जान पड़ता है। इसलिए प्रथम प्रयास में समकालीन तथा मध्यकालीन समस्त वृत्तान्त कर्ताओं के उद्धरणों का संकलन करने का प्रयत्न किया गया है। इसका मुख्य ध्येय यह है कि एक बार सब सामग्री संकलित हो जाने से जो हेमू की जीवनी व कृतियों का आभास मिलेगा उस पर आगे सफलता हो सकेगी। अस्तु ऐतिहासिक तथ्य संकलन में यह प्रथम पग है, अन्तिम नहीं।

सामग्री स्रोत—

इस पुस्तक में प्रयुक्त सामग्री निम्नलिखित स्रोतों से संग्रही है—

१—समकालीन वृत्तान्तकारों के फारसी हस्तलेखों के अनुवाद।
—अकबरनामा व विविध इतिहासों के अनुवाद।
२—अन्य विविध वृत्तान्तकर्ता पादरी तथा विदेशी आगन्तुक।
४—राधावल्लभी सम्प्रदाय की हिन्दी में सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तकें समसामयिक रसिक मार्ग का ही प्रतिपा।
५—रेवू के वंशजों द्वारा प्रदत्त फुटकर सामग्री।

फारसी हस्तलेखों के अंग्रेजी अनुवाद—

सबसे प्रमुख समकालीन वृत्तान्त जो हमें अकबर और उसके युग के विषय में सामग्री उपलब्ध कराते हैं अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल द्वारा दिए गए हैं। उसको वे सब सुविधाएँ प्राप्त थीं जो एक पदाधिकारी अभिलेख-रक्षक को प्राप्त हो सकती थी। उसने अपने परिवार से प्रारम्भ में स्वयं के अनुभव से सामग्री प्राप्त की। वह स्वयं कहता है—मैंने बुद्धिमान सत्यवादी वृद्ध पुरुषों तथा तीव्र मस्तिष्क वाले एवं उचित काम करने वाले युवकों दोनों की जन्म-जानकारी की और उनके कथनों को लिपिबद्ध कर लिया। सूबों के लिए शाही आज्ञा निकाली गई कि वे व्यक्ति जिनको अपनी पूर्व घटनाओं के कारण विस्तारपूर्वक अथवा लिखित सूत्र पूर्वक पुरस्कार की घटनाएँ याद हों अपनी टिप्पणियों और स्मरण-पत्रों को दरबार में प्रस्तुत करें। उसने सम्पूर्ण प्रतिलिपियाँ बनाईं और उनको लिया है। उसकी कृतियाँ मौलिकता एवं ऐतिहासिक महत्त्व में अतुलनीय हैं। अकबरकालीन भारत के विषय में सुस्पष्टतम विवरण उसी की दो स्मरणीय कृतियाँ हैं—(१) अकबरनामा जो एच॰ बेवरिज द्वारा अनुवादित है और (२) आइन-ए-अकबरी अर्थात् अकबर के विधि-नियम जिसका अनुवाद ब्लाकमैन तथा जैरेट द्वारा तीन भागों में किया गया है। अबुल फजल द्वारा छोड़े गए अभिलेख वर्णनों के अतिरिक्त अकबर के शासन काल की दो अन्य प्रमुख कृतियाँ हैं—तबकात-ए-अकबरी (निजामुद्दीन द्वारा लिखित) और अल बदायूनी के नाम से प्रसिद्ध अब्दुल कादिर बिन मुलूकशाह की मुन्तखाब-उत्-तवारीख। प्रथम का अनुवाद डा॰ डे द्वारा तथा दूसरी का रैंकिंग व लो तथा हेग द्वारा तीन भागों में किया गया है।

अबुल फजल की कृति का मूल्यांकन करते हुए स्मिथ ने लिखा है—"अबुल फजल की किताब में ऐतिहासिक विवरण जटिल एवं अलंकारमय कथन के ... में छिप गया है और अपने नायक की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा—लेखक कभी-कभी सत्य को छिपाता है, या कभी-कभी जानबूझ कर उसमें ...

'जान बूझकर सत्य' को उलट देने" के उसने कुछ प्रसिद्ध उदाहरण दिए हैं जो निम्नलिखित हैं—(१) अकबर की जन्म तिथि को उसके नामकरण का वर्णन। (२) असीरगढ़ पर अधिकार होने का वर्णन। इसके अतिरिक्त जहाँ तक हेमू का सम्बन्ध है उसकी उत्पत्ति विषयक विवरण एक ऐतिहासिक सत्य के स्थान पर वृत्तान्तकारों के राजनैतिक पक्षपात और पूर्व धारणाओं का दिग्दर्शन कराते हैं। उसके द्वारा किये गए हेमू की मृत्यु का वर्णन का खंडन जहाँगीर सदृश लेखक ने अपने सर्वाधिक अधिकृत स्मृति लेखों में किया है। जहाँ तक तिथि-निर्धारण का सम्बन्ध है समकालीन उपलब्ध अभिलेखों में केवल अबुल फजल का अभिलेख अधिकृत है लेकिन कुछ स्थान पर तिथियाँ पूर्णत संदेह से मुक्त नहीं हैं। हेमू के उज्ज्वल उत्थान से सम्बद्ध सबसे प्रमुख घटना उसका दिल्ली पर अधिकार है जो ६ अक्तूबर १५५६ ई० को किया गया कहा जाता है और पानीपत का युद्ध ५ नवम्बर १५५६ ई० को। इस प्रकार हेमू ने केवल २९ दिन शासन किया और तार्दी बेग खाँ २६ जनवरी १५५६ ई० से ६ अक्तूबर १५५६ ई० अर्थात् लगभग ९ मास तक दिल्ली का गवर्नर था। आश्चर्य है कि इस लम्बी अवधि में सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् भी अकबर कालानौर से दिल्ली न आ सका। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् के अबुल फजल द्वारा दिए गए विवरण इतने विच्छिन्न हैं तथा २९ दिन के विवरण इतने असंख्य हैं कि दिल्ली पर हेमू के अधिकार तथा उसके सिंहासनारूढ़ होने की ठीक तिथियों के सम्बन्ध में एक उचित संदेह उत्पन्न होता है। कहा जाता है कि हेमू ने सिक्के चलवाए थे पर प्रकाश में अभी कोई नहीं आया। यदि एक सिक्का भी उपलब्ध हो जाए तो वह न केवल १६ वीं शताब्दी के प्रस्थान वीर और उसके दिल्ली के शासन पर वरन् अकबर के दरबारी इतिहासकार के सत्य और यथार्थता पर प्रकाश डाल सकेगा।

विन्सेंट स्मिथ आगे कहता है—"फिर भी गम्भीर और प्रत्यक्ष दोषों के होते हुए भी 'अकबरनामा' अकबर के शासन के इतिहास की नींव के रूप में माना जाना चाहिए। इसकी तिथि-निर्धारण निजामुद्दीन और बदायूनी द्वारा लिखित प्रतिद्वंद्वी पुस्तकों से अधिक सही और विवरण पूर्ण है और यह उनकी अपेक्षा बाद की तिथि तक की कथा का वर्णन करता है।" यह उच्चतम प्रशंसा का पात्र है जैसा कि स्मिथ आगे चलकर कहता है—"यूरोप तक में आधुनिक समय तक इस प्रकार का अधिकृत संग्रह पाना कठिन होगा ।" अकबर पर अबुल-फजल की कृति अधिकतर निजामुद्दीन की तबकात-ए-अकबरी पर आधारित है जिसका भारतीय मध्यकालीन इतिहासकारों में एक ऊँचा स्थान है। वह अकबर की बहुत आलोचना करता है यहाँ तक कि जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने तक उसकी कृति को गुप्त रखना पड़ा। लेकिन यह हेमू के

प्रति उतना ही आलोचनात्मक और शत्रुतापूर्ण है जितना अबुल फजल, अतएव उसकी कृति में हेमू के जीवन वृत्तान्त पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता है। केवल उससे हेमू के तथा अदेली के उन अफगान साथियों के जो १५५६ ई० में हेमू की मृत्यु के उपरांत भी अकबर से संघर्ष करते रहे थे विषय में कुछ विवरण प्राप्त हो जाते हैं।

तबकात-ए-अकबरी अथवा अकबर-शाही जो तारीख-ए-निजामी के नाम से प्रसिद्ध है अकबर के शासनकाल के प्रथम ३९ वर्षों का (अर्थात् १५९३-९४ ई० तक का) विवरण देती है। इसका तिथि-निर्धारण दोषमुक्त तथा विवरण प्रमुख घटनाओं से रहित कहा जाता है। जो हो कृति का अंश बदायूनी और एक अन्य समकालीन लेखक फिरिश्ता द्वारा स्थापित बनाया गया है। फिरिश्ता के कथनानुसार "उन सब इतिहासों में जो उसने देखे पढ़े यही एक ऐसा है जो उसे पूर्ण मिला। इस पुस्तक का अनुवाद इलियट व डाउसन द्वारा किया गया है।

फिरिश्ता की पुस्तक में दक्षिण के राज्यों का विशद इतिहास तथा शेष भारत का सामान्य वर्णन किया गया है। उसके इतिहास से हेमू और अफगानों के विषय में प्रमुख विवरण उपलब्ध है। हस्तलेख का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में जान ब्रिग्स द्वारा किया गया है, जो 'हिस्ट्री ऑव दि राइज ऑव दि मोहम्मडन पावर इन इंडिया टिल दी इयर ए डी १६१२ (४ भाग १८२९) के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) अफगान स्रोत—

अकबर के दरबारी इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों द्वारा छोड़े गए अभिलेखों के अतिरिक्त अफगानों पर अनेक कृतियाँ संतति को प्राप्त हुई हैं। अकबर के शासनकाल में १५९५ ई० के लगभग अहमद यादगार द्वारा लिखित 'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना' में हेमू की मृत्यु तक का विस्तृत वर्णन दिया है। १५५६ ई० में पानीपत के दूसरे युद्ध के लिए तथा हेमू के बलिदान के लिए यह एक अच्छा अधिकृत हस्तलेख है। अफगानों का दूसरा इतिहास जिसमें से हेमू की विजयों से संबंधित विवरण लिए गए हैं, 'मखजन-ए-अफगाना' अर्थात् 'अफगानों का इतिहास' के नाम से नियामतउल्ला द्वारा लिखा गया था जिसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डार्न द्वारा किया गया है। नियामतुल्ला की इसी नाम की एक अन्य कृति भी है, जिसका शीर्षक है तारीख-ए-खान-ए-जहान सानी-वा-मखजन-ए-अफगाना। मौलिक हस्तलेख, लंदन में 'कामन वैल्थ रिलेशन्स आफिस'—Commonwealth Relations Office London में सुरक्षित रखा कहा जाता है। अब्बास सरवानी द्वारा लिखित तारीख-ए-शेरशाही तथा निजामुद्दीन की 'तबकात-ए-अकबरी' में उसने बड़े परिमाण में सामग्री उधार ली है।

'जान बूझकर सत्य को उलट देने' के उसने कुछ प्रसिद्ध उदाहरण दिए हैं जो निम्नलिखित हैं—(१) अकबर की जन्म तिथि का उसके नामकरण का वर्णन। (२) असीरगढ़ पर अधिकार होने का वर्णन। इसके अतिरिक्त जहाँ तक हेमू का समावेश है उसकी उत्पत्ति विषयक विवरण एक ऐतिहासिक सत्य के स्थान पर वृत्तान्तकारों के राजनैतिक पक्षपात और पूर्व पक्षी वंश का विध्वंस दर्शाते हैं। उसके द्वारा किए गए हेमू की मृत्यु का वर्णन का खंडन जहाँगीर स्वयं अकबर ने अपने सर्वाधिक अविकृत स्मृति लेखों में किया है। जहाँ तक तिथि-निर्धारण का सम्बन्ध है समकालीन उपलब्ध अभिलेखों में केवल अबुल फज़ल का अभिलेख अविकृत है लेकिन कुछ स्थान पर तिथियाँ पूर्णतः संदेह से मुक्त नहीं हैं। हेमू के उज्ज्वलतम उत्थान से सम्बद्ध सबसे प्रमुख घटना उसका दिल्ली पर अधिकार है जो ६ अक्तूबर १५५६ ई. को किया गया कहा जाता है और पानीपत का युद्ध ५ नवम्बर १५५६ ई. को। इस प्रकार हेमू ने केवल २९ दिन शासन किया और तार्दी बेग जो २६ जनवरी १५५६ ई. से ६ अक्तूबर १५५६ ई. अर्थात लगभग ९ मास तक दिल्ली का गवर्नर था। आश्चर्य है कि इस लम्बी अवधि में सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् भी अकबर कालानौर से दिल्ली न आ सका। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् के अबुल फज़ल द्वारा दिए गए विवरण इतने विच्छिन्न हैं तथा २९ दिन के विवरण इतने असत्य हैं कि दिल्ली पर हेमू के अधिकार तथा उसके सिंहासनारूढ़ होने की ठीक तिथियों के सम्बन्ध में एक उचित संदेह उत्पन्न होता है। कहा जाता है कि हेमू ने सिक्के गढ़वाए थे पर प्रकाश में अभी कोई नहीं आया। यदि एक सिक्का भी उपलब्ध हो जाए तो वह न केवल १६ वीं शताब्दी के प्रख्यात वीर और उसके दिल्ली के शासन पर वरन् अकबर के दरबारी इतिहासकार के सत्य और यथार्थता पर प्रकाश डाल सकता।

विन्सेंट स्मिथ आगे कहता है— "फिर भी गंभीर और प्रत्यक्ष दोषों के होते हुए भी 'अकबरनामा' अकबर के शासन के इतिहास की नींव के रूप में माना जाना चाहिए। इसकी तिथि-निर्धारण निज़ामुद्दीन और बदायूनी द्वारा लिखित प्रतिद्वंद्वी पुस्तकों से अधिक सही और विवरण पूर्ण है और यह उनकी अपेक्षा बाद की तिथि तक की कथा का वर्णन करता है। यह उच्चतम प्रशंसा का पात्र है जैसा कि स्मिथ आगे चलकर कहता है— यूरोप तक में आधुनिक समय तक इस प्रकार का अविकृत संग्रह पाना कठिन होगा"।

अकबर पर मुल्ला-बदायूनी की कृति अधिकतर निज़ामुद्दीन की तबकात-ए-अकबरी पर आधारित है जिसका भारतीय मध्यकालीन इतिहासकारों में एक ऊँचा स्थान है। वह अकबर की बहुत आलोचना करता है यहाँ तक कि जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने तक उसकी कृति को गुप्त रखना पड़ा। लेकिन वह हेमू के

प्रति उसका ही आलोचनात्मक और सहानुभूतिपूर्ण है जिसका प्रमुख फल अतएव उसकी कृति से हेमू के जीवन वृत्तान्त पर कोई नवीन प्रकाश नहीं पड़ता है। केवल उसमें हेमू के तथा अदेली के उन अफगान साथियों के जो १५५६ ई० में हेमू की मृत्यु के उपरान्त भी अकबर से संघर्ष करते रहे थे विषय में कुछ विवरण प्राप्त हो जाते हैं।

तबकात-ए-अकबरी अथवा अकबर-शाही या तारीख-ए-निजामी के नाम से प्रसिद्ध है अकबर के शासनकाल के प्रथम ३९ वर्षों का (अर्थात् १५९३-९४ ई० तक का) विवरण देती है। इसका तिथि-निर्धारण सामयिक तथा विवरण प्रमुख घटनाओं से सीमित रखा जाता है। जो हो कृति का भाग बदायूनी और एक अन्य मध्यकालीन लेखक फ़िरिश्ता द्वारा आधारित बनाया गया है। फ़िरिश्ता के कथनानुसार "उन सब इतिहासों में जो उसने देखे थे यही एक ऐसा है जो उसे पूर्ण मिला।" इस पुस्तक का अनुवाद इलियट व डाउसन द्वारा किया गया है।

फ़िरिश्ता की पुस्तक में दक्षिण के राज्यों का विशद इतिहास तथा उत्तर भारत का सामान्य वर्णन किया गया है। उसके इतिहास में हेमू और अफगानों के विषय में प्रमुख विवरण उपलब्ध हैं। पुस्तक का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में जान ब्रिग्स द्वारा किया गया है जो "हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मोहम्मडन पावर इन इण्डिया टिल दी इयर ए डी १६१२ (लन्दन १८२९) के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) अफगान स्रोत—

अकबर के दरबारी इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों द्वारा छोड़ गए अभिलेखों के अतिरिक्त अफगानों पर अनेक कृतियाँ प्रकाश में प्राप्त हुई हैं। अकबर के शासनकाल में १५९३ ई० के लगभग अहमद यादगार द्वारा लिखित 'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना' में हेमू की मृत्यु तक का विस्तृत वर्णन किया है। १५५६ ई० में पानीपत के दूसरे युद्ध के लिए तथा हेमू के इतिहास के लिए यह एक अच्छा अतिरिक्त ग्रन्थ है। अफगानों का दूसरा इतिहास जिसमें भी हेमू की विजयों में सर्वाधिक विवरण दिए गए हैं 'मखजन-ए-अफगाना' अर्थात् 'अफगानों का इतिहास' के नाम से नियामतउल्ला द्वारा लिखा गया था जिसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डार्न द्वारा किया गया है। नियामतुल्ला की इसी नाम की एक अन्य कृति भी है जिसका शीर्षक है तारीख-ए-खान-ए-जहान लोदी-वा-मखजन-ए-अफगाना। मौलिक हस्तलिखित ग्रंथ में [illegible]'—Commonwealth Relations Office, London. में सुरक्षित रखा कहा जाता है। अब्बास सरवानी द्वारा लिखित तारीख-ए-शेरशाही तथा निजामुद्दीन की 'तबकात-ए-अकबरी' में इनसे बड़े परिमाण में सामग्री उधार ली है।

अब्बास सरवानी द्वारा लिखित 'तारीख-ए-शेरशाही' में शेरशाह और अफ़ग़ान बादशाहों का बहुत अधिक एवं विशद वर्णन है। यद्यपि हस्तलेखों में हेमू से संबंधित विवरण उपलब्ध नहीं है परन्तु उनसे वह वास्तविक पृष्ठभूमि प्राप्त हो जाती है जिसकी परिस्थितियों ने हेमू को अपनी प्रतिभा दर्शाने का एक अवसर प्रदान किया। यह भी शेरशाह की मृत्यु के लगभग ४ वर्ष पश्चात् अकबर के आदेश से लिखी गयी। अफ़ग़ानों के उपर्युक्त इतिहास के अतिरिक्त अब्दुल्ला द्वारा लिखित एक अन्य हस्तलेख तारीख-ए-दाऊदी है जिसमें हेमू के सहायकों के विषय में कुछ विवरण दिया हुआ है।

(३) अन्य स्रोत—

उपर्युक्त हस्तलेखों के अतिरिक्त हुमायूं की बहिन गुलबदन बेगम का हुमायूं-नामा जिसका अनुवाद श्रीमती बेवरिज द्वारा किया गया है १२४ ई में हुमायूं के निष्कासन तथा उसके विभिन्न प्रदेशों में घूमने-फिरने का विवरण देता है। हुमायूं के एक व्यक्तिगत सेवक जौहर द्वारा अकबर के समय में लिखित तज़्किरात-उल-वाकियात भारत से मुग़ल सम्राट के निष्कासन और उसकी हिंद में वापसी का कुछ विवरण मिलता है। जहाँगीर नामा में संग्रहीत जहाँगीर के स्मृति लेख अकबर के शासन काल की विविध घटनाओं और स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं। हेमू की हत्या के विषय में उसका प्रमाण विश्वासकारी है। ये व्यक्तिगत स्मृति-लेख अधिकतर स्वयं उसके द्वारा अपने शासन काल के प्रथम १८ वर्षों में लिखे गए और बख्शी मुहम्मद खाँ द्वारा शासन के १९ वें वर्ष में। इस कृति का अनुवाद अंगरेजी भाषा में रॉजर्स द्वारा तथा हिन्दी में श्री बृजरत्न द्वारा—नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण १ ५७ में किया गया है।

कुछ ईसाई मिशनरियों ने जिन्होंने अकबर के दरबार में शरण ली थी और विदेशी यात्रियों ने जो उस समय भारत में आए थे घटनाओं तथा उनके परिणामों का आँखों देखा वर्णन किया है। उनमें से कुछ ने राजधानी में प्रचलित सूचनाओं को अपने कथनों का आधार बनाया है। जान कार्बिया अफ़ फॉस्टर द्वारा Jesuit Letters and Indian History (१९२२) में प्रकाशित जेसियट मिशनरियों में और डी-लायट के भारत के वर्णन तथा Fragment of Indian History—१६२२ ई० में अकबर और जहाँगीर के शासनों का अधिकतर विवरण दिया गया है। डी-लायट द्वारा हेमू की मृत्यु के विषय में छोड़े गए विवरण पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व के हैं।

(४) हिन्दी स्रोत—

हिन्दी हस्तलेखों से बड़ी संख्या में उपलब्ध प्रमाणों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अधिकतर समकालीन लेखक या तो उनके अस्तित्व से

ही समझते थे और या उन्होंने उस पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। जैसा कि अकबर की जीवनी के लेखक विन्सेंट स्मिथ ने कहा है —

"कला का एक अन्य भाग ज्ञान वाला तथा हिन्दी व फारसी भाषा में लिखित, साहित्य ने अकबर के धर्मनिरपेक्ष एवं सहज शासन द्वारा सब प्रकार के कलाकारों से प्रोत्साहन प्राप्त कर लाभ लिया। डा० एस० रम्पू० टामस के मतानुसार १६२० ई० के लगभग महाराज ठाकुर द्वारा गद्य एवं पद्य में संस्कृत भाषा में लिखित अकबर के शासन के एक भाग का भी इतिहास है। (Mackenzie Collection India Office जो अब Commonwealth Relations Office, London में है। Eggeling Catal—संस्कृत हस्तलेख भाग ७ १९०४ १५७३ सन ८७०६ लाइब्रेरी संख्या ३७ है हस्तलेख ७८ पृष्ठ के हैं जिनका माप ९ ३/४ x ४ इंच है)

राजस्थानी हिन्दी-लेखन में भाट संबंधी साहित्य राजपूत राजाओं और युवराजों के व्यक्तिगत पराक्रम-कार्यों एवं वीरतापूर्ण आक्रमणों से संबंधित विवरण से पूर्ण है। इसके पश्चात् १२०० ई० और १६०० ई० के मध्य हिंदी में भक्तिभावपूर्ण कविता में समकालीन भारत के सन्त कवियों द्वारा किए गए वर्णन प्राप्त होते हैं। उनके द्वारा उनकी कृतियों में उल्लिखित सही नाम और स्थान तथा उनकी रचना की तिथियों का पर्यालोचन करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। फिर भी यदि उनकी रचना की तिथियों का परीक्षण किया जाए, तो तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक और राजनैतिक स्थिति के संबंध में वृहद् सामग्री उपलब्ध हो जायगी। ये ग्रन्थ न तो तिथि निर्धारण और न ही वंशावली संबंधी विवरणों से भरे पूरे हैं यद्यपि हिन्दुओं व मुसलमानों के संघर्ष और युद्ध में लीन विभिन्न संप्रदायों एवं धर्मों में मेल कराने तथा मिश्रित हिंदू जाति में एक नवीन जीवन का संचार करने के लिए किए प्रयासों की स्मृति के लिए ये मूल्यवान हैं। कबीर, सूर और तुलसी आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री उपलब्ध करते हैं।

यहाँ तक हेमू और उसकी हिंदू परम्परा का संबंध है। अकबर के समकालीन वृन्दावन के श्री हित हरिवंश के राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त भगवत मुदित कवि द्वारा छोड़ी गई कृतियों तक अच्छा ज्ञान है। भगवत मुदित द्वारा रचित रसिक अनन्य माल के एक या दो अध्यायों में हिसार के पूरनदास और नवलदास द्वारा वृन्दावन जाकर राधावल्लभी मत को अंगीकार कर लेने का वर्णन है। श्री हित हरिवंश १५३३ ई० में (१५९० वि० पंचम फाल्गुन एकादशी) वृन्दावन पहुँचे और जैसे ही वे वहाँ स्थायी रूप से बसे उनके शिष्यों के आगमन का तांता लग गया। रसिक अनन्य माल के लेखक ने हेमू के पिता पूरनदास और उनके सहयोगी नवलदास का, जिन्होंने अकबर के हाथों

हेमू की जाति के विनाश को बचाने में योग दिया था श्रीहित हरिवंश के शिष्य बनने का अच्छा विवरण दिया है। हाल ही में प्रकाशित पुस्तक—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—में भी विजयेन्द्र स्नातक ने श्रीहरिवंशजी की ख्याति फैलने तथा शिष्यों की संख्या बढ़ने का वर्णन इन शब्दों में किया है—

"इसी समय आपने कई मुमुक्षु भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों में भीगाव के अधिपति नरवाहन तथा रेवाड़ी के पौनवसदास और पूरनदास का नाम उल्लेखनीय है।

हेमू के वंशजों द्वारा प्रदत्त सामग्री—

गत ४ वर्षों में हेमू—विषयक सामग्री एकत्रित करने का जो प्रयास किया गया है उसके फलस्वरूप कई वंशावलियाँ (सजरे-वंशवृक्ष) तथा अनेक प्रपत्र प्राप्त हुए हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण हेमू के भतीजे महीपाल के पुत्र चौधरी नाथमल के नाम दिया गया अकबर का शाही फरमान है। इसकी मूल प्रति सन् १ २१ ई० में जयपुर निवासी साधू धर्म मित्रकिशोरीशरण के पास थी उन्होंने अपनी छोटी सी पुस्तक 'हेमू वीर' में प्रकाशित भी किया है। इस फरमान के द्वारा हेमू के पौत्र नाथमल को अकबर ने अपने प्रतिद्वन्द्विता से रक्षा करने के लिए सन्त नवलदास के आग्रह पर, नारनौल सरकार में परगना कानौड़ की कानूनगोई तथा (११० ०) वार्षिक आय की जागीर दी थी। हेमू के वंशजों तथा जाति बन्धुओं को अकबर के रोष से बचाने तथा उनको क्षमा प्रदान कराने का श्रेय सन्त नवलदास को था जो राधावल्लभी सम्प्रदाय के एक भक्त थे। इस घटना सम्बन्धी वर्णनों को अनन्य रसिक माल नामक पुस्तक से लिया गया है। इसमें अकबर हेमू उनके वंशज महिपाल नाथमल आदि के विषय में तथा रिवाड़ी से आए हेमू के पिता पूरनदास व उनके साथी नवलदास के राधावल्लभी संप्रदाय में सम्मिलित होने का विशद वर्णन है। साधू धर्म मित्र ने १९२८ ई० में इस विषय में भी बड़ी छान-बीन की थी और पटियाला नरेश के यहाँ कानौड़ स्थित कानूनगोई व जागीर के हक सम्बन्धी कागजात व मिसलों की दरबार में छान-बीन कराई थी उससे यह पता चला कि यह हक पटियाला नरेश के शासन काल में भी कुछ काल तक मान्य रहा। धीरे-धीरे कम हो गया। इस जागीर के अतिरिक्त पटियाला राज्य (पूर्वी पंजाब) नारनौल स्थित ढोसी पर्वत चवनमनी इमारत व मन्दिरों में भोग इत्यादि के लिए कुछ धन पटियाला सरकार प्रदान करती रही।

कानौड़ उपनाम महेन्द्रगढ़ में अब भी ८ या ९ घर दूसरों के हैं जो अपना गोत्र मोहन तथा अपना कुलदेवी बताते हैं। यही गोत्रादि हेमू के वंशजों के हैं। अधिकतर वंशज रिवाड़ी तथा अन्य स्थानों पर जा बसे हैं। यह अपने को अब भी कानौड़िये कहते हैं।

हेमू के वंशज—

इस विषय में जो खबरें तथा वंशावली उपलब्ध है उनसे महीपाल के वंशजों का पता चलता है। हेमू की मृत्यु नि:सन्तान हुई तथा उनके भाई राय सम्पोराय तक पता चलता है। महीपाल के पुत्रों में त्रिलोक चन्द्र राय नारायणदास तथा चौधरी नायमल थे। महीपाल का नाम समकालीन इतिहासकारों के ग्रन्थों में मिलता है। इस प्रकार तीन के मत बताये जाते हैं उनमें से दो के अनुसार वह हेमू का भतीजा प्रमाणित होता है। उनके पुत्र नायमल का अकबर फरमान की मूल प्रति साधू धर्म मित्र ने प्रस्तुत की। यह धर्म मित्र स्वयं अपने को त्रिलोक चन्द्र के वंशजों की १३ वीं पीढ़ी में बताते थे। हस्तलिखित पुस्तकों में शिकस्ता लिपि में महीपाल लिखा हुआ था। साधू धर्म मित्र की छान बीन के अनुसार नकल करने वालों ने महपाल लिख दिया। यह कोई भ्रम नहीं है। महीपाल की सन्तानों के पुराने वंश वृक्ष में—सूरिस-भामा—सर्वश्रेष्ठ लिखा है।

उपरोक्त वंशावलियों का वर्णन प्रयाग के पण्डा राजा राम के वंशजों के पास सुरक्षित बहियों में प्राप्त है। उनमें यह वन्शावलियां बूमर करके लेख बद्ध हैं।



अध्याय—१

जन्म व पितृ परम्परा

मध्यकालीन भारत के महान सेना-नायक अकबर के एक मात्र प्रतिद्वन्द्वी परमवीर हेमू का जन्म आधुनिक राजस्थान राज्य में अलवर क्षेत्र के राजगढ़ से तीन मील दूर "माछेरी" नाम के स्थान पर हुआ था। मुगल सम्राट अकबर के इतिहासकार अबुल फज़ल ने निम्नलिखित शब्दों में हेमू का परिचय दिया है —

"संक्षेप में वह कुरूप आकृति वाला जो छोटे कद का और दंभपूर्ण विचारों का था अकबर के एक नगर रिवाड़ी के कुछ फेरीवालों से ऊँचे पद पर पहुँचाया गया। जहाँ तक उसकी जाति (नसल-नस्ल) का सम्बन्ध है, वह दूसर जाति का था— — ।"[1]

अबुल फज़ल के आधार पर ज्ञात होता है कि पानीपत के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् अकबर ने पीर मुहम्मद खाँ को मेवात की ओर भेजा-जहाँ हेमू का खजाना जमा किया हुआ बताया जाता था। अकबरी १५५७ ई० में पीर मुहम्मद ने "हेमू के जन्मस्थान देवती-मचारी (या माचारी) तक अलवर की सरकार पर अधिकार कर लिया।"[2] इस स्थान को तत्कालीन इतिहासकारों ने "देवती-मचारी" अथवा केवल "माचारी" दोनों ही नाम से संबोधित किया है। "देवती" या "देवटी"[3] आधुनिक अलवर जिले के दक्षिण में स्थित है। स्वयं अबुल फजल ने आइन-ए-अकबरी[4] में "देवती सचरी" नाम लिया है। अल बदाऊनी ने इस स्थान को 'देवली' नाम से संबोधित किया है।[5] इम्पीरियल गजटियर में 'मचाड़ी' शब्द का उल्लेख है, जिससे यह ज्ञात

१—अबुल-फज़ल = अकबरनामा (बीवेरिज द्वारा अनुवादित)
जिल्द—१ पृ० सं० ६१२—६११।

२— " " जिल्द—२ पृ० सं० ७१—७२

३—देखिए अलवर गजटियर—पृ० सं० १५८—के अनुसार अकबर कालीन भारत में माचड़ी व देवती—अलवर सरकार (जिला) के प्रमुख नगर रहे होंगे।—पृ० सं० १६४।

४—अबुल-फज़ल आइन-ए-अकबरी जारेट द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद पृ० सं० ७२१।

५—अल-बदाऊनी मुन्तखाब-उत्-तवारीख लौ द्वारा अनुवाद २।११

होता है कि "मछासी" और 'देवसी' जहाँ अब झील है, अकबर के समय में प्रमुख नगर रहे होंगे। यह प्रदेश 'मेवात' कहलाता था।[1]

"मेवात" दिल्ली के दक्षिण में स्थित वह भू-भाग था जिसमें अधिकतर मेव और मेवाती बसे हुए थे। यह एक ओर मथुरा जिले तक दूसरी ओर भरतपुर के कुछ भाग तक तथा पहले के अलवर राज्य तक फैला हुआ था। अब उसका विलय राजस्थान राज्य में हो गया है। इम्पीरियल गजेटियर द्वारा भी हेमू को मेवात का निवासी स्वीकार किया गया है।[2] इस क्षेत्र में १५ वीं तथा १६ वीं शताब्दी में बहुत से दूसर परिवार निवास करते थे। अबुल फजल ने भी अकबर के सेना-नायक मौलाना पीर मुहम्मद द्वारा हेमू के पिता (पूरनदास) को इसी क्षेत्र में बंदी बनाया जाना लिखा है।[3] अकबर के समकालीन व राधा वल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश-वृन्दावन निवासी के शिष्यों में भी श्री नवलदास और पूरनदास रिवाड़ी निवासियों का वर्णन मिलता है। हित हरिवंश जी अपनी यात्रा करते हुए, चिरथावल गाँव में कुछ समय ठहरकर सम्वत् १५९ (१५३३ ई०) की फाल्गुन की एकादशी को वृन्दावन पहुँचे। वहाँ पहुँचकर—

मंदिर सुंदर सरस बनायो। करि अभिषेक प्रभुहि पधरायो॥
श्री राधावल्लभ नाम सुहायो। वद पुरान संहिता गायो॥
यह सैं हरिवंश सुहायो। कालिंद कुलि तैं रस सुख पायौ"॥[4]

वृन्दावन पहुँचने पर हित हरिवंश जी ने मदनटेर नामक स्थान पर विश्राम के लिए डेरा डाला। उनके स्थायी रूप से वृन्दावन वास करने का निश्चय करने के पश्चात् भक्ति और प्रेम के मार्ग से श्री जी की नवा उपासना का सुयोग पाकर श्रद्धालु जनता एक साथ गोस्वामी हरिवंश जी द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर चल पड़ी और दूर-दूर तक उनकी साधना-पद्धति का प्रचार हो गया। इसी समय आपने कई श्रद्धालु भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों में भैगाँव के अधिपति नरवाहन तथा रिवाड़ी[6] के श्री नवल दास और पूरनदास का नाम उल्लेखनीय है।[7]

१—अबुल-फजल अकबरनामा पृ० सं० २६६ आईन पृ० सं० १२९
२—इम्पीरियल गजेटियर खंड २ प्रकाशित १९०९ देखिए अलवर गजे टियर लन्दन से प्रकाशित १८७८—पृ० सं० ७
३—अबुल-फजल अकबरनामा जिल्द २ पृ० ५१ ५२
४—भगवत मुदित कृत—रसिक अनन्यमाला-लिपिकार दूलरमी-लिपिकाल १८१७ हस्तलिखित प्रति-याज्ञिक संग्रह-नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
५—जिला मैनपुरी उत्तर प्रदेश।
६—रिवाड़ी-जिला गुड़गाँव-पूर्वी पंजाब।
७—विजयेन्द्र स्नातक राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० सं०—१०८


MAP
OF
ULWAR STATE

परम भक्त पूरनदास—उपरोक्त ग्रन्थ से संत पूरनदास व नवलदास के विषय में अनेक तथ्य ज्ञात होते हैं जिनसे परमवीर हेमू की जीवनी पर प्रकाश पड़ता है। नवलदास जी को रैवाड़ी के रूप में वर्णित किया गया है और उन्हीं की कथा में हेमू का वर्णन है जिसमें उनको स्पष्ट रिवाड़ी निवासी बताया गया है" — —

"श्री हित हरिवंश के शिष्य भक्त हैं जान।
दूसर बूस नावल लिखौं तिनको करौं बखान। १ ॥

चौपाई—रैवारी मधि घर है तिनको। कथा कीरतन में मन तिनको ॥ २ ॥
साधुन की सेवा सुठि करै। महाजन सबको मन हरै ॥ ३ ॥
संत संगति वृन्दावन आए। श्री हरिवंश मिले सुख पाए ॥ ४ ॥
बहुत प्रेम सों सरन लीनी। गुरु व शिष्य परिपाटी लीनी ॥ ५ ॥

इसी प्रकार पूरनदास जी के विषय में परमानन्द चरित्र में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

'पूरनदास विरक्त अनन्य। श्री हरिवंश पद शरण्य ॥ १८ ॥
प्रभु इच्छा करि ठट्ठे आए। चलि सुनीनु दरसनपरसे ॥ १९ ॥
इनके गुन मुनि नृपहिं सुनाये। आदर सौं पूरन पधराये ॥ २० ॥

परमानंद रसिक की कथा से ज्ञात होता है कि वह बड़े शूर क्षत्रिय के पुत्र थे और "साहि हिमूं के हैं चाकर"—अर्थात् हुमायूं के तीन हजारी मनसब थे।[1] वह रुष्ट होकर ठट्ठे में आए थे।[2] इन्होंने हुमायूं शाह की बहुत सेवा की थी। इन्हें जहाँ भेजा गया वहीं इन्होंने कार्य किया और शाह को बहुत प्रसन्न पहुँचाया। इनको भगवद्भक्ति से बहुत प्रेम था। 'पूरनदास' के आगमन से इन्हें परम सुख मिला। वह उनसे प्रत्येक दिन श्री हरिवंश का नाम सुनने को कहते थे—

श्री हरिवंश वर्ने चित लहै। सब अभिलाषा मन में कहै ॥ १८ ॥

परमसंत पूरनदास के ठट्ठे में आगमन के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है —

'संवत् सं आसरे आयो सुदि। नवमीतिथिवासर भरे पुर ॥
---- ---- ----
सदाचार भागवत सुहाए। नाम धर्म धर्म में विसराए ॥

१—भगवत मुदित कृत श्री हित चरित्र व रसिक अनन्य माल की द्वितीय हस्त लिखित प्रति में "साहि हिमाऊं के हैं चाकर" उल्लिखित है। 'परमानंद की परचयी' — ॥ ४ ॥ पृ० ३४

२—ठट्ठे—सिन्ध में—आधुनिक पश्चिमी पाकिस्तान।

परमानंद ने पूरनदास को कुटी में बहुत दिनों तक रखा। परन्तु थोड़े वर्ष ही जाने के पश्चात् परमानंद ने स्वयं साहु को वहाँ से स्थानान्तरण के लिए लिखा" ‥ ‥ ‥ ‥ ‥

'सिध्यौ साहु को कुछे भये।
मेरे बसन और पठायहु। मोको बन एकांत बतावहु॥
लिखिली लिखी साहु की आई। और भेजए लये बुलाई॥

तत्पश्चात् मनसब इत्यादि त्याग कर परमानंद वृन्दावन आकर बस गये। और छो वर्ष तक की आयु भोगकर परमधाम को चले गए। भगवत मुदित के कथनानुसार परमानंद का—

'पूरन के परताप तें मिटयौ जगत संताप॥

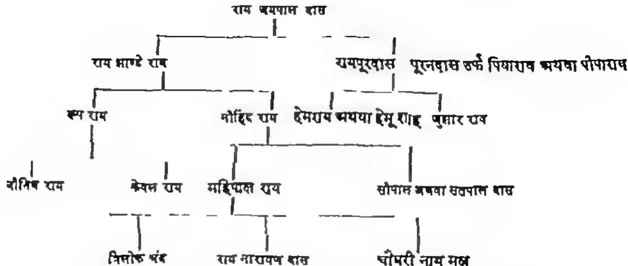
इस प्रकार तत्कालीन ग्रन्थ द्वारा पूरनदास की कृति पर प्रकाश पड़ता है। इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि अबुल फजल द्वारा वर्णित हेमू के पिता अत्यन्त धर्मात्मा व परम भक्त थे। इसीलिए उन्होंने ८० वर्ष की अवस्था में धर्म परिवर्तन अस्वीकार करके फाँसी को सहर्ष स्वीकार करके धर्म पर अपनी बलि दी। पूरनदास व भगवतदास की राधावल्लभी सम्प्रदाय में पर्याप्त ख्याति थी। इसी कारण से हित हरिवंश जी ने एक को कुटी व दूसरे को ओरछा—परमानंद व व्यास जी के पास अपने मत का प्रचार करने के लिए भेजा था। उपरोक्त ग्रन्थ में उल्लिखित तिथियों से भी पूरनदास के हुमायूँ व अकबर के समकालीन होने का प्रमाण मिलता है।

हेमू की वंशावली—

हेम राय अथवा हेमू साह जो हेमू के नाम से प्रसिद्ध हैं राय जयपाल[1] दास के पौत्र थे। उनके पिता का नाम राय पूरन मल (पूरन दास) उर्फ पिया राय था। उनके छोटे भाई का नाम जुझार राय था। हेमू के जीवन काल में उनके भतीजे महिपाल ने सेना नायक के रूप में और अफगान प्रति द्वन्द्वियों के विरुद्ध लड़ाइयों के विजेता के रूप में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी। हेमू के भानजे रमैया[3] का वर्णन भी पानीपत की दूसरी लड़ाई में वाम पक्षीय सेना के नायक के रूप में विशद रूप से उपलब्ध है। इन दोनों योद्धाओं के विषय में अन्य विवरणों का अभाव है। महिपाल राय ऑडेराय के कुल में से थे जिनके दो पुत्र थे मौजिद राय तथा रूपराय। मौजिद राय का पुत्र महिपाल था और रूपराय का पुत्र भैयाल राम और मौजिद राय थे। महिपाल दूसर के पुत्र माधवमल

१—अकबरनामा—ग्लाडविन आइन-ए-अकबरी—पृ १४०
२—धर्मसिंह हेमू और वंशावली—पृ० ३३।
३—अबुल-फजल अकबरनामा जिल्द—२ पृष्ठ ६९।

हेमू की वंशावली



उपरोक्त वंशावली साधु धर्म मित्र द्वारा प्रकाशित 'हेमूवीर' तथा रिवाड़ी निवासी हेमू के वंशजों द्वारा प्रेषित सूचना पर आधारित है। इस संबंध में कुछ सूचना कानौड़िये दूसरों के तीर्थराज प्रयाग के पंडा राधा राम के वंशजों के पास सुरक्षित बहियों में भी उपलब्ध है।

को अकबर द्वारा दिये गये फरमानों[1] में से एक जिनमें परगना कानौड़ की नारनौल सरकार में कानूनगोई उसको दी गई थी में उसका विस्तृत वर्णन है। यह जागीर ११०० रुपया वार्षिक की आय की थी और पटियाला राज्य (जिसका विलय अब पूर्वी पंजाब में हो गया है) में स्थित थी। ४०० वर्ष से अधिक पुराना मौलिक फरमान महिपाल के वंशजों से सुरक्षित रखा हुआ था और वह स्वर्गीय धर्म मित्र भार्गव (जयपुर) द्वारा प्रकाशित कराया गया है। इसमें लिखा है—

अल्लाह—हो—अकबर मुहर मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर शाह गाजी फरमान आलीशान वाजीबुल—अर्ज—मायमल वल्द महिपाल धूसर वाकाह धूस—

'आलीशान फरमान द्वारा यह मालूम हो कि महिपाल धूसर के पुत्र मायमल को इस्लाम की छत्रछाया में तारीख से आरम्भ होकर, नारनौल की सरकार म परगना कानौड़ की कानूनगोई प्रदान की गई है ताकि इसको पाने वाला परोपकारी और रैयत की सरपरस्ती करने वाले दरबार के सामने अपने को पेश करके रैयत के कल्याण व उन्नति का लेखा-जोखा दे। प्रत्येक वर्ष के अन्त में उसको दरबार में स्वयं आकर यथाविधि अर्पित करके अपना आदर करना चाहिए। इस प्रकार विधिवत अपने को अर्पित करते समय उसको सम्राट के दफ्तर (कार्यालय अथवा सेक्रेटेरियट) में सब कागजात पेश करने चाहिए। परगने की कुल मालगुजारी में से कानूनगो के रूप में की गई सेवाओं के लिए अथवा शाही सेना के सैनिकों के वेतन के भुगतान के लिए ११०० रुपए वार्षिक व्यय की स्वीकृति दी जाती है। शाही खजाना उस महाल से संबंधित व्यय के पूर्ण उत्तरदायित्व से मुक्त है। उस परगने के सभी वर्तमान और भावी जागीरदारों को कानूनगोई के शाही फरमान का ध्यान रखते हुए, नागरिक अथवा माल सम्बन्धी या वचन अथवा जन-कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विषय को उपर्युक्त अधिकारी के सामने पेश करना चाहिए। फरमान के पाने वाले को हर वर्ष उसके नवीकरण की आवश्यकता नहीं है और उसको फरमान द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्व से कभी विमुख न होना चाहिए।

हेमू की जन्म तिथि और बाल्यकाल—

हेमू के जन्म की ठीक तिथि के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। अबुल फजल के अकबरनामे में लिखा है कि सन् १५५६ ई० में फाँसी पर चढ़ने के समय हेमू के पिता राय पूरनदास ८० वर्ष के थे।[2] इससे हेमू के जन्म की

१—धर्ममित्र हेमू और फरमान—पृ० ९।

२—अकबरनामा से उद्धृत

ब्लोचमैन आइने-अकबरी पृ० ३२०।

तिथि सन् १५०० ई० लगाई गई है, अर्थात् जब उनके पिता २८ वर्ष के रहे होंगे। इस तिथि के अनुसार हेमू की आयु उस समय [illegible] वर्ष की रही होगी जबकि उन्होंने एक सेना-नायक, राजनीतिज्ञ और तत्पश्चात् अदिली के प्रधान मंत्री और अन्तत विक्रमादित्य के रूप में व दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट के रूप में ख्याति प्राप्त की। सन् १५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई के समय हेमू की आयु ५६ वर्ष की रही होगी।

कुल रीति के अनुसार हेमू ने शिक्षा अपनी मातृ भाषा हिन्दी व फारसी में प्राप्त की। हेमू के पिता धार्मिक व्यक्ति थे और अपना अधिकतर समय साधु संतों के सम्पर्क में व्यतीत करते थे। ८० वर्ष की वृद्धावस्था होने पर भी जब कि उनको कत्ल किया जानेवाला था उन्होंने अपने धर्म परिवर्तन से मृत्यु को अच्छा समझा।

हेमू शेरशाह की प्रचलित कथा

हेमू के प्रारम्भिक जीवन के विषय में प्रचलित कई किवदन्तियों के अनुसार यह कहा गया है कि हेमू के पिता और शेरशाह में सम्बन्ध उनके प्रारम्भिक जीवन-काल में घनिष्ठ सम्बन्ध रहे थे। यह कहा गया है कि जीवन के आरम्भ में शेरशाह के पिता की विमुखता के कारण उसकी माँ ने अपने दोनों पुत्रों के साथ हेमू के पिता राय पूरनमल के यहाँ रेवाड़ी में शरण ली। राय पूरनमल उस समय एक सुप्रसिद्ध जागीरदार थे जो अपना अधिकतर समय संतों के साथ भजन कीर्तन में ही व्यतीत करते थे। ऐसी किवदन्तियों की पुष्टि में ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते हैं। शेरशाह और हेमू की आयु के अन्तर से और शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन[1] से सम्बन्धित विवरण से भी इस किवदन्ती की पुष्टि नहीं होती है। शेरशाह जो फरीद के नाम से प्रसिद्ध था और १४८६ ई० में पैदा हुआ था १५ वर्ष की आयु में (अर्थात् १५०१ ई० में) जौनपुर में कम से कम तीन वर्ष बिताए, और तत्पश्चात् २१ वर्ष तक जागीरदार रहा। इस बीच में उसने अपने ऊँच-नीच [illegible] पर आरम्भ के [illegible]

१—कानूनगो: शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन। अध्याय १ पृ० २।

'हसन सूर की पहली संतान फरीद अफगान बादशाह फिरोज तुगलक द्वारा स्थापित इस पवित्र "विजय मन्दिर" हिसार फिरोजा में पैदा हुआ था। (मखजन .... अफगाना .... २०८) उसके जन्म की ठीक तिथि किसी इतिहासकार ने नहीं दी है। अब्बास सरवानी (इलियट ४ ३०८) ने कहा है कि वह सुल्तान बहलोल जिसकी मृत्यु १४८८ ई० में हुई थी के जीवनकाल में पैदा हुआ था। संभवतः तिथि १४८६ ई० रही होगी'— हिन्दुस्तान (हिन्दुस्तानी एकेडमी यू० पी० द्वारा प्रकाशित पत्रिका) जिल्द ३—पृष्ठ २०० २०१।

के समय उसके आगरा और दिल्ली से उत्तर-पश्चिम में आस जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। और इस समय हेमू का जन्म भी नहीं हुआ था। अत: इनमें घनिष्ठ संबंध होने की बहुत कम संभावना थी। शेरशाह हेमू से १२ वर्ष बड़ा था।

पर दूसरी ओर शेरशाह के माता पिता का नारनौल से सम्बन्ध और हेमू के कुटुम्बियों का उसी स्थान से सम्बन्ध जैसा कि महिपाल दूसर (हेमू का भतीजा) के पुत्र चौधरी माधमल को सरकार नारनौल के परगना कानोड़ की कानूनगोई के लिए जाने से प्रमाणित होता है। इस बात की कुछ संभावना की पुष्टि करता है कि हेमू के माता-पिता का शेरशाह की माता से अवश्य सम्पर्क था और उन्होंने उसको व उसके दो पुत्रों का पालन ही की थी।

शेरशाह की जीवनी से यह स्पष्ट है कि वह 'अपने पिता की विमुखता और असमानता और सौतेली माँ की ताड़ना के बीच पला। हसन[1] सबसे छोटी पत्नी को जो एक दासी थी और जिससे उसके दो पुत्र सुलेमान और अहमद हुए थे अधिक चाहता था। 'फरीद की माता उसके हृदयहीन पति द्वारा त्याग दी गई थी' अब्बास सरवानी के अनुसार।[2]

'बा-मादर फरीद ओ निजाम इलाका-ए-मुहब्बत ओ इखलास व मुवद्दत ना दाश्त।

(फरीद व निजाम की माँ के साथ प्रेम व वास्तविक स्नेह का सम्बन्ध नहीं रखता था।)

स्वभावत: फरीद और उसके भाई की और साथ ही उनकी माँ की भी बिलकुल परवाह नहीं की गई। वे एक दूसरे के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध के बीच बड़े हुए। ऐसा भी कहा जाता है कि इब्राहीम का परिवार अन्त में नारनौल में बसा जहाँ उसे ४० सवारों के खर्च के लिए जागीर में कई गाँव मिले। कुछ ही समय बाद इब्राहीम मर गया और हसन को अपने पिता की जागीर सौंप दी गई। हसन का परिवार पर्याप्त समय तक नारनौल में जिसे अबुल फजल ने 'इब्राहीम की जन्म भूमि' कहा है रहा मालूम होता है। मखजन-ए-अफगाना की हस्त लिखित प्रति में (पृ० २०६ बी) हसन के नाम के बाद उसके परिवार का निवास-स्थान बतलाने के लिए 'साकिन कस्बा-ए-नारनौल'[3] लिखा है।

रोहतास के निकट स्थित सहसराम और खवासपुर का [illegible] का स्थानान्तरण होने पर हसन भी पूर्वी सूबा में चला गया। उसका परिवार भी

१—कानूनगो शेरशाह अ० १—पृ० २
२—कानूनगो शेरशाह अ० १—पृ० ४ इलियट—पृ० ३१४ जिल्द—४।
३—कानूनगो शेरशाह अ० १—पृ० १

नारनौल में सस्राराम आ गया।[1] लेकिन फरीद और उसकी माँ के प्रति उपेक्षा पूर्ण बर्ताव होता रहा। जागीर के बटवारे के समय फरीद की माँ को एक भाग भी न मिला। लगभग १२०१ ई० में फरीद जौनपुर को भाग गया। इन परिस्थितियों में यह असम्भव नहीं है कि फरीद की माँ ने हेमू के पिता से कुछ आश्रय पाया हो। क्योंकि राय पूरन दास का परिवार नारनौल के परगना कानौड़ में सदा सम्बद्ध था।

हेमू की उत्पत्ति और उसका क्रमबद्ध उत्थान

अल-बदायूनी ने दिल्ली पर आक्रमण का वर्णन करते हुए हेमू को "बक्काल"[2] कहा है और उसकी सेना का प्रधानाध्यक्ष।

अबुल फज़ल और दूसरे समकालीन लेखकों ने भी उसकी सफलताओं का इसी प्रकार वर्णन किया है। उनके द्वारा उसका उत्थान आश्चर्यजनक समझा गया और उसके ऊपर सब प्रकार के घृणास्पद उपनामों की बौछार की गयी है। अबुल फज़ल कहता है—

"हेमू जिसने कि भला बुरा कह कर, झूठ और झूठा दोषारोपण लगा कर—क्योंकि मालिकों का जन-साधारण को सम्मानित करना होता है—अतः उनको आनन्द देता है—और वह भी इस सीमा तक कि वैधानिक बाप भी उनकी तीव्र दृष्टि में ओझल हो जाते हैं और स्वाभाविक दुष्टता के कारण निम्न श्रेणी से उच्च पद को प्राप्त किया था। उस अत्याचारी राजा का प्रधान मन्त्री हो गया जो अपना सारा समय कोरा आनन्द और भोग विलास में व्यतीत करता था और कार्यों की उपेक्षा करता था।[3]

इसके बाद उसने हेमू का वर्णन उसी पक्षपातमय और अन्यायपूर्ण ढंग से किया है और उसको सबसे निम्न श्रेणी का कहा है।

"हेमू बरए रो कूचहा नमक ओर फरोस्त" अर्थात् हेमू गली-गली घूम कर नमक बेचने के लिए फेरी लगाने वाला बना दिया गया। कितना असत्य तथा भ्रमात्मक वर्णन है सच्चे इतिहास से कितना परे है। यह नीचे लिखी पंक्तियों से और स्पष्ट हो जायगा।

१—कानूनगो शेरशाह अ० १—पृ० ५

२—अलबदायूनी मुन्तखब उत्-तवारीख पृ ६ जिल्द २ लोव द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित—कलकत्ता १८८४।

३—अबुल-फ़ज़ल-अकबरनामा (बेवरिज द्वारा अनुवादित) जिल्द—२ पृ० ११४—११९।

हेमू का वर्णन

"ईश्वर की शक्ति के चमत्कार खोजने वालों को लम्बा दृष्टिकोण रखना चाहिए और हेमू के वर्णन से शिक्षाप्रद चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। बाहरी रूप से उसकी न कोई पदवी (हस्ब) थी न कोई जाति (नसब) थी न कोई आकृति (सूरत) थी और न उसमें श्रेष्ठ गुण (सैरात) थे। सर्वोपरि अनुपम परमात्मा ने किसी गुप्त कारण वश जो कि चतुर व्यक्ति की दृष्टि से भी छिपा था उसको उच्च स्थान पर पहुँचा दिया गया या शायद उस युग के दुष्टों को नीचा दिखाने के लिए उनसे भी निकृष्ट एक और को परमात्मा ने भेज दिया। संक्षेप में वह दुष्ट-आकृति वाला था छोटे कद का और दंभपूर्ण विचारों का था मेवात के एक नगर रिवाड़ी[1] के क्षुद्र फेरी वालों[2] में ऊँचे पद पर पहुँचाया गया। जहाँ तक उसकी जाति (नसब) का सम्बन्ध है, वह दूसर जाति का था जो भारत में फेरी वालों की निम्नतम श्रेणी है। गलियों के बीच उसने हजारों मृत प्राय व्यक्तियों के साथ (बा-हजारान-बिनिमाकी) खार (निमक-एस्सोर) बेचा जब कि अन्त में वह चतुरता के कारण सलीम जिसका संक्षिप्त वर्णन पहले ही किया जा चुका है के अधीन एक सरकारी फेरीवाला हो गया।

तत्कालीन चाटुकार इतिहासकार ने अपने आश्रयदाता मुगल सम्राट को प्रसन्न करने के लिए उसके प्रतिद्वन्द्वी की बुराई करने में अपनी दक्षता पूर्णतया प्रदर्शित कर दी है। सत्य का तो बिलकुल गला ही घोट दिया है। इतिहासकार पाठकों को विश्वास दिलाना चाहता है कि ईश्वर ने ही हेमू को निकृष्ट रूप में उत्पन्न किया। हेमू के साथ ही साथ समस्त दूसर जाति को भी निम्न कोटि का बता दिया गया है।

एक दूसरे मुस्लिम लेखक फिरिश्ता ने अपने 'भारत में मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास' में हेमू के उत्थान का उल्लेख इन शब्दों में किया है।

"जैसे ही मुबारिज खाँ ने सूर-वंश की गद्दी प्राप्त कर ली थी उसने आदिल शाह की उपाधि धारण कर ली। पर निम्न श्रेणी के लोग शुरू का 'आ' हटाकर और शब्द के अन्त में 'ई' जोड़ कर उसको 'अदली' कहकर पुकारने की आदत में थे जिस नाम से वह वंशजों में प्रसिद्ध है। सदा

१—एक गाँव जिले में और एक रेलवे जंक्शन।

२—घूमकर माल बेचने वाले

३—बाजारों का अधीक्षक या बाजार का मुखिया-अर्थात्-अबुल-फ़ज़ल अकबर नामा'-जिल्द १-पृ० ६१५ ६१९।

सुख-प्राप्ति में रत रहने के कारण आदिली न पढ़ने व लिखने की साधारण योग्यता प्राप्त करने पर भी ध्यान नहीं दिया। वह विद्वानों से घृणा करता था और अपनी भांति न व पढ़े लिखे लोगों की संगत में रहता था जिनको उसने राज्य के उच्चतम पदों तक ऊँचा उठा दिया। इन्हीं में एक हेमू (एक भारतीय दुकानदार) था जिसको उसके पूर्वाधिकारी सलीम शाह ने बाजार का अधीक्षक (सुपरिटेंडट) बना दिया था और उसे कार्यों का पूर्ण प्रशासन सौंप दिया था।[1]

मापन समकालीन फारसी अभिलेखों (रिकार्डस्) से प्राप्त सूचना के आधार पर अंग्रेज इतिहासकारों ने भी उसको नीच कुल में उत्पन्न बताया है। 'हेमू ने अपने हिन्दू धर्म की मान्यता नीच कुल और छोटा कद के होते हुए भी अपने सम्राट के विश्वास का एक योग्य सेनानायक और जनता का शासक बन करके उचित सिद्ध कर दिया।"[2]

मुस्लिम-बक्काल के रूप में

'बक्काल' शब्द का तात्पर्य कोई जाति अथवा सम्प्रदाय से नहीं है। स्टैनसेस के अंग्रेजी व फारसी कोष के अनुसार भारत में इसका अर्थ अनाज का व्यापारी बताया गया है परन्तु तत्कालीन भारत यह केवल एक घृणा सूचक शब्द था जिसका प्रयोग लेखक उन व्यक्तियों के लिए करता था जिनकी वह निन्दा करना आवश्यक समझता था।[3] अबुल फजल ने स्वयं अकबरनामे में एक मुस्लिम सेना नायक को इन शब्दों में "बक्काल" कहा है।

"ईरी टीना मीर अब्दुल मकरी का पुत्र हुसैन मकरी ने काश्मीर फरीदाल (बक्काल) ख्वाजा हाजी पर, जो मिर्जा के कार्यों का मैनेजर था विजय प्राप्त की"।[4]

एक मुस्लिम सेना नायक का 'बक्काल' के रूप में एक और उल्लेख भी है।

"इस माह के दसवें दिन जो सम्राट ने एक प्राचीन विश्राम-स्थल रोमनी नगर में जो भागपुर के आधिपत्य में थे एक था डेरा डाला। यहाँ से उसने

१—ब्रिग्स जॉन फरिश्ता का भारत में मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास १६१२ ई० तक जिल्द २ लन्दन १८२९।

२—स्मिथ विन्सेंट महान मुगल अकबर पृ ३४।

३—अंग्रेजी फारसी कोष पृ० सं० १९१—
baqqal A green grocer a vend or of provisions in general (in India) a grain merchant a Corn chandler

४—अकबरनामा भा०३१—पृ ४०४ ४०६।

(अकबर ने) कासिम अली खाँ 'कल्याण' को खान आलम के पास यह पूछने के आशय से भेजा कि वह राय दे कि आगे क्या किया जाय ।[1]

शेरशाह नीच कुल में उत्पन्न —

मुगल व उनके दरबारी लेखक अपने उच्च वंश जिसको वे तैमूर से सम्बद्ध बताते थे के बारे में बड़ा बड़ा गुमान रखते थे । तारीख-ए-दाऊदी के अनुसार हुमायूँ द्वारा शेरशाह तक का यह कह कर उपहास किया गया है— नीच-कुल में उत्पन्न (राजा होते हुए भी) उसमें एक साधारण सैनिक की भव आती है । यह भी कहा गया कि शेरशाह का दादा केवल एक घोड़ों का व्यापारी था और इसलिए पन्थी में बहुत नीचा था । बाद में जब शेरशाह बादशाह हो गया यह दावा किया गया कि वह घूर के शाहन शाहानी सामन्तों का वंशज था ।[2] फरिश्ता ने उनके लिए कहा कि वे अपने को घूर के सुल्तानों के वंशज मानते थे' (फारसी पाठ्य-पृ ०) । कानूनगो के मतानुसार यह सही नहीं है और हस्सन का पिता इब्राहीम रोह का एक निम्न वर्गीय अफगान था और उसका घोर के सुल्तानों के कुल से कोई सम्बन्ध न था ।

अबुल फजल के शब्दों में—

'इब्राहीम एक घोड़े का व्यापारी था और उसकी व्यापारियों के समूह में कोई विशेषता न थी ।'[4]

इसकी पुष्टि मुश्ताकी-ए-तवारीख द्वारा होती है ।

'इब्राहीम बहूर-ए फरीद मार्दनी नरमाह सम्मानती-ए-अस्पान-म कर्द' ।

१—अल-बदाऊनी—पृ १८९—जिल्द—१ लाल द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद । वही—पृ० २४९ पर 'कल्याण राय अकबरा' का भी उल्लेख है ।

२—अब्बास सरवानी द्वारा अपनी तारीख ए शेरशाही में दी गई वंशावली इस प्रकार है ।

मियां इब्राहीम
|
मियां हसन
|
(फरीद निजाम) (अली यूसुफ) (खुर्रम शादी खाँ) (सुलेमान अहमद)
१ पत्नी से — २ री पत्नी से — ३ री पत्नी से — ४ थी पत्नी से

३—अर्स्कीन 'हुमायूँ बादशाह' जिल्द १ म १६—पृ १९० पुष्टांकित टीका—२

४—अकबरनामा—पृ १२६

५—मुश्ताक-ए-तवारीख-फारसी पाठ-मा० मजहर हसन द्वारा संपादित पृ ११५

इब्राहीम के पुत्र हुसैन ने स्वीकार नहीं किया और पौत्री पना सिंह बहुत समय तक यह अकबर के दरबारी रामसिंह के दास रायमल की सभा में रहा और उसके दास उसके स्वामी बदन।[1]

अब प्रश्न इस विषय में उठता है कि हेमू रिवाड़ी का निवासी था और धूसर जाति का था जो उस समय में प्रसार भी थी—एक तो वह या वैश्य जाति के धूसर वर्ग[2] से बनी थी और दूसरी भार्गवों[3] की जो रिवाड़ी में बड़ी संख्या में एकत्र हो गए थे। जाति और वर्ग के मध्यकालीन मत के अनुसार इन वर्गों अथवा जातियों में से कोई भी नीच या निम्न श्रेणी की नहीं कही जा सकती। मध्यवर्ती युग में इनका समान रूप से आदर किया जाता था और ये कथित उच्च जातियों में से थी। इसलिए हेमू के नीच कुल में होने के सम्बन्ध के मुसलमान वर्णन राजनैतिक अनुराग का फल है न कि उसमें कोई ऐतिहासिक सत्य है।

1—अकबरनामा पृ० ३०७

2—१८८१ की जनगणना की रिपोर्ट।

'इस विवरण में स्त्रियों में पूछ-ताछ की गई और परिणामों के अनुसार वर्गों का पुनः वर्गीकरण किया गया। धूसर जो ब्राह्मण जाति के होने का दावा करते हैं एक अलग जाति धूसर भार्गव के रूप में दिखाए गए हैं। उनमें शूद्रों के वर्ग से विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित हैं। दूसरी ओर धूसर बनियों का एक वर्ग है जिसमें विधवा-विवाह की अनुमति है और जिसका भार्गव जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

3—गुड़गांव (पूर्वी पंजाब) का जिला गजेटियर—

'धूसर ब्राह्मणों के वंशज होने का दावा करते हैं। वे अपने नाम की उत्पत्ति ढोसी से बताते हैं जो नारनौल के पास कोसी घाटी वाली पहाड़ी है जहाँ उनके पूर्वज च्यवन (ऋषि) ने भारी तपस्या की। प्रसिद्ध हेमू रिवाड़ी का एक धूसर था।

डा० आशीर्वादी लाल —की मुगल एम्पायर समकालीन इतिहासकारों ने हेमू को बक्काल या वैश्य कहा है, वास्तव में धूसर भार्गव था (गौड़ ब्राह्मणों की उप जाति) पृ० सं० १२९

अध्याय—२

अफ़गानों का उत्थान तथा हेमू

जिस समय सुल्तान बहलोल दिल्ली के सिंहासन पर बैठा हिन्दुस्तान के विभिन्न सूबों का शासन कई छोटे राजकुमारों द्वारा किया जा रहा था और प्रत्येक शहर में 'कुतबा' अलग-अलग व्यक्तियों के लिए पढ़ा जाता था।[१] मख़ज़न-ए-अफ़ग़ान के लेखक द्वारा कही गई बहलोल के आरंभिक जीवन की कहानी के अनुसार बहलोल की शक्ति का आरंभ उसकी सरहिंद की गवर्नरी के समय हुआ जहाँ कि उसने संपूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। वह सुल्तान शाह का जो इस्लाम शाह के नाम से प्रसिद्ध था और जो मुबारक शाह के समय में सरहिंद की सरकार संभाले था भतीजा था। उस समय जब कि चारों ओर अराजकता फैली हुई थी बहलोल ने अपने को सिंहासन पर स्थापित किया और दिल्ली वासियों को केवल नाम के बादशाह सुल्तान मुहम्मद जिसको इस्तीफा देना पड़ा के स्थान पर अपने को बादशाह मान लेने के लिए राजी किया। हिसाम खाँ के नाम से प्रसिद्ध हाजी शैबानी के ऊपर सुगम विजय ने अफ़गान साम्राज्य की स्थापना के लिए रास्ता साफ कर दिया। अफ़गान इतिहासकारों ने एकमत से भारत में अफ़गान शक्ति के आरंभ का सुल्तान बहलोल लोदी की नीति का फल बताया है।[२]

बहलोल लोदी की सफलता कुलीन अफ़गानों के साथ अपनी प्रभुता का बाँट लेने की धारणा में निहित थी। उसने कहा था कि हिन्दुस्तान पर प्रभुता उसकी होनी चाहिए जिसने एक राष्ट्र पर जनवासियों के साथ शासन किया हो और यद्यपि वह स्वयं ही अपनी जातियों और धमा की संख्या से हिन्दुस्तानी सम्राटों से ऊपर गिना जाता था और गरीबी और दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते हुए भी अफ़गानों का पूरा राष्ट्र उनके सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव थे उसने उन्हें कुमान दी और उन्हें आर्थिक संकीर्णता की दशा से निकालने तथा शक्ति सम्पन्न और धनवान मनुष्यों में

१—नियामतुल्ला—मख़ज़न-ए-अफ़ग़ाना डार्न द्वारा अनुवाद—अफ़गानों का इतिहास लेखक ने अपना लेख तारीख-ए-इब्राहीम शाही और तारीख-ए-निज़ामी पर आधारित किया है।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० ९१।

रक्षा करने की इच्छा प्रकट की ।[1] इससे स्वभावतः भारत में अफगान जातियों का अभूतपूर्व आगमन हुआ। बहलोल ने 'प्रत्येक राष्ट्र और जनजाति के मुखिया सामन्तों को (भारत) आने के लिए' फरमान निकाला ।[2] अफगानों ने तुरन्त ही उसका प्रतिपादन किया और वे हिन्दुस्तान आने से बड़े प्रसन्न थे। उनमें से कुछ तो रोह साम्राज्य को लौट गए, परन्तु अधिकांश जिन्होंने उसके आधीन नौकरी की उत्तरी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक बस गए। कुछ ही समय के भीतर देश अफगान योद्धाओं से भर गया जो अपनी पत्नी व बच्चों के साथ यहाँ आकर बस गए। इस अन्तर्प्रवेश के प्रवाह का ऐसा समा बंधा कि उन्होंने (अफगानों) हिन्दुस्तान में प्रति दिन प्रति मास और प्रति वर्ष पहुँचना आरंभ किया और मन भर के जागीरें प्राप्त कीं। इस नीति का परिणाम महान था—यही कि अफगान बहुत शीघ्र यहाँ के निवासी हो गए और हिन्द को अपनी मातृ भूमि समझने लगे।

शेरशाह के पूर्वज—

यह बहलोल के सुखदायी शासन काल की बात है जब कि शेरशाह के दादा मियाँ इब्राहीम सूर, हिन्दुस्तान आए। अब्बास सरवानी के अनुसार, इब्राहीम रोहड़ी के नाम से प्रसिद्ध घरबारी या नमरभारी नामक स्थान से आया था कि सुलेमानी शैल का भाग है। यह लम्बाई में ६ या ७ कोह[3] है और पशावर के पास कमालपुर[4] के किनारे बसा है। फरीद के पिता मियाँ हसन खाँ ने उसका साथ दिया। बहलोल के शासन काल में ही फरीद का जन्म १४८६ ई० में हुआ था।

१—नियामतउल्ला कि मखज़न-ए-अफगाना अंग्रेजी अनुवाद डार्न द्वारा—पृ० ८०-८१।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० ९२।

बहलोल लोदी ने कहा—कोई अफगान जो रोह देश से हिन्दुस्तान में मेरी नौकरी करने आता है, उसको मेरे पास लाओ। मैं उसको ऐसी जागीर दूँगा जो अनुपात में उसके रेगिस्तानी जमीनों से अधिक हो और जिससे उन्हें संतोष हो जाए लेकिन यदि वह रिश्ते अथवा दोस्ती के नाते आप में से किसी की नौकरी में रहना चाहे तो आप उसको संतुष्ट करने का प्रबंध करें। क्योंकि यदि मैंने सुना कि कोई रोह से आया हुआ अफगान जीविका-साधन या नौकरी न मिलने के कारण लौट गया तो मैं उस सामन्त की जागीर ले लूँगा जिसने उसे रखने से मना किया हो।

३—कोह (दो मील) (Karoha) A road measure of two miles. फारसी अंग्रेजी कोष।

४—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० ९६-पाद-टिप्पणी।

आरम में इब्राहीम एक शक्तिशाली अफगान प्रधान सामन्त महाबत खां सूर जिसकी पंजाब के परगने हरियाणा और बाहुवल्दा में जागीरें थीं का अधिकारी हो गया। कुछ समय बाद इब्राहीम ने मेहदी खां से अपना संबंध तोड़ दिया और जमाल खां सारंग खां के पास चला गया जिसने उसके अधीन ४० घुड़सवार रख दिए और जागीर में परगना नारनौल दिया। इस प्रकार इब्राहीम और उसका पुत्र हिसार फिरोजा में बैजवाड़ा में बस गए। कुछ समय बाद हसन इब्राहीम से अलग हो गया और सुल्तान बहलोल के महान सामन्तों में से एक उमर खां सरवानी की सेवा में लग गया।[1] हसन खां को एक जागीर शाहाबाद में दी गई[2] जो मारवली कहलाती थी और सरहिन्द सरकार में थी। उमर खां से यह प्रार्थना भी की गई कि युवक फरीद को वह अपनी प्रजा बना ले लेकिन बहुत छोटा होने के कारण उसे वह सम्मान देना मंजूर नहीं किया गया और मारवली में केवल एक ताल्लुका दे दिया गया।

इब्राहीम की मृत्यु के बाद हसन ने उमर खां से प्रार्थना की कि नारनौल में उसके पिता की जागीर उसको प्रदान कर दी जाए। उसे वह मिल गई और जमाल खां उसको अपनी प्रजा बनाने के लिए भी राजी हो गया। यह उमर के कहने-सुनने का प्रभाव था कि जमाल ने उसे यह सम्मान दिया।

जमाल खां का स्थानान्तरण—

बहलोल के उत्तराधिकारी सुल्तान सिकन्दर ने जौनपुर की विजय के बाद पूर्वी जिलों का शासन १२ हजार घुड़सवारों की शक्ति सहित जमाल खां को सुपुर्द कर दिया। जमाल का कृपापात्र होने के कारण हसन को पूर्व में उसके साथ जाने के लिए कहा गया और उसे वाराणसी के पास सहसराम हाजीपुर और खवासपुर टाडा में ५०० घुड़सवारों के भरण-पोषण के लिए जागीर मिली। हसन के साथ-साथ उसका परिवार भी नए मुल्क में जाकर बस गया परन्तु 'सुलेमान की मां के प्रति हसन का झुकाव होने के कारण और इसमें फरीद की ओर उसके स्नेह और प्रेम को ठेस पहुँचने' के कारण उनके पारिवारिक कष्ट घटने के स्थान पर और बढ़ गए।[3] जागीर के बँटवारे और फरीद की उपेक्षा

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ ९९— 'यह मालूम होता है कि बहलोल के दरबार का एक उच्च प्रधान मियां हसन खां सरवानी जिस खान ए-आजम उमर खां की उपाधि मिली थी अपने सबसे बड़े पुत्र के जन्म के कुछ समय बाद ही सुल्तान द्वारा लाहौर का गवर्नर बना दिया गया था और उसे सरहिन्द में जागीर दे दी गई थी।

२—नियामतउल्ला दि मखजन-ए-अफगाना अंग्रेजी अनुवाद डार्न पृ० ८०-८१।

३—नियामतउल्ला दि मखजन का अंग्रेजी अनुवाद डार्न पृ ८०-८१।

ने पिता और पुत्र के बीच की खाई और गहरी कर दी जिसका फल यह हुआ कि फरीद जौनपुर चला गया। वह वहाँ दो उद्देश्यों से गया था—अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए और जमाल खाँ के संरक्षण में सेवा प्राप्त करने के लिए। फरीद के इस व्यवहार ने हसन को घबराया और उसके प्रति जमाल खाँ की कृपा के प्रभाव के भय से उसने इस अवसर पर जमाल खाँ को पत्र लिखा। इसमें हसन ने जमाल खाँ से फरीद को जो उसके पास से असन्तुष्ट होने के कारण चला गया था मनाने की तथा अपनी शिक्षा के लिए वापस भेजने की प्रार्थना की।[1] जमाल ने फरीद को बुलवाया और उसको उसके पिता की इच्छा से अवगत किया। फरीद ने उसका आदेश दृढ़तापूर्वक मना कर दिया, यह कहते हुए कि उसकी साहित्य की ओर पहले ही रुचि हो चुकी है और शिक्षा प्राप्ति के लिए सहसराम से जौनपुर कहीं आगे था और यहाँ इसके लिए अवसर भी अधिक थे। इसके बाद फरीद ने बड़ी तत्परता के साथ शिक्षा की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया—काजी शहाबुद्दीन की टीका टिप्पणियों के साथ काफिया पढ़ना और फारसी साहित्य गुलिस्ताँ, बोस्ताँ और सिकन्दरनामा पढ़ना। इसके अतिरिक्त उसने मुख्यतः सामान्य इतिहास की शिक्षा की ओर और विशेषतः प्राचीन बादशाहों के इतिहास की ओर ध्यान भी लगाया।[2] जैसा कि ... लेखक वाकयात में लिखा है—"फरीद सदैव प्राचीन बादशाहों के गुण पर लिखी गई पुस्तकों का पढ़ना पसंद करता था। इतिहासकार फरीद की साहित्यिक रुचियों की प्रशंसा करने में एकमत हैं—फरीद का सांसारिक मामलों का विस्तृत अध्ययन और अनुभव यह प्रकट करता है कि वह जौनपुर पर्याप्त समय तक रहा।" यह अवधि कम से कम १० वर्ष की—कदाचित् १५०१ ई० से १५११ ई० तक अर्थात् उसके २५ वें वर्ष तक—कही जाती है।[3]

पिता से पुत्र का राजीनामा—

फरीद को सहसराम वापस लाने के लिए राजी करने के प्रयास में असफल होकर हसन स्वयं जौनपुर गया और अपनी जागीरदारी के पद से फरीद के पक्ष में त्यागपत्र देने के लिए सहमत हो गया। फरीद जागीर पर पूर्ण अधिकार दिए जाने की शर्त पर उसका भार सम्भालने के लिए तैयार हो गया। हसन भी ऐसा करने को तुरन्त राजी हो गया। फरीद सहसराम पहुँचा और वहाँ तत्परता से अपनी जागीर का शासन करने लगा। स्वयं हसन खाँ को जौनपुर में अपने स्वामी

१—नियामतउल्ला हि० मखजन अंग्रेजी अनुवाद भाग पृ० ८०-८३।
—नियामतउल्ला हि० मखजन अंग्रेजी अनुवाद भाग पृ० ८०-८१।
३—तुलना कीजिए अब्बास सरवानी पृ० १०-१२; इलियट ४ १९३।

की सेवा में प्रस्तुत होने के लिए आदेश दिया गया। कुछ ही समय में फरीद ने जागीर के मामलों को सुव्यवस्थित कर दिया और सम्पूर्ण जागीर में पुनः शांति स्थापित कर दी। उसने २ घुड़सवारों की सेना का एक दल तैयार किया और पड़ोसी जागीरदारों को अधिकार में कर लिया।

फरीद जागीर का प्रबंध १५१८ ई० या १५१९ ई० तक करता रहा अर्थात् उसने अपने पिता के परगनों पर ७ या ८ वर्ष तक सफलता पूर्वक राज्य किया। इसी के साथ में पूर्वी सूबा में दरिया खाँ लोहनी ने विद्रोह किया। फरीद का जागीर से हटना उसकी सौतेली माँ (अर्थात् सुलेमान की माँ) के दबाव के कारण हुआ। दोनों भाई सहसराम छोड़कर आजीविका की खोज में आगरे की ओर चले गए और १५१८ ई० में सुल्तान इब्राहीम के दरबार में नौकरी के लिए पहुँचे।

शेरशाह के जीवन-काल की प्रमुख घटनाओं का तिथिक्रम—

१५१९ ई०—अपने पिता का घर दोबारा छोड़ा।

१५२० ई०—फरीद के पिता मियां हसन की मृत्यु।
दौलत खाँ ने शाही फरमान फरीद के नाम में प्राप्त किया।

१५२१ ई०—बिहार के गवर्नर दरिया खाँ लादी के विद्रोह से उलझनें पैदा हो गई।

१५२२ ई०—फरीद ने बहर खाँ के अधीन नौकरी कर ली और शेर खाँ की उपाधि प्राप्त की।

१५२६ ई०—शेर खाँ का ससरामे[1] में आगमन जब कि उसका स्वामी कन्नौज में मई १५२६ ई० में मुगलों की गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। शेरखाँ ने बहादुर खाँ नूहानी के अधीन नौकरी कर ली।

१५२७ ई०—ससराम में विरोधी दावेदारों ने शेरखाँ को हरवाया जिसने दिसम्बर १५२६ ई० के बाद और जून १५२८ ई० तक जुनैद बारलस के मुवक्किल के रूप में बाबर की नौकरी की।

१५२८ ई०—चंदेरी पर चढ़ाई के समय बाबर का साथ दिया।

१५ ८ ९ ई०—बाबर के पूर्वी आक्रमण की सफलता के फलस्वरूप शेरखाँ को अपनी जागीर फिर से मिल गई।

१५२९ ई०—बिहार में महमूद लोदी की निष्फल चढ़ाई और बाबर के द्वारा उसकी पराजय के बाद शेरखाँ को जागीर अंतिम रूप से सौंप दी गई।

१—ससाराम सहसराम बिहार का एक जिला।

शेरशाह बिहार के नायब-सूबा के रूप में—

१५२९ ई०—बिहार में अराजकता। जलाल खां को पुनः सूबेदार बनाया। व दादू को संरक्षिका और उसने शेर खां को अपना नायब बना दिया।

१५३० ई०—चुनार पर कब्जा।

१५३१ ई०—जनवरी में शेर खां का हुमायूं के सम्मुख समर्पण करना।

शेरशाह का सर्वोच्चाधिकार प्राप्त करना—

१५३४ ई०—सूरजगढ़ की लड़ाई। बिहार के बिना मुकुट (ताज) के बादशाह के रूप में।

१५३५ ई०—फतूह मलिका का खजाना प्राप्त होना और उत्तरी-पूर्वी बिहार जीतना।

१५३६ ई०—गौर (पूर्वी बंगाल का एक नगर) के प्रवेशद्वार पर बंगाल के महमूद शाह के विरुद्ध लड़ाई।

१५३७ ई०—बंगाल पर दूसरा आक्रमण—शेरशाह दूसरे कम सुरक्षित मार्ग से गया और ४०००० घुड़सवारों १५०० हाथियों और ३०० किश्तियों के बेड़े तथा २ लाख व्यक्तियों के साथ गौर पर कब्जा कर लिया।[1]

शेरशाह और मुगल—

१५३७ ई०—हुमायूं से मुठभेड़।

अक्टूबर १५३७ से मार्च १५३८ तक—चुनार का घेरना। बंगाल को जीतना और गौर पर अधिकार करना। महमूद शाह की पराजय।

१५३८ ई०—रोहतास गढ़ के किले पर कब्जा।

१५३८ ई०—हुमायूं का बंगाल की ओर कूच करना। गढ़ी में मुगलों की पराजय। शेरशाह का गौर से पीछे हटना। पूर्वगामी इतिहासकारों का कहना है कि शेर खां ने गौर नगर को विध्वंस कर दिया और लूट लिया और ६ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं पर अधिकार किया।[2]

दिसम्बर १५३८ ई०—मिर्जा हिन्दाल का आगरा में विद्रोह। हुमायूं का बंगाल से कूच करना।

१—स्टुअर्ट बंगाल में मुसलमानों का इतिहास—पृ० १५ १८—रॉयल डी बारोस् दा एशिया—डिकेड ४ भाग २—पृ० १००।

२—स्टेप्लटन पूर्वगामियों का इतिहास—पृ० ८०।

जब कि १५३८-३९ की वर्षाऋतु में हुमायूँ विश्राम करता रहा, शेरशाह कार्यशील था। उसने बनारस पर कब्जा किया, बहराइच छीना और एक ओर कन्नौज और सम्भल के बीच का और दूसरी ओर जौनपुर और बहराइच के बीच का सम्पूर्ण प्रदेश शेरशाह के हाथ में आ गया। उसने अफगानों को एक बार फिर एक झंडे के नीचे इकट्ठा किया और सर्वसाधारण के सम्मुख यह घोषणा की कि वे भारत से मुगलों को निकाल बाहर करेंगे। दूसरी ओर हुमायूँ की वापसी दुर्भाग्य से दुरूह हो गई और अफगानों ने उस पार बिलगिया में प्रवेश कर लिया।

चौसा की लड़ाई

लड़ाई २६ जून १५३९ को हुई जब कि मुगल सैनिक शिविर में नींद की झपकी ले रहे थे। भोर होते ही अफगान सैनिक सहसा उन पर टूट पड़े। बस से मुगल भाग खड़े हुए। जब मुगल सम्राट ने अपनी फौजें इकट्ठी कीं तो वह १०० व्यक्तियों से अधिक नहीं जुटा पाया। लगभग ८ आदमी काम आए। उनमें से अधिक तो मारे गए, कुछ गंगा में डूबकर मर गए। शेरशाह ने गंगा पार की और कन्नौज तक पहुँचा। हुमायूँ एक भील की भाँति आगरा को वापस चला गया। असहाय और अबला मुगल औरतें अफगानों के हाथ पड़ीं। शेरशाह ने उनके साथ एक शूरवीर का सा बर्ताव किया जैसा कि अब्बास सरवनी द्वारा दिये गए निम्नलिखित उल्लेख से प्रकट होता है।[1]

'जब कि सम्राट हुमायूँ की रानी और कुलीन स्त्रियाँ और बहुत सी औरतों के साथ पर्दे के पीछे से आईं तो वह अपने घोड़े से उतर पड़ा और उनका हर प्रकार से आदर-सत्कार किया और उन्हें सांत्वना दी।'[2]

बंगाल और बिहार का बादशाह (१५३९-४०)—

शेरशाह ने अपनी विजयश्री का पूरा लाभ उठाने में कोई समय नहीं गंवाया। उसने अपने को बंगाल और जौनपुर का बादशाह घोषित कर दिया। इस विजय के पश्चात् वह बिहार प्रदेशों का वास्तविक शासक हो गया। अफगान भी सफलता की नई लहर से उत्तेजित होकर एक नए जोश से भर गए। उन्होंने अपनी विजय को एक राष्ट्रीय विजय समझा—वह विजय जो कि उन्होंने विदेशी आक्रमणकारी मुगलों पर प्राप्त की थी। दिसम्बर १५३९ में शेरशाह और

१—अब्बास तुहफाए अकबरशाही—१६६-१६७ इलियट ४ पृ० ३७६।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० ११५

चौसा की हार के ऐसे कारण थे जिनका स्पष्ट विवेचन किया जा सकता है। यह सत्य नहीं किया जा सकता कि हार जीत का निर्णय करने में विश्वासघात का बहुत बड़ा हाथ था।

चाहिए रूप से भारत में बड़े अफगानों का बादशाह घोषित कर दिया गया। सिक्के प्रचलित किए गए और उसके नाम पर 'खुतबा' पढ़ा गया। उसी समय 'खाँ' उपनाम की जगह 'शाह' रखा गया। उसने 'शाह-आलम' की अतिरिक्त उपाधि भी ग्रहण कर ली। परन्तु टकसाल में हिजरी ९४५ में गढ़े गए सिक्कों की छाप की जाँच से यह पता चलता है कि 'शेरशाह' की उपाधि पहले भी थी। सिक्का नं० १२४५ और १२४६-अ पर भी 'शेरशाह अल-सुल्तान' शब्द अंकित हैं। इसके आधार पर यह निश्चय निकाला गया है कि शेरशाह ने बिहार के बादशाह की उपाधि तब ग्रहण की जब कि हुमायूँ बंगाल में अकेला घिरा हुआ था और हिन्दाल मिर्ज़ा ने आगरा में विद्रोह किया था। वृत्तान्तों में भी इस बात का प्रमाण है कि शेरशाह ने 'शाह' की उपाधि चौसा की लड़ाई से पूर्व ग्रहण की थी।[1]

शेरशाह का पश्चिम की ओर कूच—

बंगाल, बिहार और पश्चिम में कन्नौज तक के सम्पूर्ण प्रदेशों का स्वामित्व प्राप्त करके शेरशाह ने अपने पुत्र को कालपी और इटावा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। ईसा खाँ को मालवा और गुजरात की ओर भेजा गया। अफगानों में अभूतपूर्व उत्साह था और उनकी पानीपत की हार (१५२६) का बदला लेने और हिन्द से मुगलों को निकाल बाहर करने की बड़ी इच्छा थी। इसमें आश्चर्य नहीं कि उसे प्रशंसनीय प्रयास में उन्हें सदा सामान्यता में राजपूतों और हिन्दुओं से सहयोग और सक्रिय सहायता मिली।

आगरा में बेचैनी—

आगरा में वास्तविक रूप से भयानकता थी। चारों ओर उपद्रव शुरू हो गए। कामरान ने अपनी सेना वापस भेजनी आरम्भ कर दी और वह पंजाब चले जाने को उत्सुक था। इसी बीच शेरशाह स्वयं आगरा पर आक्रमण करने

१—डा० ईश्वरी प्रसाद, हुमायूँ, पृ० ११७। इस प्रमाण को दृष्टि में रखते हुए [illegible] इतिहासकारों का कथन कि 'अब्बास इस विषय में चुप है कि कब और कहाँ शेरशाह गद्दी पर बैठा' निराधार है। अब्बास की पुष्टि अहमद यादगार और अब्दुल्ला द्वारा होती है जो कहते हैं कि चौसा के बाद ही शेरशाह अफगानों की अनुमति से गद्दी पर बैठा और राजसी मान-शान अपनाई।

शेरशाह के सिक्कों पर नागरी और फारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्कों पर ग्वालियर के चित्र नाम भी पाए गए हैं। आगरा टकसाल के शेरशाह के सिक्कों में चित्र पर, क्रमशः और-टकसाल का नाम, पट-पर फारसी में बादशाह का नाम व नीचे नागरी में श्री शेरशाह खुदा है।

के लिए आ गया था। मुगल फौजें घबराई हुई थीं आम भगदड़ मची थी और लड़ने की अरुचि प्रबल थी। जैसे तैसे मुगलों ने अपनी फौजें जमा कीं और कन्नौज के ११ मील उत्तर-पश्चिम में भोजपुर-भोजघाट पर आ पहुँचे। शेरशाह ने भी नदी की दूसरी ओर डेरा डाला। अंतिम निर्णय करने वाली लड़ाई को मुगलों के नदी पार करने तक स्थगित कर दिया गया था। उन्होंने कन्नौज के समीप पहुँचकर लड़ी।

कन्नौज की लड़ाई (१७ मई सन् १५४० ई०)—

१७ मई १५४० ई —को दोनों फौजें युद्ध के लिए तैयार थीं।

हुमायूँ की बहन गुल बदन के शब्दों में—

'इसके बाद कन्नौज में वह अद्भुत लड़ाई हुई, जिसमें १०००० के मुकाबले में ४ ० सशस्त्र व्यक्ति बिना बंदूक चलाये भाग खड़े हुए। चौसा की भाँति यहाँ भी नदी में डूबकर हुई मृत्यु असंख्य थी और यहाँ भी सम्राट का एक भिन्न श्रेणी के व्यक्ति ने बचाया। कुछ चुने आदमी पुनः आगरा चले गये। लेकिन हैदर कहता है 'इतना निराश और आशाहीन तथा हृदय-विदारक दशा न होते हुए भी पीछे रुक कर समय नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया वरन बाहीर चले गए।'[1] मिर्जा हैदर के कथनानुसार दोनों फौजों की संख्या २० ००० व्यक्तियों[2] की थी। हो सकता है इसमें अतिशयोक्ति हो तब भी मुगलों के पास कम से कम १२ से ४० हजार व्यक्ति २१ भारी बंदूकें और ७०० कुंडेदार बंदूकें (जर्बजान) थीं। लेकिन इन सब तैयारियों के होते हुए भी मुगल परास्त हो गये।

'उनके दिल संघर्ष में नहीं थे वे उत्साहहीन व विच्छिन्न थे और उनका पथ प्रदर्शन ठीक नहीं हुआ था'[3]। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार 'हिन्दुओं ने कन्नौज की इस घटना की बिल्कुल उपेक्षा की जान पड़ती है। सारे देश में असंख्य मुखिया और जमींदार बिखरे हुये थे पर हम उनका किसी एक का पक्ष लेते नहीं पाते। जिस उपेक्षा से हिन्दुओं ने ये अधिकतर चौसा में हुमायूँ

१—गुल-बदन हुमायूँनामा बेवरिज का अनुवाद—पृष्ठ १२ ३१ भूमिका जैसे चौसा में वैसे ही कन्नौज में हुमायूँ लगभग नदी में डूब गया था। यहाँ वह गजनी के शमसुद्दीन मुहम्मद द्वारा बचाया गया था जिसकी पत्नी, जीजी अनागा का उपनाम रखकर अकबर की धाय हो गई थी।

२—मिर्जा हैदर लिखता है— बैलों की जोड़ियों द्वारा खींची गई २१ गाड़ियां अर्सकिन तारीख-ए रशीदी के उसी अध्याय का प्रयोग करते हुए कहता है—११ भारी बंदूकें जिनमें से प्रत्येक बैलों की ५० जोड़ियों द्वारा खींची गई थी।

३—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १४५।

के साथ या सम्मिलित होते देखा उससे इस बात की पुष्टि होती है कि मुगल अब भी विदेशी समझे जाते थे।"[1]

उक्त कथन कथन कुछ हद तक सही है और पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं होता है। राजपूत अवश्य पृष्ठभूमि में थे परन्तु ऐसी घटनाएँ हिन्दुओं के मुस्लिम शासकों द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखी जा सकती थीं। मालवा में मराठा बाजा मुखिया की कार्यवाहियों के फलस्वरूप शेरशाह के पुत्र की मृत्यु हुई और राजस्थान में शेरशाह के सोपान को राजा मालदेव द्वारा रोक दिया गया। शक्ति का केन्द्र कुछ समय के लिए मेवाड़ और उदयपुर से बीकानेर और जैसलमेर को खिसक गया। इसके अलावा अफगान जत्थे नाम के अफगान जत्थे थे। उनमें अधिकतर हिन्दू सैनिक और मुखिया थे जैसा कि हिन्दुओं और अफगानों के बाद के सहयोग से प्रकट होता है। गौर से गक्खर तक की प्रत्येक लड़ाई में उनकी संख्या हजारों में थी। क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है कि भारत में अफगानों की संख्या लाखों में रही होगी? दूसरी ओर जैसी जत्था की बनावट थी उससे प्रकट होता है अफगान केवल मिसल सम्भाले हुए थे वे जागीरदार थे व अच्छे सैनिक थे और उनके 'विदेशी मुगलों को निकाल दो' के नारे से उन्हें हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त हो गया था। सब लेखक इससे सहमत हैं कि मुगलों को विदेशी माना जाता था। डा० ईश्वरी प्रसाद तक ने इसको माना है। स्वभावतः अफगानों ने जो स्वयं बाहर से आये थे अपने को यहीं का नागरिक समझा और देश की रक्षा के कर्णधार होने का गर्व कर सके। इस प्रकार उनके लिए हिन्दुओं से सहयोग करना स्वाभाविक था और हर जगह हिन्दुओं की जन-संख्या अधिक थी।

ऐसी दशा में इस कथन में अधिक तथ्य नहीं है कि "यह आश्चर्यजनक है कि राजपूतों ने इस संकट के समय भी शक्ति के लिए कोई प्रयास नहीं किया।" शेरशाह के समय में राजपूतों के पर्याप्त शक्तिसम्पन्न होने और अकबर के समय में उनके शानदार प्रतिरोध का इतिहास इसको झूठा सिद्ध कर देता है। हिन्दू और राजपूत अफगानों के साथ-साथ बड़ी संख्या में लड़ रहे थे। खवास खाँ के अधीन वीर राजपूत थे। अलवर के हाजी खाँ और हेमू के भतीजे महिपाल को उनका पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त था। केवल किसी चोटी के नेता के न होने के कारण वे लोग पृष्ठभूमि में थे। यदि राणा साँगा का उत्तराधिकारी राणा भी उतना ही शक्तिशाली होता और राणा प्रताप से पहले कोई भी वीर मेवाड़ के सिंहासन पर होता तो संकटमय स्थिति का पलड़ा उनके पक्ष में होता। इस कमी की पूर्ति हेमू से किसी हद तक हुई और उसने इस संकट का लाभ भी उठाया। राजपूत पर्याप्त रूप से उसके साथ थे।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १७४ १५५।

शेरशाह-हिन्दुस्तान के बादशाह के रूप में—

अब्बास के अनुसार, शेरशाह ने बिलग्राम की विजय के बाद नदी पार की और कन्नौज पहुँचा। और वहाँ से बिर्माजीत गौड़ (एक राजपूत अधिकारी ब्रह्मादित्य गौड़) को बड़ी फौज के साथ पहिले से ही भेज दिया लेकिन उसको आदेश दिया कि वह सम्राट हुमायूँ से जान बूझकर लड़ाई मोल न ले और उसने संभल की ओर दूसरी फौज भी भेज दी।[1]

जुलाई १५४० ई० रबी—१—९४७—हुमायूँ आगरा से बाहर निकाल दिया गया। वह मेवात गया और फिर लाहौर की ओर रवाना हो गया। बहुत से मुगल आगरा में मारे गये। हुमायूँ रोहतक और हिसार होता हुआ सरहिन्द पहुँचा। वहाँ से वह मछवाड़ा गया और फिर जलंधर पहुँचा। खवास खाँ और बिर्माजीत गौड़ के अधीन अफगान और राजपूत जुलाई १५४ ई तक लाहौर पहुँचे। हुमायूँ ने लगभग जमादी २ हिजरी ९४७ के अंत में (१ अक्तूबर ३१ अक्तूबर १५४० ई०) लाहौर छोड़ा[2] जब कि अफगानों ने नदी पार कर ली थी। लाहौर में अपने तीन महीने ठहरने के समय में हुमायूँ बिखरे हुए मुगलों को शेरशाह के दलों के विरुद्ध न जुटा सका। कामरान तक ने उसकी सहायता नहीं की। कामरान-शेरशाह के षड्यंत्रों की पुष्टि जौहर के इस कथन से होती है कि मुगलों से समझौता करने के लिए शेरशाह द्वारा भेजे गए खास दूत ने कामरान के लिए एक पत्र प्राप्त किया।[3]

शेरशाह द्वारा हुमायूँ का पीछा—

गुल-बदन ने हुमायूँ के भागने का विशद वर्णन इन शब्दों में किया है—

'महामान्य श्रीही ख्वाजा-दोस्त के पास ख्वाजा गाजी के बाग में पधारे। प्रति दिन शेरखाँ का समाचार आता था। और उन तीन महीनों में जब कि सम्राट लाहौर में थे दिन प्रतिदिन समाचार आता था 'शेरखाँ चार मील आगे बढ़ा' —'छ: मील'—यहाँ तक कि वह सरहिन्द के पास आ गया था।

'इस समय महामान्य ने मिर्जा हैदर को काश्मीर ले लेने के लिए नियुक्त किया। इसी बीच खबर मिली कि शेरखाँ वहाँ था। एक आश्चर्यजनक व्यग्रता हुई और सम्राट ने अगली सुबह को कूच करने का निश्चय किया"।

थकान भरी यात्रा के बाद वे आखिर भक्खर पहुँच गए "[4]

[1]—अब्बास इलियट ४ ३८१ कानूनगो के अनुसार, लड़ाई वास्तव में हरदोई जिले में बिलग्राम में हुई जो इस समय, कन्नौज से २१ मील दूर है। परन्तु यह मत दूसरे इतिहासकारों द्वारा नहीं माना जाता।

[2]—अबुल फजल अकबरनामा १२८-१२९।

[3] - जौहर स्टीवार्ट द्वारा अनुवाद पृ० २६।

[4]—गुल-बदन हुमायूँ नामा बीवेरेज द्वारा अनुवाद पृ० १४०-१४७।

लाहौर से निष्क्रमण का मर्मस्पर्शी वर्णन भी निम्नलिखित शब्दों में उपलब्ध है जिस समय कि शेरशाह के बियाह (ब्यास) पार कर लेने की सूचना मिली थी और लाहौर का किसी समय भी संकट था।

"वह पुनर्जीवन का सा दिन था—व्याकुलता चरम सीमा पर थी और हम भागने के लिए, उपमा की भाँति उसका भी अनुभव कर सकना संभव नहीं था। यह कहा गया है कि उस दिन के निष्क्रमण में २ लाख आदमियों ने लाहौर छोड़ा। यातायात के सब साधनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया गया।[1] शेरशाह ने मुग़लों का पीछा तब तक किया जब तक कि वह हिन्द की सीमा के बाहर नहीं हो गए। कामरान तक को जो अफ़ग़ानों से समझौते की बातें कर रहा था सिन्ध पारकर सन तक हिन्द से बाहर निकाल दिया गया।[2] इस प्रकार मुग़ल हिन्दुस्तान से निकाल बाहर किये गये। शेरशाह अपनी शक्ति की चरम सीमा पर—

मुग़लों को हिन्द से बाहर निकाल कर शेरशाह ने गक्खरों का अधिकार न किया और गक्खरों के मुखिया राय सारंग की जिन्दा ही खाल खिंचवा दी। उसकी पुत्री का खवासखाँ के सुपुर्द कर दिया गया। शेष का व्यवस्थित करके और रोहतास-दुर्ग के निर्माण की आज्ञा देकर, शेरशाह आगरा और देहली को लौटा। ग्वालियर के किले[3] पर अधिकार कर लिया गया और शेरशाह ने देश का शासन सुव्यवस्थित करना आरंभ कर दिया। देश को ४७ भागों में बाँटा गया। वह अपनी अधिकतर यात्राओं में व्यस्त रहा—

१—गुल-बदन हुमायूँ नामा बीवरेज का अनुवाद भूमिका—पृ० १२ ।

२—रुस्तान राय सुमाकन उल-तवारीख कथन के अनुसार कामरान को शेरशाह से काबुल के साथ-साथ लाहौर पाने की आशा थी। मोहम्मद हादी कुँवर खाँ द्वारा लिखित एक दूसरी फ़ारसी पुस्तक तारीख़ीयात उस समय के अनुसार कामरान ने यह कहा—

'यदि मित्रता के प्रतीक के रूप में मुझे पंजाब दे दिया जाय तो मैं ऐसे कार्य करूँ कि उनसे (शेरशाह से) शत्रुता करने का किसी का साहस न हो।" इस प्रकार क़ाज़ी अब्दुल्ला के द्वारा कामरान शेरशाह से गुप्त रूप से समझौता कर रहा था। लेकिन समझौता असफल रहा। हुमायूँ की शान्ति-वार्ता का भाग्य भी ऐसा ही रहा जिस अफ़ग़ानों के बादशाह ने मान मार दी। वह कामरान या हुमायूँ किसी के लिए भी पंजाब छोड़ने को तैयार न था। उसका सीधा सा उत्तर था—'मैंने तुम्हारे लिए काबुल छोड़ दिया है। तुम्हें वहीं जाना चाहिए।

३—अब्बास के अनुसार शुजात खाँ की सहायता से शेरशाह ने ग्वालियर की ओर कूच किया और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया—जुलाई १५४० ई०—अप्रैल (१५४२ ई०)। ग्वालियर में मुग़ल सेनानायक अबुल कासिम बेग ने उसके सामने हथियार डाल दिए।

१५४३ ई०—मालवा पर अधिकार। शुजाअत खाँ मालवा का शासक बनाया गया। रणथंभौर की विजय।

१५४३-४४ ई०—मुल्तान में बलूचियों से लड़ने के लिए हैबत खाँ भेजा गया।

१५४३ ई०—रायसीन पर कब्जा—राजा प्रताप सिंह के प्रतिनिधि पूरन मल की हार।

१५४४ ई०—जोधपुर के राजकुमार—मालदेव, मेवाड़ के महाराणा, नागौर और कई अन्य देशों के विरुद्ध युद्ध।

नवम्बर १५४४ ई०—कालिंजर का घेरा—राजा कीरत सिंह ने वीरतापूर्वक सामना किया। शेरशाह ने किले तक पहुँचने के लिए ढके हुए मार्ग बनाए और उसकी ओर सुरंगें बिछवाईं। इस ऐतिहासिक घेरे की कार्यवाहियों में १०वीं मुहर्रम ९५२ या २ मार्च १५४५[1] ई० को शेरशाह आग की लपटों में जो कि बारूद की आकस्मिक धुएँ के साथ-साथ उठी थी झुलस गया।[2] यद्यपि इस वीर अफगान की जान किले को अधिकार में करते हुए चली गई, किला अफगानों के ही कब्जे में आया। इस प्रकार ५ वर्ष २ माह और १३ दिन के शासन के बाद शेरशाह की जीवन-लीला समाप्त हो गई।[3]

इस्लाम शाह का गद्दी पर बैठना—

अचानक मृत्यु हो जाने के कारण शेरशाह अपनी इच्छा के उत्तराधिकारी का नामांकन न कर सका। न तो उसका बड़ा पुत्र आदिल खाँ और न उसका छोटा पुत्र जलाल उसके साथ था। जलाल निकट होने के कारण उसके शिविर में तीन दिन में पहुँच गया और उसने अपने दृढ़ व्यक्तित्व के प्रभाव से अपने को अफगान सम्राट घोषित कर दिया। उसने शाह की उपाधि धारण की और इस्लाम शाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शेरशाह की अपने पुत्रों में से किसी के बारे में भी उच्च धारणा नहीं थी। 'एक विलासी, सुखवादी, सुख और आराम का शौकीन था तो दूसरा हठी और दूसरों पर दोषारोपण करने वाले स्वभाव का था।'[4] एक लेखक के अनुसार इस्लाम शाह 'दुष्टता में अपने पिता से भी आगे था और अत्याचारी सताने वाला दंड देने वाला था।'[5] जब कि शेरशाह ने अपने बन्धु-बान्धव अफगान अमीरों और वीरों की सहायता

१—डा० आर० पी० त्रिपाठी के मतानुसार २१ मई १५४५ मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन—पृ० १० ।
२—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द १ पृ०—१५८ १५९।
३—अबुल फजल आईन-ए-अकबरी—जैरेट—३ पृ० १५९ १६०।
४—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० १५२।
५—अबुल फजल अकबरनामा १ पृ०—१५८ २९।

और इच्छापूर्वक सहयोग से शासन किया—इस्लाम शाह अफगान सामन्त शाही की जड़ें उखाड़ने और अपनी तानाशाही को बढ़ाने के कार्य में रत था। उसके रिश्तेदारों और सामन्तों में से जो उसके द्वारा मारे गए, राज्य से निकाले गये या कैद कर लिये गये उनमें से कुछ के नाम यह थे 'आदिल खाँ और छोटा भाई जलाल खाँ, कुतुब खाँ सूर, जियाजीद खाँ सूर और कमाल खाँ सूर, हैबत खाँ नियाजी, सईद खाँ नियाजी और शम्स खाँ नियाजी, शहबाज खाँ लुहानी, बर्मायजीद खाँ गौड़, दाउद खाँ, खवास खाँ, ईसा खाँ नियाजी और शुजात खाँ ...'। इस्लाम शाह ने अपनी सावधानी और कठोरता द्वारा शासन की कुशलता को बनाये रखा। और बदायूनी द्वारा कहा गया है कि उसके साम्राज्य के दूर से दूर गाँवों में भी हर शुक्रवार को दरबार लगता था जिसमें सिंहासन पर राजा का एक पद-त्राण राजा के प्रतिनिधि के रूप में रखा जाता था और शाही कानून सामन्तों को पढ़कर सुनाए जाते थे।[१ व २]

इस्लाम शाह का सुधार-सम्बन्धी उत्साह—

"इस्लाम शाह ने अपने पिता के बहुत से नियम और संस्थाओं को बनाये रखा जैसे—डाक-पद्धति, सड़कों और सरायों का विस्तार, एक कुशल सेना का पोषण और सीमा पर और भीतरी भाग में दृढ़ किलों का निर्माण—उदाहरणार्थ—मनकोट और रुहीमगढ़। शेरशाह की सरायों के बीच में हर आधे कोस पर उसने एक और सराय बनवाई। हर सराय पर भिक्षा बाँटी जाती थी और यात्रियों को विभिन्न सुविधायें दी जाती थीं। हिन्दू और मुसलमानों के साथ एक सा बर्ताव होता था। उसने सेना में कड़ा अनुशासन रखा। उसने सैनिक व्यवस्था के लिए दाग पद्धति चालू रखी। सुविधा के युद्ध के हाथी बच्चे में लिये गये और लगान की वसूली सीधी लागू कर दी। सेना ५०, २०० और ५०० प्रत्येक की टुकड़ियों में बँटी थी। ५० की प्रत्येक टुकड़ी के साथ एक फारसी लेखक (कुछ वृत्तान्तों में तुर्की लेखक) और एक हिन्दी लेखक रहता था। सेनाओं के निर्वाह के लिए जमीनें प्रदान की जाती थीं। ५००० १०००० और २०००० व्यक्तियों की फौजों के लिए एक अफगान सरदार, एक अफगान मुन्सिफ एक हिन्दू मुन्सिफ और दो ख्वाजा सराय नियुक्त थे। अफगान वीरों की परामर्श करके उक्त पद पर नियुक्त किया जाता था। जासूसी-पद्धति को कुशलता से संगठित किया गया। शेरशाह एक दृढ़ अनुशासनशील व्यक्ति था और आज्ञा का पालन कराके रहता था।"

१—अर्स्किन हुमायूँ बादशाह अध्याय १४-पृ० ३३०।

२—अल बदायूनी जिल्द १—पृ०—४९६।। मुन्तखाब उत्-तवारीख रैंकिंग तथा लोव।

अम्बाला की लड़ाई (१५४७)—

मालिक खाँ और खवास खाँ द्वारा आयोजित विद्रोह आरम्भ होने से पूर्व ही दबा दिया गया। लेकिन ऐसे षड्यन्त्र की खोज से इस्लाम शाह का पहले से ही कड़ा और सन्देहशील स्वभाव और कड़ा हो गया। उसने चुनार के खजाने को कब्जे में करके और अपने प्रतिद्वंदियों—अपने भाई के मित्रों—का नाश करके अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने पर ध्यान देना आरंभ किया। कुतब खाँ सूर, बैन खाँ नियाजी और दूसरे सामन्तों को जेल में ठूंस दिया गया। आजिम हुमायूँ और खवास खाँ द्वारा किये गये एक दूसरे विद्रोह को इस्लाम शाह ने स्वयं मैदान में आकर कड़े हाथों से दबा दिया। आजिम हुमायूँ और खवास खाँ अम्बाला के रणक्षेत्र से भाग गये और इस्लाम शाह ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। उसने 'दीनपनाह' कहलाने वाली दिल्ली की सीमा पर एक मजबूत किला बनवाया और उसका नाम सलीमगढ़ रखा। पंजाब पर अधिकार पूर्ण करके और दिल्ली को एक गढ़ बनाकर, इस्लाम शाह ग्वालियर लौट गया, जो उसने एक सुरक्षित स्थान समझा था।

गक्खर प्रदेश पर विजय (१५४८-१५५०)—

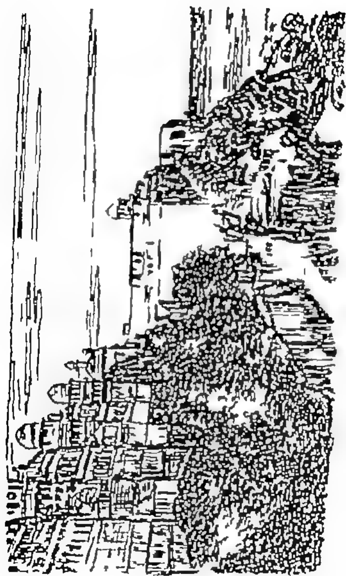
आने वाले वर्षों में पंजाब और गक्खर क्षेत्र में संकट फिर से उत्पन्न हो गया। आजिम हुमायूँ ने विद्रोह किया लेकिन जब परास्त हो गया तो अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर रणक्षेत्र से भाग गया। गक्खर के मुखिया सुल्तान आदम के विरुद्ध विपत्ति २ वर्षों तक चलती रही जब कि उसने शान्ति की प्रार्थना की और आजिम हुमायूँ को निकाल बाहर करने के लिए सहमत हो गया। अफगान सेनाध्यक्ष शाह मुहम्मद फरमूली को भगाया गया और इस्लाम शाह फिर से आराम करने लगा। ग्वालियर (पंजाब में गविसगढ़) में उसने वेतन आदि के हिसाब को सोने के रूप में देकर तय करने का वादा किया परंतु उसने वायदे को निभाया नहीं।

इस्लाम शाह की हिन्दू प्रजा

तारीख ए—दाउदी[1] के लेखक के अनुसार शिवालिक प्रदेश के राजा और ग्वालियर (पंजाब में पहाड़ी राज्य) का राजा परसराम उसके विश्वासी प्रजाजन हो गए और वह उसका आदर करता था। इस्लाम शाह ग्वालियर के लोगों से प्रसन्न नहीं था क्योंकि वे सेवन में अच्छे नहीं थे। उसके द्वारा ये पंक्तियाँ व्यंगात्मक रूप में बनाई गई कही जाती हैं—

शाह परसराम शाहानाम बसम सलाम कुनाम
तू विलायात क अज पुस राम राम कुनाम
बिगुनाह बरफ ए मिर्या ए ग्वालियर कुनाम
बनाराह रास नियाद आगर हज़ार कुनाम।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १०० पादटिप्पणी



'मुझे नहीं पता मैं परसराम को कैसे सलाम करूँ।
जब मैं उसका चेहरा देखता हूँ, तो "राम राम" कहता हूँ।
मैं पादर ग्वालियर की प्रशंसा कैसे करूँ ?
मैं ऐसा नहीं कर सकता चाहे हजार प्रकार से यत्न करूँ ?

इस्लाम शाह और हेमू

हेमू को मान्यता सर्वप्रथम इस्लाम शाह के शासन-काल में मिली। अपनी व्यापारिक चतुरता और असाधारण प्रशासकीय योग्यता के कारण वह शाही रसद संग्रहकर्त्ता नियुक्त हो गया[1] और पश्चात् वह बाजार का अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डेन्ट) हो गया।[2] हेमू ने जिसमें व्यापारिक सूझ-बूझ थी और जिसे संभवतः व्यापार क्षेत्र का अनुभव था अपना कार्य इतनी अच्छी तरह किया कि इस्लाम शाह उससे बहुत प्रभावित हुआ। हेमू का मुबारिज़ खाँ और दूसरे अफगान सामन्तों से परिचय इसी समय हुआ होगा जिसके कारण बाद में उसकी पदोन्नति हुई।

अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में इस्लाम शाह को गक्खरों की ओर और उनके साथ कूच करना पड़ा और मिर्ज़ा कामरान से मुठभेड़ हुई। कहा जाता है कि इस्लाम शाह ने कामरान के प्रति उदासीनता से व्यवहार किया यद्यपि वह उसके शत्रु हुमायूँ के शिविर से भागा हुआ था। इसके फलस्वरूप वह पहले महसूर के राजा के पास और बाद में जम्मू को भागने पर विवश हो गया। जब वह गक्खर प्रदेश में पहुँचा तो उसके प्रधान ने उसको बन्दी बनाकर मुगल बादशाह, हुमायूँ के सुपुर्द कर दिया। तत्पश्चात् इस्लाम शाह बीमार पड़ गया और ग्वालियर चला आया। अपने विरोधी कुलीनों का नाश करने की योजनाओं में रत रहते हुए उसने २२वीं जिलकदा हिजरी ९६० (३० अक्तूबर १५५३ ई०) को अपने जीवन की अन्तिम श्वास ली।

१—डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार—हेमू की प्रथम नियुक्ति बाजार के तौल-नाप के निरीक्षक के रूप में हुई। इस विषय में बहुत मतभेद है।

२—बाजार का अधीक्षक (सुपरिटेंडेंट)
तुलना कीजिए अधीक्षक के साथ दो अफसरों की नियुक्ति। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के समय में बाजार के दो अधिकारी थे—दीवान-ए-रियासत और शाहना-ए-मण्डी। बाजार का शाहना याकूब जहाँ किसी को व्यापारिक कानूनों का उल्लंघन करते पाता था वहीं अपनी मार और लगा देता था। व्यापारिक नियमों की सफलता अनेकों पर थी। बरनी ने इसके चार कारण बताए हैं—(१) बाजार के नियमों को कड़ाई से लागू करना (२) करों की बराबर वसूली (३) लोगों में बहुत सीमित सिक्कों का अभाव और (४) अधिकारी की निष्पक्षता और उत्साह या अपने कर्तव्यों का पालन ईमानदारी से करना था। (डा० ईश्वरी प्रसाद मध्यकालीन भारत पृ० २१५)

अध्याय ३

हेमू का उत्थान

अबुल फ़ज़ल[1] के शब्दों में "वह (हेमू) अपनी दक्षता के कारण सलीम खाँ (इस्लाम शाह) के अधीन एक सरकारी फ़ेरीवाला[2] हो गया। उसको बाज़ारों की निगरानी सौंपी गई थी अर्थात् बाज़ार के 'पुलिस सुपरिंटेंडेंट' के रूप में कार्य करने के लिए आदेश दिए गये थे। समकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि उसका मुख्यावास कहाँ था। इस्लाम शाह ग्वालियर के किले में आराम कर रहा था। हेमू गुड़गाँव ज़िले के एक स्थान रिवाड़ी जो अब एक रेलवे जंक्शन है का निवासी था। उसके पद का ग्रहण करने की ठीक तिथि का भी उल्लेख नहीं है। यह सम्भव है कि इस्लाम शाह के ग्वालियर चले जाने के कारण दिल्ली में एक ऐसे अधिकारी को नियुक्त करना आवश्यक हो गया हो। रिवाड़ी दिल्ली के बिलकुल समीप है और हेमू दिल्ली के बाज़ार जो उत्तरी भारत का मुख्य अनाज का बाज़ार रहा होगा (जैसा कि वह आज भी है) के मामलों का नियंत्रण करके अपने स्वामी के लिए एक योग्य सहायक सिद्ध हुआ होगा। अकबरनामे का लेखक इन शब्दों में हेमू की फिर से मिली जुली प्रशंसा करता है।

"चालाकी में निपुण होने के कारण उसने कुछ मना कहने और व्यापार की सामर्थ्य के द्वारा अपने को धीरे-धीरे सलीम खाँ के सामने योग्य बता दिया। वह हमेशा लोगों को मुसीबत में फँसा देता था। दिखावटी रूप में वह अपने स्वामी से निष्ठापूर्ण व्यवहार कर रहा था पर वास्तव में वह अपने ही उद्देश्यों की पूर्ति की टोह में था और अपने घर को दानियों के सामान से सजा रहा था[3]।"

अबुल फ़ज़ल उसके प्रति घृणा और उपहास प्रदर्शित करता है क्योंकि अपने जीवन काल में उसने बाद में एक बार अकबर की फ़ौजों से टक्कर लेने की धृष्टता की थी। उसने अपनी "चालाकी की उत्कृष्ट कृतियों" द्वारा अपने स्वामी

१—अबुल फ़ज़ल अकबरनामा जिल्द १—पृ ६१४ ६१९।

२—फुटकर चीज़ों का बिक्रेता एक फेरीवाला (Huckster) एक नीच और चालाक आदमी।

३—डा॰ ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ—पृ १९४।

की सद्भावना और विश्वास प्राप्त कर लिया था और विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर ली थी। लेकिन अबुल फजल भी उसकी असाधारण सामर्थ्य की प्रशंसा करता है और लिखता है कि वह साहस और क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गया और उसने महान् उत्साह से महान् काम किए। इस सम्बन्ध में कि हिन्दू-लाला (हेमू) में साहस और प्रशासकीय प्रतिभायुक्त व्यक्तित्व पर्याप्त मात्रा में था कुछ भी सन्देह नहीं रहा और अवसर मिलते ही सब राजप्रासाद के द्वार में प्रकट होने लगे। इस पर भी अदली ने, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है, धीरे-धीरे हेमू के पक्ष में सब कुछ त्याग दिया और हेमू को स्वामी के लिए और उसके लिए सब कुछ करने की बिल्कुल आवश्यकता न थी। अदली चुनार के किले में अपने चैन और आराम के जीवन से संतुष्ट था और हेमू जानता था कि परिश्रम से उसका अपना भाग्य निर्माण स्वयं करता है। वह धीरे-धीरे अदली और इस्लाम शाह के चुनार और ग्वालियर के सब खजानों का मालिक हो गया और सहायकों की व्यवस्था करने के लिए उसने बहुत धन सिपाही और हिन्दी का वेतन दिया। उसने इसको गुप्त नहीं रखा बल्कि खुल्लमखुल्ला सम्पन्न किया और न ही किसी ने इसके विषय में कोई प्रश्न उठाया। इसलिए अबुल फजल का निम्नलिखित कथन असत्य है —

'हुर्रे हुर्रे! हुर्रे हुर्रे!!' वह अपने स्वामी के विनाश की तैयारी कर रहा था। और अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार रहा था। यहाँ पर (इन ही अवसरों पर) संसार के महापुरुषों ने अक्सर एक बड़ी भूल की, क्योंकि वे अधिकतर कारण रहित बाहरी व्यक्ति आदमियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छावश कुछ विशेष गुप्ते बातों का ध्यान दे देते हैं या तो उनके विषय में कुछ बातें जानने के लिए, या दुश्मन करने वालों का दण्ड देने के लिए। यद्यपि वे अपने मन में यह निश्चय कर लेते हैं कि वे सूचना का प्रयोग अच्छे और स्वामिभक्त व्यक्तियों की प्रतिष्ठा और आदर पर दाग लगाने के लिए नहीं करेंगे फिर भी बाहर से अच्छे दिखाई देने वाले लेकिन अन्दर से नीच व्यक्तियों का यह मनोवाञ्छित अवसर आ ही जाता है और अपने लाभ के लिए स्वामिभक्ता पर अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से दोष लगाते हैं, जब कि महापुरुष कभी कभी बातों की अधिकता के कारण अपने मन में छिपे गए अच्छे गुण भूल जाते हैं और स्वामिभक्ता पर सन्देह करने लगते हैं और अपनी ही भक्ति की नींव को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं।"

हेमू का उत्थान

अबुल फजल के शब्दों में इसलिए कि यह दुष्ट व्यक्ति शीघ्र ही अयोग्य गद्दियों का मालिक रत्न-रत्न कर मुबारिज खाँ का स्नेह-पात्र बन गया और शासन में अपना अधिकार जमा लिया। जब कि मुबारिज खाँ के जीवन

की सीमा पूर्ण हो चुकी थी और भारत के दुराचारियों की प्रबलता की अवधि पूर्वोक्त सलीम खां के चचेरे भाई मुबारिज खां तक हस्तान्तरित हो चुकी थी हेमू ने उसको सांसारिक विषयों से विमुख पाया और उसने सम्पूर्ण शासन पर अपना अधिकार कर लिया तथा श्रेष्ठतम पदों पर आरूढ़ हो गया। मुबारिज खां के पास जो साधारणतः आदिली (अत्याचारी) के नाम से प्रसिद्ध था उपाधि (बादशाह की) के अतिरिक्त कुछ न रहा। हेमू ने सब पदों पर नियुक्तियों का परच्युत करने का और न्याय-वितरण का कार्य अपने आप संभाल लिया। अपनी दूरदर्शिता के कारण इसने शेर खां और सलीम खां के खजानों और उनकी हाथी-शालाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। उनकी संचित वस्तुओं व द्रव्यों को भी उसने मुक्तहस्त से निबटा दिया। उसके ऋणी उसको पूजते थे और उसके वचनों का पालन कर देते थे। कुछ दिनों तक उसने 'राय' की उपाधि धारण की। तत्पश्चात उसने 'राजा' की उपाधि ग्रहण कर ली और 'राजा विक्रमाजीत' की पद्धति अपना ली[1]। इस प्रकार उसने धूर्ततावश अपने आप को बड़ी बड़ी उपाधियां दे डाली। दूरदर्शिता से उसने अदली की नाम-मात्र की प्रभुता बनाए रखी और उसके शत्रुओं के विरुद्ध बड़ी बड़ी लड़ाइयां लड़ीं। अपने पराक्रम और साहस द्वारा वह विजयी हुआ और उसने महान कार्य सम्पन्न किए। वह साहस और क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गया। धीरे धीरे वह इतना आगे बढ़ गया कि उसने महामान्य शहंशाह की प्रभावशाली सेना तक से टक्कर लेने का साहस किया। परन्तु क्योंकि यह पवित्र व्यक्तित्व अच्छे और बुरे की कसौटी थी उसके खोटे सिक्के का परीक्षण हो गया और उसका काला अस्तित्व संसार को प्रकाशित करने वाले न्याय के प्रकाश से नष्ट हो गया...... ......[2]।

अराजकता के दिन —

समस्त समकालीन वृत्तान्तकारों का इस पर एकमत है कि इस्लाम शाह की मृत्यु स्थान-स्थान पर विद्रोह होने के लिए, एक संकेत मात्र था।

१—तथ्यों से पुष्टि नहीं होती है। चुनार के युद्ध के बाद अदली ने ही यह उपाधि उसको प्रदान की थी।

बदायूनी ने भी बंगाल में एक अन्य सेना नायक पर विक्रमाजीत की उपाधि का प्रदान किए जाने का उल्लेख इन शब्दों में किया है (पृ० १८४)।

और सरहोर हिंदी बंगाली ने (तबकाते अकबरी के अनुसार मीयर' इलियट ५ ३७८) जो लोदी की मृत्यु का उकसाने वाला था और जिसे विक्रमाजीत की उपाधि मिल चुकी थी एक नाव में अपना खजाने रखे और उसका पीछा किया। —मुन्तखाब उत-तवारीख। लोप द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद—पृ सं० १८४।

२—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द १ पृ०—६१५ ६१६।

अकेन्द्रीकरण प्रवृत्तियों ने जो उसके शासन में पहले से ही विद्यमान थीं, फिर से सिर उठाया। "मखज़न" के अनुवादक डॉर्न के शब्दों में "एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक, एक नगर से दूसरे नगर तक सब विद्रोहाग्नि में प्रज्वलित हो गए थे। सर्वमुख्य अफ़गान सामन्त अब सब स्वतंत्र थे और वे चाहे जिसको अपना नेता चुन सकते थे। इस्लाम शाह की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् ही सूर वंश के चार अफ़गान प्रधान क्षेत्र में थे—मुबारिज़ खाँ, अहमद खाँ, इब्राहीम खाँ और मुहम्मद खाँ। रिक्त सिंहासन के लिए यह चारों भीषण प्रतिद्वंदी थे।

इस्लाम शाह की वसीयत के अनुसार फीरोज़ खाँ, जो अल्प वयस्क था, उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया, लेकिन कुछ दिन बाद ही मुबारिज़ खाँ ने, जो फीरोज़ खाँ का मामा था, उसकी अर्थात् अपने ही भानजे की हत्या कर दी। नियामतउल्ला द्वारा रचित मखज़न अफ़ग़ानिया में निर्दोष बालक की भयानक हत्या का निम्नलिखित दुख भरा वृत्तांत मिलता है[२]।

'लेकिन ३ दिन के पश्चात् शेरशाह के छोटे भाई मियाँ निज़ाम के पुत्र और इस्लाम शाह के बहनोई मुबारिज़ खाँ, जिसको उसकी बहन बीबी बाई ब्याही थी और जो उनकी इतनी कृपा का पात्र था कि वह अपना कदम बिना उसकी अनुमति के नहीं बढ़ाता था और उसकी संगति में प्रसन्न होता था, इस्लाम शाह के निजी कक्षों में अपनी बहन का दर्शन के बहाने से घुसा और फ़िरोज़ खाँ को उसकी माँ बीबी बाई की सब प्रकार की विनती और विलाप करने पर भी मार डाला। बीबी बाई ने कहा "मैं प्रार्थना करती हूँ मेरे बच्चे को मत मारो, मैं उसको अपनी आशा का एक मात्र प्रकाश समझती हूँ और मैं सौगन्ध खा लूँगी कि मैं राज्य-सिंहासन के सब अधिकारों का त्याग दूँगी और अपने बच्चे को लेकर दक्षिण की ओर चली जाऊँगी। मैंने जो तुम्हारी भलाई की थी उन्हें याद करो, जब कि इस्लाम शाह तुम्हें मारने का निश्चय कर रहा था, मैंने रो रो कर उसे उसके निश्चय से रोका, और उसने मुझसे कहा कि यदि मैं अपने पुत्र को सिंहासन पर देखना चाहती हूँ तो मैं उसे ऐसा करने दूँ। परन्तु मैंने ऐसा होते हुए भी याचना पूर्वक और आँसुओं के साथ उससे कहा कि मेरे केवल एक भाई था जिसकी मृत्यु से उसके साम्राज्य को कोई लाभ न होगा, और इस प्रकार उसे उसके उद्देश्य से रोकने में सफल हुई।" लेकिन इन भावपूर्ण विनतियों का इस निर्मम व्यक्ति पर कोई प्रभाव न हुआ, और उसने उत्तर दिया कि उसका पुत्र तो एक बालक था, और सिंहासन के नहीं बल्कि मेष दूध के योग्य था। इसके साथ ही साथ उसने तलवार के वार से युवा राजकुमार को शहीदी का ताज पहना दिया

२—नियामतउल्ला कृत मखज़न-ए-अफ़ग़ानिया डॉर्न द्वारा अनुवाद।

और इस प्रकार अपने को दोनों लोक की घृणा का पात्र बना दिया[1]। इस प्रकार मुबारिज खाँ ने सिंहासन प्राप्त किया और अफगान सामन्तों को अपने को सम्राट स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। राजकुमार फिरोज ने जो १२ वर्ष का ही था इस प्रकार केवल तीन दिन राज्य किया और ग्वालियर के सिंहासन के लिए अपने जीवन दान के रूप में बन्ध भुगताया[2]।

फिरिश्ता भी कहता है कि 'निजामुद्दीन अहमद बख्शी अपने अकबर के इतिहास में लिखता है कि सलीम शाह अपनी पत्नी बीबी बाई से प्रायः कहता था कि यदि उसे अपने बच्चे फिरोज के लिए थोड़ा सा भी स्नेह हो तो वह अपने भाई मुबारिज खाँ को फाँसी पर चढ़ा देने के लिए स्वीकृति दे दे 'और नहीं तो वह उसके द्वारा प्रथम अवसर पर अपने भानजे को मार डालने की बात को निश्चित समझले'। लेकिन दयालु हृदय वाली बहन उत्तर दिया करती थी मेरा भाई व्यसन और आनन्द का इतना प्रेमी है कि उसे राजसी चिन्ताओं का भार उठाने का अवकाश नहीं। लेकिन भाई ने इसके विपरीत व्यवहार किया और एक निर्दोष आत्मा का निर्दयतापूर्वक अन्त कर दिया।

मुबारिज खाँ—

वह २ नवम्बर १५५३ ई० को सिंहासनारूढ़ हुआ और सुल्तान मुहम्मद आदिल की उपाधि ग्रहण की तथा सिक्के बनवाने और अपने नाम में खुतबा पढ़वाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वह शेर शाह के छोटे भाई निजाम खाँ का पुत्र था। 'अकबरनामा' के लेखक के अनुसार निजाम खाँ के पुत्र तथा पुत्रियाँ सभी का उत्थान एक साथ हुआ — 'इस निजाम के एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं और आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि पुत्र एक बार का बन गया और तीन पुत्रियों के पति उच्च पद पर आसीन हुए। उनमें से एक तो सलीम खाँ था दूसरा सिकन्दर सूर और तीसरा इब्राहीम सूर[3]।

आरम्भ में अदली ने हमाम खाँ के भाई खास खाँ को अपना प्रधान मंत्री मनोनीत किया।[4] लेकिन उपाधियाँ धारण कर लेने के बाद भी वह अदली (मूर्ख)[5] कहलाता रहा। उसको यह उपनाम उसकी बर्बरता दुराचरण

१—डार्न कृत मखजन अंग्रेजी अनुवाद।
२—फिरिश्ता ब्रिग्स-अंग्रेजी अनुवाद मुस्लिम शक्ति के उत्थान का इतिहास जिल्द २-पृ० १४१, १४८ सलीम शाह सूर—लंदन १८२९।
३—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द १-पृ० ६१७।
४—नियामतउल्ला कृत मखजन-ए-अफगानिया
५—तारीख-ए-दाऊदी के पाठ्य में यह "अंधली" दिया है जिसका अर्थ है अंधा'। अबुल फजल 'अदली' लिखता है जिसका अनुवाद बेवरिज ने 'अत्याचारी' किया है। डार्न भी अदली लिखता है और उसका अर्थ 'मूर्ख बनाना' है — अकबरनामा १-पृ० ६१७।

और मूर्खतापूर्ण विनियमों को अफगान के कारण किया गया था। साधारण जनता का उसकी क्षमताओं के बारे में बहुत क्षुद्र मत था और जैसा कि डा॰ ईश्वरी प्रसाद ने कहा है— "निरंकुशतापूर्ण ढंग से भ्रष्ट और सार्वजनिक विषयों के प्रति पूर्णतः उपेक्षित वह संसार में अंतिम व्यक्ति था जो अफगान साम्राज्य को उस सर्वनाश से बचा सकता जिसमें पतन का उस भय था। उदार दानी होने के कारण और बच्चों की भांति खर्चीला होने के कारण उसे भ्रष्टों में लोकप्रिय बनने का अभाव न था।'[1] लेकिन बिना किसी भेद या संकोच के विषय हुआएं दिखा दिखा कर अफगान सामन्तों का मनाम में वह उस समय सफल हो गया। नियामतउल्ला ने इसका रुचिकर उल्लेख इन शब्दों में किया है[2]।

प्राचीन इतिहासों में यह पढ़कर कि उदारता एक सम्राट का विशेष गुण था इसने उसकी (प्राचीन सम्राट की) नकल करके अपने कमानों के द्वार *खोल दिए और सोने को उपहारों से लाद दिया। वह हर दिशा में तीर फेंका* करता था जिसकी नोक का मूल्य पाँच सौ टंका था और उस मकान के स्वामी को जिसमें वे तीर गिरते थे उनको वापिस लाकर देने पर पाँच सौ टके देना था।

हेमू का उज्ज्वल उत्थान

इस प्रकार की अराजकता की परिस्थितियों में जब कि अफगान समुदाय आन्तरिक विभेदों द्वारा विच्छिन्न हो गया था और असली जैसी मान्यता का व्यक्ति शिखर पर था भारतीय राजनैतिक कार्यक्रम में हेमू के स्तर का शूरवीर और राजनीतिज्ञ सहसा देदीप्यमान हुआ। अबुल फजल के शब्दों में हेमू के इस आश्चर्यजनक उत्थान का वर्णन पहले आ चुका है। वह अपनी विद्वत्ता, क्षमता तथा कार्यपटुता से मुबारिज खाँ जैसे विलास प्रिय शासकी कार्यों से अन्यमनस्क राजा का प्रधान मंत्री बना। जिस समय उत्तरी भारत में चारों ओर अराजकता फैली हुई थी हेमू ने शासन की बागडोर अपने हाथ में सम्भाली। सैकड़ों वर्ष पश्चात् भी उसके कठिन प्रयास कीम कार्य की महानता न भूला जा सकती है[3]....

दूसरा वृत्तान्तकार—मखजन-ए-अफगानियाँ का लेखक—हेमू के अद्भुत उत्थान का वर्णन इस प्रकार करता है—

"उस समय हेमू, जो रिवाड़ी में एक साधारण व्यापारी था और बाद में राजसी पाकशाला का निरीक्षक हो गया उच्च पद पर आसीन

१—डा॰ ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ॰ ९९४

२—डार्न नियामतउल्ला के 'दि मखजन-ए-अफगानिया' का अंग्रेजी अनुवाद—

३—अबुल फजल अकबर नामा १ पृ॰ " " " ६११।

कराया गया। धीरे-धीरे मुबारिज खाँ आदिल या वस्तुतः अदली (मूर्ख) के साथ उसकी घनिष्टता हो गई।[1]

सब समकालीन लेखकों का मत है कि उस समय पहले ही अराजकता थी और विभिन्न अफगान प्रतिद्वंद्वियों के बीच गृह-युद्ध की दशा उपस्थित थी। एक प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि हेमू के मुख्य-मंत्रित्व प्राप्त कर लेने पर या तो अराजकता आश्चर्यजनक रूप से बिगड़ गई[2] या कुछ समय के लिए अन्यथा अव्यवस्थित अफगान राज्य पद्धति में एकता और ओज की झलक फिर से दिखाई दी।

अबुल फजल द्वारा किया गया निम्नलिखित उल्लेख उपर्युक्त प्रश्न का उचित उत्तर देता है—

'हेमू और इब्राहीम (जो सल्तनत के लिए दावेदार थे) के बीच युद्ध हुए, और जीत सदा हेमू की हुई। सुल्तान मुहम्मद भी जिसने बंगाल में राजा की उपाधि धारण कर ली थी हार गया और अदम के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया गया। हेमू के ताज करांनी और रुकनु खाँ नुहानी से भी संघर्ष हुए और उसने उन्हें हरा दिया। उसने मुबारिज खाँ के शत्रुओं से बाइस लड़ाइयाँ लड़ीं, और सभी में विजयी हुआ।'

संक्षेप में यह हेमू की सफलताओं का सही वर्णन है जिस पर साधारणतः 'अदली' जैसे स्वामी की सेवा करने का, उद्दण्ड अफगान सामन्तों से लड़ने का और इतने पर भी झंडा ऊँचा किये हुए सफलता प्राप्त करने का बहुत ही कठिन कार्य भार था। यह कोई छोटी सफलता नहीं थी। इसमें निःसन्देह अकेन्द्रीकरण में एकता, विषमता में समता और अशान्ति के सागर में शान्ति प्राप्त करने का पवित्र आदर्श निहित था।

१—डार्न नियामतउल्ला का अंग्रेजी अनुवाद, दि मखजन।

२—अबुलफजल ने इस बात पर जोर दिया है कि—"जब प्रभुता मुबारिज खाँ के हाथ में आई हिन्दुस्तान की परिस्थिति पहले से भी खराब हो गई"—अकबरनामा पृ० ११४—११९।

अध्याय—४

हेमू की विजय

जब से अदली ने फिरोज की हत्या की अफगान सामन्त उससे प्रत्यक्ष रूप से पृथक हो गए। इस्लाम का पुत्र सिंहासन पर सलीम शाही सामन्तों द्वारा आसीन कराया गया था लेकिन मुबारिज खां ने शम्स खां की सहायता से निर्दोष बालक राजकुमार को हटाकर सिंहासन छीन लिया। देश में आतंक और क्षोभ की एक लहर दौड़ गई, और शम्स खां नए बादशाह को अधिक समय तक न संभाल सका। अदली के पास हेमू के ऊपर निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई चारा न था अतः हेमू ने उसकी ओर से मोर्चा संभाला शासन की बागडोर अपने हाथों में ली और अफगान सामन्तों की चुनौतियों का आए न आए सामना करना आरम्भ कर दिया। कुछ अफगानों ने हेमू के हाथों में शक्ति का केन्द्रित हो जाना पसन्द नहीं किया जिससे स्वभावतः अफगान मुखियाओं में उसके शत्रु उत्पन्न हो गए, जिन्होंने उसके मार्गों के विरुद्ध षड्यंत्र करके उसके अधिकार से विद्रोह किया। खूनी मुठभेड़ हुई। विद्रोह में खड़े होने वालों में दमीम खां सूर सबसे पहला था। लेकिन इसका दमन आसानी से हो गया।

अजमेर में विद्रोह—

अजमेर में सूबेदार जुनैद खां ने विद्रोह किया। हेमू ने उसके विरुद्ध सेना के साथ कूच किया और उसके अधिकारी दौलत खां के विरुद्ध युद्ध करके उसे हरा दिया। उसके बाद जुनैद खां स्वयं युद्धक्षेत्र में आया केवल एक भारी हार खाने के लिए।[1] अदली एक दूर स्थान पर हेमू की इस आशातीत विजय से अति प्रसन्न हुआ और उसे तुरन्त अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। इससे स्वभावतः अफगान मुखियाओं का द्वेष ईर्ष्या और परिणामतः दूसरा द्रोह अवश्य जागृत हुआ होगा।

फरमुल्ली का निष्फल विद्रोह—

अदली अफगान सामन्तों में फंसे हुए राज के प्रति असावधान था और वह उनकी शक्ति और विशेषाधिकारों के दमन की नीति पर चलता रहा।

१—डा० आर० पी त्रिपाठी-मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० १६८।

कराया गया। धीरे-धीरे सुल्तान आदिल या 'अन्धुल' अदली (मूर्ख) के साथ उसकी घनिष्टता हो गई।[1]

सब समकालीन लेखकों का मत है कि उस समय पहले ही अराजकता थी और विभिन्न अफगान प्रतिद्वंद्वियों के बीच गृह-युद्ध की दशा उपस्थित थी। एक प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि हेमू के मुख्य-मंत्रित्व प्राप्त कर लेने पर या तो अराजकता आश्चर्यजनक रूप से बिगड़ गई[2] या कुछ समय के लिए अन्यथा अव्यवस्थित अफगान राज्य पद्धति में एकता और योग की झलक फिर से दिखाई दी।

अबुल फजल द्वारा दिया गया निम्नलिखित उल्लेख उपयुक्त प्रश्न का उचित उत्तर देता है—

"हेमू और इब्राहीम जो सल्तनत के लिए दावेदार थे के बीच युद्ध हुए, और जीत सदा हेमू की हुई। सुल्तान मुहम्मद भी जिसने बंगाल में राजा की उपाधि धारण कर ली थी हार गया और सर्वनाश के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया गया। हेमू के ताज कर्रानी और रुकु खाँ नुहानी से भी संघर्ष हुए और उसने उन्हें हरा दिया। उसने मुबारिज खाँ के शत्रुओं से बाइस लड़ाइयाँ लड़ीं, और सभी में विजयी हुआ।"

संक्षेप में यह हेमू की सफलताओं का सही वर्णन है जिस पर साधारणतः 'अदली' जैसे स्वामी की सेवा करने का, उद्दण्ड अफगान सामन्तों से लड़ने का और इतने पर भी झंडा ऊंचा किये हुए सफलता प्राप्त करने का बहुत ही कठिन कार्य भार था। यह कोई छोटी सफलता नहीं थी। इसमें निःसन्देह अकेन्द्रीकरण में एकता, विषमता में समता और अशान्ति के सागर में शान्ति प्राप्त करने का पवित्र आदर्श निहित था।

१—डार्न : नियामतउल्ला का अंग्रेजी अनुवाद, दि मखजन।

२—अबुल फजल ने इस बात पर जोर दिया है कि— जब प्रभुता मुबारिज खाँ के हाथ में आई हिन्दुस्तान की परिवर्तित राज्य में भी प्रदान हो गई —अकबरनामा पृ. ६१२—६१९।

अध्याय—४

हेमू की विजय

जब से अदली ने फ़िरोज़ की हत्या की अफ़गान सामन्त उससे प्रत्यक्ष रूप से पृथक हो गए। इस्लाम का पुत्र सिंहासन पर अमीन शाही सामन्तों द्वारा आसीन कराया गया था लेकिन मुबारिज़ खां ने अन्य खां की सहायता से निर्दोष बालक राजकुमार का हत्याकर सिंहासन छीन लिया। इन में आतंक और क्रोध की एक लहर दौड़ गई और अन्य खां गए बादशाह को अधिक समय तक न संभाल सका। अदली के पास हेमू के ऊपर निर्भर रहने के अतिरिक्त और कोई चारा न था अस्तु हेमू ने उसकी ओर से मानो संभाला शासन की बागडोर अपने हाथों में ली और अफ़गान सामन्तों की चुनौती, का बाएं व दाएं सामना करना आरम्भ कर दिया। कुछ अफ़गानों ने हेमू के हाथों में शक्ति का केन्द्रित हो जाना पसन्द नहीं किया, जिससे स्वभावतः अफ़गान मुखियाओं में उसके शत्रु उत्पन्न हो गए, जिन्होंने उसके प्राणों के विरुद्ध षड्यंत्र करके उसके अधिकार से विद्रोह किया। अनेकों मुठभेड़ हुईं। विद्रोह में भाग होने वालों में अमीन खां सूर नवम प्रमुख था। लेकिन इसका दमन आसानी से हो गया।

अजमेर में विद्रोह—

अजमेर में सूबेदार जुनैद खां ने विद्रोह किया। हेमू ने उसके विरुद्ध सेना के साथ कूच किया और उसके अधिकारी दौलत खां के विरुद्ध युद्ध करके उसे हरा दिया। उसके बाद जुनैद खां स्वयं युद्धक्षेत्र में आया केवल एक भारी हार खाने के लिए।[1] अदली एक दूर स्थान पर हेमू की इस आशातीत विजय से अति प्रसन्न हुआ और उसे तुरन्त अपना प्रधान मन्त्री बना लिया। इससे स्वभावतः अफ़गान मुखियाओं का द्वेष ईर्ष्या और परिणामतः छुपा द्रोह अवश्य जागृत हुआ होगा।

फ़र्मुली का निष्फल विद्रोह—

अदली अफ़गान सामन्तों में फैले हुए रोष के प्रति असावधान था और वह उनकी शक्ति और विपक्षाधिकारों के दमन की नीति पर चलता रहा।

१—डा॰ आर॰ पी॰ त्रिपाठी-मुग़ल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ॰ १२८।

वह इस्लाम शाह की नकल करना चाहता था यद्यपि ऐसा करने की उसमें न तो क्षमता थी और न बुद्धिमत्ता। उसने जागीरों का फिर से बटवारा करना शुरू कर दिया। वह शेरशाही और इस्लामशाही व सामन्तशाही को समाप्त करके अपना एक निजी अफगान सामन्तवर्ग उत्पन्न करना चाहता था। इस नीति की असफलता पहले से ही निश्चित थी। कन्नौज सूबे के सूबेदार मुहम्मद खां फरमुल्ली का सामना करने की उसकी चेष्टा के फलस्वरूप दरबार में खुले रूप से उपद्रव हुआ। एक दिन दरबार-ए-आम में उसने (अदली) ने अपने मुखियाओं की सम्पत्ति और शासन बाटना आरम्भ किया अन्य के साथ-साथ उसने मुहम्मद खां फरमुल्ली से कन्नौज सूबे को लेकर सरमस्त खां-सुरोबन्नी को दिए जाने की आज्ञा दी। एक साहसी युवक सिकन्दर खां पुत्र मुहम्मद खां ने जो वहां उपस्थित था नमस्कार कर बादशाह से कहा 'तो क्या मेरी सम्पत्ति कुत्तों के बेचने वालों को दे दी जायगी ?'[१]

'मुहम्मद खां फरमुल्ली ने जो वहां उपस्थित था अपने पुत्र की उग्रता को रोकने का यत्न किया, लेकिन इससे केवल उसकी उत्तेजना और भड़क उठी। उसने अदली पर उसके परिवार का समूल नाश करने की योजना का आरोप लगाया। सरमस्त खां ने जो सम्पत्ति को पाने वाला था असाधारण बल का व्यक्ति होने के कारण सिकन्दर को गले से पकड़ लिया। युवक प्रतिद्वन्द्वी ने अधीर प्रकृति का युवक होने के कारण इसका प्रत्युत्तर दिया और सरमस्त खां को जान से मार डाला। स्वतन्त्र हो जाने पर उसने उन सब पर जिन्होंने उसका प्रतिरोध किया प्रहार करना आरंभ कर दिया। कुछ मुखिया वहीं पर मारे गये। उसके बाद उसने बादशाह पर भी आक्रमण कर दिया जो सिंहासन से कूदकर हरम में घुस गया और सिकन्दर खां के पीछा करने पर उसने उसके सामने का दरवाजा बन्द कर दिया जिससे उसका आगे जाना रुक गया और मुहम्मद शाह द्वार की चिटकनी चढ़ाकर अपनी रक्षा कर सका।'[२] फिरिश्ता का वर्णन नियामतुल्ला के वर्णन से थोड़ा सा भिन्न है। इसमें केवल उल्लेख है कि अदिली इस बवाबाह दृश्य को देखकर अपने निजी कक्ष में भाग गया।[३] सामन्तों में से अधिकतर के आ जाने पर अदली का बहनोई इब्राहीम खां सूर उसकी सहायता आया। सरमस्त खां का किसी प्रकार घेर लिया गया और उस पर आक्रमण किया गया। उसके टुकड़े २ कर दिए

१—फिरिश्ता अंग्रेजी अनुवाद जिल्द २ पृ० १४६ मखजन के अनुसार अंग्रेजी अनुवाद सरमस्त खां का कत्ल करने वाला कहा गया है।

२—फिरिश्ता जिल्द २ अंग्रेजी अनुवाद डिग्स पृ० १८६

३—नियामतउल्ला कि मखजन अंग्रेजी अनुवाद डार्न।

गए। तत्पश्चात् दौलत खाँ लोहानी ने जान की परवाह न करने वाले युवक ने पिता मुहम्मद खाँ फरमुली का कत्ल कर दिया।

ऐसी अनुचित घटनाओं का प्रभाव यह हुआ कि अफ़ग़ान सामन्तों पर अदली का प्रभाव और शक्ति तेजी से घट गयी। उनमें से कुछ अपनी प्राण रक्षा के लिए और कुछ अपने पक्षों को दृढ़ करने के लिए अपने अपने प्रदेशों की ओर चल गए। अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि दरबार में हेमू उपस्थित था या नहीं लेकिन संभवतः वह नहीं था। तत्पश्चात् अदली ने [illegible] के साथ उसको स्थिति सम्भालने का कार्य सौंप दिया।

ताज कर्रानी का पीछा—

एक दूसरा प्रमुख अफ़ग़ान सामन्त जिसे मुहम्मद फरमुली के संकट का आभास मिल चुका था और जिसने उसे ग्वालियर के दुर्ग के फाटक पर कुछ समय पूर्व सावधान भी कर दिया था दरबार के भवन से बाहर ही था। 'मख़ज़न' के लेखक के अनुसार उसने "उस परिषद की शोचनीय दशा समझ ली और उसे बताया कि परिस्थितियाँ इतनी बदल गई थीं कि अदली का उस समय न तो कोई आदर करता था और न उससे कोई डरता था क्योंकि परिषद् में ही सब उपस्थित सदस्यों द्वारा अनसुनी बातें कही गई थीं और उन्होंने अभूतपूर्व ढंग से व्यवहार किया। इसलिए सबसे सुरक्षित और भयरहित मार्ग यही था कि परिषद् में अब और अधिक भाग न लिया जाय।"[1] ताज कर्रानी ने फरमुली से अपने से मिल जाने का और परिषद् में न उपस्थित रहने को कहा लेकिन फरमुली ने उसके शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसे अपने पुत्र की उत्तेजना के कारण दुर्दिन देखने पड़े। ताज कर्रानी सावधान हो गया और जैसे ही उसने हत्याओं के बारे में सुना उसने सामान बाँधा और पूर्व की ओर चला गया। अपने सब साथियों को लेकर वह "बंगाल की दिशा में चलने को अग्रसर हुआ।"[2]

छिबरामऊ की लड़ाई—

जैसे ही अदली ने ताज कर्रानी के भाग का समाचार सुना उसने स्वयं उसका पीछा करने का निश्चय किया। लेकिन हेमू के [illegible] दिमाग पर वह भागने वाले से निपट लेगा अदली ने उसे पीछा करने का कार्य सौंप दिया। हेमू ने इस्लाम शाह के अति विश्वस्त और लड़ाकू खाँ को [illegible] बनाने वाले का[3]

१—नियामतउल्ला : दि मख़ज़न : अंग्रेजी अनुवाद : डार्न।
२—नियामतउल्ला : दि मख़ज़न : अंग्रेजी अनुवाद : डार्न।
३—डा० त्रिपाठी : मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन : पृ० १२८।

आगरा से ८ मील दूर छिबरामऊ में पकड़[1] लिया। यद्यपि वह हेमू से हार गया फिर भी वह बचकर चुनार भाग जाने में सफल हो सका।

हेमू की चुनार में विजय—

ताज करानी ने जबकि वह चुनार वापस जा रहा था मार्ग भर को विध्वंस कर दिया। अपनी प्रगति में (उसने) जनता के धन और बादशाह की अन्य वस्तुओं पर कब्जा कर लिया और अपने बन्धुओं और अन्य जाति भाइयों को जिनकी खवासपुर टांडा के सूबे में भूमि थी सौ हाथी दे दिए।[1] उनकी सहायता से उसने एक प्रभावशाली सेना एकत्र कर ली जिससे बादशाह को स्वयं मैदान में आना पड़ा और चुनार से ऊपर नदी के किनारों पर जो विद्रोही उसे मिले वे हराए गए और भगा दिए गए।[2] ताज करानी का पीछा करते समय हेमू के साथ अदली भी मिल गया और चुनार में एक भीषण संग्राम हुआ। अदली ने अपनी आँखों से हेमू की वीरता और रणचातुर्य देखा—और वह इससे इतना प्रभावित हुआ कि उसको 'विक्रमाजीत' की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदान की। ताज करानी की सहायता सुलेमान ईमाम और ख्वाजा इलियास ने की जिनके पास गंगा के किनारे के परगने थे और जो अदली के विरुद्ध लड़ने को उत्सुक थे। लेकिन हेमू ने उन सबको परास्त कर दिया।[3] यह बंगाल और बिहार के प्रचलन के बिलकुल अनुकूल था जहां कि एक विजयी सेना नायक को इस उपाधि से सम्मानित किया जाता था। अबुल फजल भी इसको मानता है कि हेमू ने यह उपाधि कुछ समय से ग्रहण कर ली थी।[4] इससे अल बदाउनी का यह कथन असत्य सिद्ध होता है कि हेमू ने यह उपाधि दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने के बाद अक्तूबर १५५६ ई० में धारण की थी।[5]

हेमू का बंगाल पर आक्रमण—

चुनार में करानियों की करारी हार के बाद भी संकट समाप्त नहीं हुआ। ताजकरानी फिर किसी तरह बचकर जौनपुर पहुँचा जहाँ वह अपने

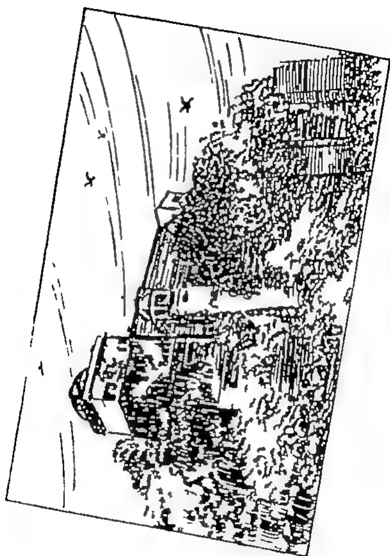
१— खवासपुर टांडा बंगाल की सीमा पर था त्रिपाठी को देखिये—पृ० १२९ मुगल साम्राज्य।

२—फिरिश्ता ई० टी ब्रिग्स जिल्द २ पृ० १४५।

३—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० १९४ "दोनों सेनाएँ एक दूसरे से एक नदी के पार मिलीं जब तक कि हेमू अचानक तेजी के साथ कुछ हाथियों सहित दूसरे किनारे पर पहुँच गया और उसने विद्रोहियों को एक भयानक संघर्ष के बाद पूरी तरह परास्त कर दिया।"

४—अबुल फजल जिल्द २ अकबरनामा

५—अल बदाउनी पृ० ७—अध्याय १ भी देखिए।



भाई अहमद खां से मिला और उसने पूर्व की ओर कूच करने का प्रबन्ध किया। हेमू ने अपने स्वामी अदली से चुनार में ही रहने और उसको करीनियों से निपटने की आज्ञा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। आवश्यक अनुमति मिलने पर हेमू ने करीनियों के प्रधान का बंगाल की सीमाओं तक पीछा किया। ताज ने अपने भाइयों की शरण ली जिनके पास खवासपुर टांडा में अमीर जागीरें थीं।

इब्राहीम का पृथक किया जाना और कालपी की पहली लड़ाई—

अन्य सामन्तों को अदल से पृथक करना पड़ा। दौलत खां लिवानी और सिराज खां जैसे विख्यात व्यक्तियों को जो उसके प्रति स्वामि भक्त थे उसके द्वारा कष्ट पहुँचाये जाने के कारण तथा दूसरे अफगान सामन्त भी उससे अलग हो गए[1]। उसके निजी रिश्तेदार उससे भिन्न हो गए। उसे स्वयं भी अपने बहनोई इब्राहीम खां सूर से ईर्ष्या होती जा रही थी। उसने उसको बंदी बना लेने के लिए गोपनीय आदेश दिए परन्तु उसकी पत्नी अदली की बहन ने जब अपने भाई की योजना सुनी तो अपने पति को षड्यंत्र से परिचित करा दिया और वे चुनार से भाग गए। उसने बियाना जहां उसके पिता गाजी खां हिसार के गवर्नर थे की ओर प्रस्थान किया।[2] ईसा खां नियाजी को इब्राहीम का पीछा करने को कहा गया और वह कालपी[3] के पास तक पहुँच गया परन्तु पीछा करने वाले को सामने वाले ने हरा दिया।

इस सफलता से साहस पाकर और निर्भीक व भयरहित होकर दुबेली में जाकर इब्राहीम खां ने ग्वालियर दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। इस समय अदली चुनार में ही था। इब्राहीम ग्वालियर से दिल्ली पहुँचा जहाँ वह सिंहासन पर बैठाया गया और उसने राजसी ठाठ-बाट अपना लिया।

अदली और इब्राहीम—

जैसे ही अदली को इब्राहीम द्वारा ग्वालियर और आगरा पर अधिकार किए जाने का समाचार मिला उसने पश्चिमी भाग में शासनसत्ता अपहरण करने वाले का दमन करने की योजना की। इब्राहीम उसका विरोध करने के

१—डा. त्रिपाठी: मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन—पृ० १४९ "इन दो दुर्रानियों को हराकर आदिलशाह ने अपने हाथों अपने साम्राज्य की जड़ें हिला दीं"।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द २—पृ० १४६ १४७।

३—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जालौन पृ० १७२ १६ वीं सदी में कालपी दिल्ली व बंगाल के मार्ग का मध्यवर्ती विश्राम-स्थल बन गया था। सूर शासकों के समय में यह मध्यवर्ती युद्ध का क्षेत्र बन गया था। अकबर के राज्य काल में कालपी पश्चिम का द्वार बन गया व मध्यप्रदेश जाने का मार्ग बन गया।

स्थान पर उससे सन्धि की वार्ता करने लगा यह प्रण करते हुए कि यदि वह शाह हुसेन खाँ और अन्य मुखियाओं को क्षमादान के आश्वासनों सहित भेज दे तो वह झुक जायेगा। तथा उसकी का आधिपत्य मान लेगा। बादशाह ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और इब्राहीम खाँ ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपहारों द्वारा आश्वासनों से और कड़ मुनकर उनको (हुसेन खाँ इत्यादि) वश में किया। मुहम्मद शाह अदली अपने साथ विश्वासघात हुआ देखकर चुनार भाग गया और पूर्वी प्रदेश के शासन से ही अपने को संतुष्ट रखा फलत इब्राहीम खाँ के पास पश्चिमी प्रदेश का अधिकार बना रहा।[1]

इसके बाद सिंहासन पर अधिकार कर लेने पर, इब्राहीम ने कई सामंतो को अपने रंग में रंग लिया और खुतबा अपने नाम से पढ़वाया। उसने सुल्तान मुहम्मद की उपाधि ग्रहण की और दिल्ली में शक्तिसम्पन्न हो गया।

फर्राह की लड़ाई—

इब्राहीम अपनी प्रभुता का सुख कुछ समय के लिए भी न भोग सका जबकि उसके अधिकार को छोटी बहिन के पति और आदिलशाह के चचेरे भाई अहमद खाँ द्वारा चुनौती दी गई। अहमद खाँ ने हैबत खाँ और दूसरे मुखियाओं जो स्वर्गीय सलीम शाह द्वारा बनाए गए सामन्त रह थे की सहायता पाकर सिकन्दर शाह की उपाधि धारण कर ली और आगरा की ओर १ या १२ सहस्र अश्वारोहियों के साथ कूच करते हुए उस शहर से २० मील के अन्दर डेरा न डाल डाला। इब्राहीम ने उसका प्रतिरोध ७ हजार घुड़सवारों से किया और इससे उसके दल की शान का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जब यह कहा गया है कि कम से कम ० अफसर मसनद के गद्दों से युक्त डेरों में स्थित थे और प्रत्येक को मौजा नक्कारा का विशेषाधिकार था।[2] दोनों प्रतिद्वंदी सेनाओं की एक दूसरे से आगरा से १० कोस दूर एक गाँव फर्राह में मुठ-भेड़ हुई। सिकन्दर ने इब्राहीम की ऐसी प्रभावशाली सेना का विरोध करने के स्थान पर अपनी सेना को छोटी समझकर उसके पास शान्ति-प्रस्ताव भेजा। एक सन्धि प्रस्तावित की गई, जिसके अनुसार दिल्ली से लेकर हिन्द की पूर्वी सीमा

१—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द २—पृ० १८६।
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर सन् १५५४ ई० में इब्राहीम सूर ने कालपी पर अधिकार कर लिया था परन्तु शीघ्र ही हेमू ने उसको वहाँ से निकाल बाहर किया। पृ० १२२

२—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द—२ पृ० १८७।
संगीत वाद्य जिसमें भी बाद होते हैं—जो राजा के संबंध रहते थे पर उनके द्वारा गवर्नरों को भी प्रदत्त किया जाता था जिसको वह अपने शासन क्षेत्र में और राज परिवार की अनुपस्थिति में प्रयोग में ला सकते थे।

तक का संपूर्ण प्रदेश इब्राहीम का हुआ और सिकन्दर को पंजाब और मुल्तान से अपने को संतुष्ट करना था। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित हुआ कि यदि अदली का गुप्त कोष इब्राहीम के हाथ आया तो उसमें दोनों का भाग होगा। लेकिन फिरिश्ता और नियामतउल्ला के कथनानुसार, इब्राहीम ने अपनी विशाल शक्ति के मद में शर्तों की ओर ध्यान ही नहीं दिया।[1] संघर्ष हुआ जिसमें इब्राहीम की करारी हार हुई और इस भावना के अनुसार कि 'कम संख्या वाले बड़ी संख्या वालों का क्या देंगे' सिकन्दर को विजय प्राप्त हुई और इब्राहीम सम्भल की ओर भाग गया। इस समय तक हेमू भी (युद्ध के) रंग-मंच पर उपस्थित हो गया था, और जब इब्राहीम उसमें से कालपी पहुँचा हेमू ने उसे ललकारा।

कालपी की दूसरी लड़ाई—

अपने स्वामी के खोये हुए साम्राज्य को फिर से प्राप्त करने के प्रत्यक्ष उद्देश्य से दिल्ली की ओर कूच करने की हेमू की तैयारियों का निम्नलिखित वर्णन मिलता है—

"इसी समय अदली ने हेमू को जिसे उसने अपना वजीर मनोनीत किया था असंख्य सेना से पहाड़ जैसे ऊँचे हाथियों से और सुसज्जित अश्वारोही-सेना से सम्पन्न करके दिल्ली को भेजा। कालपी पहुँचने पर हेमू ने पहले इब्राहीम को प्रेरित करने और युद्ध के लिए विवश करने का निश्चय किया। इब्राहीम संघर्ष के बाद हार गया और अपने पिता के पास भाग गया जो उस समय कालपी का गवर्नर था वहाँ दोनों ने अपने को दुर्ग में सुरक्षित कर लिया।[2]

बयाना का घेरा—

हेमू इब्राहीम का पीछा करता रहा और बयाना के दुर्ग को घेर लिया जिसमें पिता व पुत्र दोनों दृढ़ता पूर्वक सुरक्षित थे। यह घेरा तीन मास तक पड़ा रहा।[3]

खनवा की लड़ाई—

९६२ हिजरी अथवा १५५४ ई० बयाना के घेरे के समय में आवश्यक सहायता पाकर इब्राहीम केवल एक बार दुर्ग से बाहर निकला और उसने बयाना से १० कोस दूर खनवा में एक युद्ध किया। लेकिन हेमू ने उसे फिर से किले में लौट जाने के लिए बाध्य कर दिया।[4]

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ पृ० १९९—'इब्राहीम ने इन शर्तों के लिए अपनी स्वीकृति दे दी लेकिन उसके अफगान समर्थकों ने उनको, निर्बलता का एक चिन्ह समझा। कार्यवाही कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई, लेकिन इससे अधिक विलम्ब न किया जा सका।

२—नियामतउल्ला डार्न 'मखजन' का अँग्रेजी अनुवाद।

३—फिरिश्ता-बिग्स अँग्रेजी अनुवाद पृ० १४९।

४—फिरिश्ता बिग्स अँग्रेजी अनुवाद पृ० १४९।

आगरा का युद्ध—

इस तीन माह के संघर्ष के निर्णय के शुभ अवसर पर जब कि हेमू, इब्राहीम को घुटने टेक देने के लिए बाध्य करने वाला ही था अदली बंगाल के शासक मुहम्मद शाह सूर के विद्रोह से आतंकित हो गया। बंगाल के शासक के इस अप्रत्याशित आक्रमण ने अदली को विवश कर दिया कि वह हेमू को बयाना के घेरे से वापस बुला ले और इब्राहीम ने उसकी इस सहसा वापसी से साहस पाकर उसका पीछा किया। आगरा के समीप पहुंच कर उस पर आक्रमण किया। लेकिन फिर हार जाने के कारण उसे बयाना में अपने पिता के पास भाग जाना पड़ा।[1]

एक अन्य वर्णन के अनुसार "जब हेमू इसके (वापिस बुलाए जाने) के फलस्वरूप मुवापुर तक लौट गया था इब्राहीम किले से बाहर निकला और उसका पीछा किया लेकिन परास्त होने के कारण और अपने पिता के सम्मुख जाते हुए लज्जा के कारण उसने अपना मार्ग बदलकर पटना की ओर कूच कर दिया।" इस घटना का एक और भी भिन्न वर्णन है जिसके अनुसार इब्राहीम पहले पटना की ओर नहीं अलवर की ओर भागा। जहां उसे हाकिम हाजी खां से सहायता मिली और हेमू के विरुद्ध लड़ने के लिए उसने पुनः शक्ति जुटा ली।

अलवर का युद्ध —

शत्रुओं की इस नई चुनौती का सामना करने के लिए और स्वयं को स्वतन्त्र रखने के लिए तथा बंगाल के मुहम्मद खां सूर का सामना करके अपने स्वामी अदली के आवश्यक आदेश को मानने के लिए हेमू ने अपने भतीजे महिपाल को अपनी सेना के एक भाग के साथ इब्राहीम का पीछा करने को नियुक्त किया। एक संघर्ष हुआ और हेमू की सेना ने महिपाल के नेतृत्व में इब्राहीम को हरा दिया। इब्राहीम बयाना में अपने पिता के पास लौटने के लिए बहुत लज्जित था। फलस्वरूप वह पूर्व की ओर भाग गया।[2]

लेकिन स्थानीय (पटना के) राजा राजा रामचंद्र को अपनी ओर मिलाने में असफल होने पर उसको युद्ध लड़ना पड़ा जिसमें वह पराजित हुआ और बंदी बना लिया गया। राजा उदारता और नीति वालों के कारण सर्वदा उसे उच्चतम स्थान देता था जबकि स्वयं एक अंगी नीचे बैठता था लेकिन वहां कुछ समय बिना मेल के बाद वह मियाना के अफगानों द्वारा बुलाया गया और इसीलिए मालवा[3] चला गया। पर वहां अपना स्वागत न होने के कारण

१—नियामतउल्ला डार्न के अनुसार मखजान का अंग्रेजी अनुवाद यह युद्ध मुवापुर में हुआ था।

२—नियामतउल्ला अंग्रेजी अनुवाद डार्न "हि मखजन"

३—९६२ १५५४ ई० फिरिश्ता के कथनानुसार अफगानों ने बाजबहादुर से युद्ध किया और हरा दिया—ब्रिग्स—२ पृ० १४९।

वह बंगाल की ओर चला गया जहाँ उस समय (वर्ष ९७२) सुलेमान कर्रानी ने उड़ीसा के जिला पर पूर्ण प्रभुता स्थापित कर ली थी और राजीनामा होने पर और आश्वासन दिए जाने पर उसकी नौकरी कर ली पर उसके द्वारा छल से उसकी हत्या कर दी गई।

छुपुर्ग हट्टा का युद्ध—

इब्राहीम को हराकर और अपने भतीज महिपाल द्वारा उसका पीछा करने का प्रबन्ध करके हेमू पूर्व की समस्याओं को सुलझाने तथा घटनाओं पर ध्यान देने के लिए तेजी से चुनार की ओर बढ़ा। बड़ी सेना के साथ उसने बंगाल के शासक का पीछा करना आरम्भ किया बंगाल शासक उससे बचता रहा और चालाकी से घेरे से निकल कर पश्चिम की ओर भाग खड़ा हुआ। वह रोहतास[1] के पास की पहाड़ियों को पार करके बुंदेल खण्ड के प्रदेश में घुसा जहाँ हेमू द्वारा पीछा किए जाने पर कालपी से १० मील दूर छुपुर्ग-हट्टा नामक गाँव में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई और बंगाल का मुहम्मद शाह सूर मारा गया।[2] नियामतउल्ला के कथनानुसार 'इब्राहीम सूर की हार के बाद कालपी के पास वापस लौटते हुए, हेमू ने छुपुर्ग हट्टा के समीप मुहम्मद खां गुरिया से युद्ध किया उसे मार डाला और बहुत सा लूट का माल हस्तगत किया। उसने अब दुगुने उत्साह के साथ ताज कर्रानी का नाश करने के लिए बिहार की ओर कूच किया।[3] अन्य वृत्तान्तों के आधार पर बताया गया है कि मुहम्मद खाँ पराजित होने के पश्चात् जमुना में डूब कर मर गया।

सिकन्दर शाह सूर—

जब कि हेमू पूर्व की समस्याओं तथा परिस्थितियों को सुलझाने में व्यस्त था और बिहार और बंगाल में अदली के विपक्षियों का नाश कर रहा था, अफगान साम्राज्य के पश्चिमी भाग में अदली के एक अन्य रिश्तेदार, सिकन्दर शाह सूर को पूर्ण छूट मिल गई थी जिसने इब्राहीम से दिल्ली और आगरा का अधिकार छीन लिया। समकालीन अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं है कि हेमू ने सिकन्दर के पक्ष में कोई भाग लिया अथवा नहीं पर यह स्पष्ट है कि उसने

१—रोहतास दक्षिण-पश्चिमी बिहार में है यह पश्चार प्रदेश (पंजाब) में टोडर मल खत्री की सहायता से शेरशाह द्वारा निर्मित रोहतास दुर्ग से भिन्न है।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द २ पृ. १८९। इलियट खण्ड ४ पृ० ५०७ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जालौन १९०९ के अनुसार छुपुर्ग-हट्टा की दूरी कालपी से २७ मील बतायी गयी है। पृ०१२२

३—नियामतउल्ला दि 'मखजन' डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

उसके प्रभावशाली अफगान शत्रु इब्राहीम को कार्य-क्षेत्र से हटा दिया। यदि अदली हेमू पूर्व की ओर वापस न बुला लेता तो या तो वह सिकन्दर का साथ देता या उसका विरोध करता। लेकिन सिकन्दर हिजरी ९६२ में (१५५४ ई०) आगरा में सिंहासनारूढ़ हुआ ही था कि उसको उत्तर-पश्चिम से मुगलों के दूसरे आक्रमण का सामना करना पड़ा।

सिकन्दर ने अपने अधीन अफगान सामन्तों को एकत्र किया और उनसे इस प्रकार बोला—[1]

'मैं अपने को आप लोगों में से एक समझता हूं। अब तक जनहित का कार्य करके भी मैं किसी उच्चता का दावा नहीं करता हूं। बहलोल ने लोदी वंश को कीर्ति और प्रतिष्ठा तक पहुंचाया शेरशाह ने सूर वंश को जगमगाया और अब अपने पिता की विजयों का उत्तराधिकारी मुगल हुमायूं हम सबका नाश करने और अपना शासन पुनः स्थापित करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिए यदि आप सच्चे हैं और आपसी भेदभाव और शत्रुता को मिटा दें तो हम अपने साम्राज्य को अब भी बचा सकते हैं। लेकिन यदि आप मुझे शासन के योग्य नहीं समझते तो आप अपने में से किसी एक अधिक योग्य नेता अथवा अन्य दृढ़ व्यक्ति को चुन लें ताकि मैं भी उसके प्रति राजभक्ति की शपथ ला सकूं। मैं पूर्ण विश्वास पूर्वक उसकी सहायता करने का वचन देता हूं और साम्राज्य को उन अफगानों के हाथों में सुरक्षित रखने का प्रयास करूंगा जिन्होंने गत कई वर्षों से अपने पराक्रम द्वारा इसे सुरक्षित रखा है।

सिकन्दर ने इस प्रकार अफगानों का विश्वास प्राप्त किया जो बहुत ही कम समय तक बना नहीं रहा। बहुत शीघ्र उनमें आपस में सम्मान और पदों के लिए झगड़े उठ खड़े हुए और फूट की ज्वालाएं फिर से भभक उठीं और पहले से भी अधिक तीव्रता से प्रज्वलित हुईं। यहां तक कि अफगान संगठन बिल्कुल खोखला हो गया। ऐसी संकटमय स्थिति में हुमायूं ने फिर से दिल्ली का सिंहासन पाने के लिए हिन्द की ओर कूच किया। हेमू ने जिसने पूर्व में एक विशिष्टता प्राप्त कर ली थी चुनार व जौनपुर में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी बिहार और बंगाल को आधीन कर लिया था और उसका इटावा कालपी ग्वालियर और बयाना पर पूर्ण आधिपत्य हो गया था। हेमू मुगलों के इस नवीन आक्रमण को स्थिर चित से नहीं देख सका। उसके नाम मात्र के स्वामी को उस पर पूर्ण विश्वास था और उसने हेमू के पक्ष में लगभग सभी अधिकार त्याग दिये थे। वह चुनार में रहकर ही संतुष्ट था। इस मध्य में सिकन्दर ने मुगलों के दलों का सामना किया सरहिन्द के निकट हार खाई और सिवालिक पहाड़

१—नियामतउल्ला दि मखजन डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

की ओर चला गया।[1] अदली ने मुगलों का सामना करने के लिए हेमू को समस्त सेना को संगठित करने के आदेश दिए।

१—अल-बदाऊनी के कथनानुसार राज्याभिषेक के निर्णय के बाद शाही सेनाओं को सिकन्दर के विरुद्ध (जो) पहाड़ी जिले में (था) लगाया गया। सिकन्दर तीन मास तक युद्ध करता रहा लेकिन अन्ततः हार गया"। पृ० सं० ४ लोव द्वारा अंग्रेजी अनुवाद देखिए पृ० १२ तथा २ सिकन्दर शिवालिक पहाड़ियों से जौनपुर आया वह गौड़ प्रदेश की जागीर चाहता था। उसकी यह माँग स्वीकार होने के पश्चात् वह बंगाल चला गया जहाँ दो वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

अध्याय—५

हुमायूँ का अल्पकालीन-शासन तथा हेमू

ग्वालियर में इस्लाम अथवा सलीम शाह रुग्ण हुआ तथा २२ जिलकदा हिजरी ९६० तदनुसार ३० अक्तूबर १५५३ ई० में उसका देहान्त हो गया।[1] उसकी छोटे-छोटे सामन्तों की शक्ति क्षीण करने की नीति ने एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि अफगान शासन के प्रति किसी की भी आस्था नहीं रह गई थी। चारों ओर अस्तव्यस्तता स्वार्थपरता एवं पारस्परिक अविश्वास का साम्राज्य था। इसी समय हुमायूँ को दिल्ली तथा आगरा से पुराने यवन हितैषियों से पत्र मिले जिनमें उसके प्रत्यागमन के स्वर्ण अवसर की सूचना दी गई थी। परन्तु उस समय उसके प्रशासन अत्यन्त स्वस्थ होने के कारण हुमायूँ ने उस निमंत्रण की ओर कोई ध्यान न दिया तथा अत्यन्त उदासीन हो गया।[2]

अफगान साम्राज्य की शासन-सत्ता अदली के हाथों में आ गई तथा वह बिहार, जौनपुर एवं गंगा नदी के पूर्वी देशों में मान्य समझा जाने लगा। उसके प्रतिद्वन्दी पंजाब तथा बंगाल में सक्रिय रहे। उसके प्रधान मंत्री हेमू ने अत्यन्त तत्परता पूर्वक उन प्रतिद्वन्दियों से २२ युद्ध किए और उनको परास्त कर सफलता प्राप्त की। सुल्तान इब्राहीम बुरी तरह से पराजित हुआ तथा सिकन्दर को हिमालय की पहाड़ियों तक पीछे हटना पड़ा। मेरठ ग्वालियर, कालपी इटावा तथा सम्भल के अफगान क्षेत्रीय प्रशासकों से शासनसत्ता स्वीकार कराने का श्रेय हेमू को था। यह हेमू का ही साहस था कि अनेक बड़ी बड़ी बाधाओं के होते हुए भी उसने अफगान योद्धाओं के साधन जुटाए, उनकी शक्ति संचित की तथा मुगलों का भारतवर्ष में वापस आना असम्भव सा कर दिया।

१—डा० ईश्वरी प्रसाद-हुमायूँ—पृ० ११३। अधिकतर इतिहासकारों ने इस्लाम शाह की मृत्यु की तारीख ९६१ हिजरी दी है परन्तु डा० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार यह त्रुटिपूर्ण है। अबुल-फजल ९६० हिजरी लिखता है—जिल्द—१—पृ० ११५। देखिए होडीवाला द्वारा रचित—स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री—पृ० ४७७-८।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद-जिल्द—२ पृ० १८४ १९।

भारतवर्ष पर मुगलों का आक्रमण—

दिसम्बर १५५४ ई० में हुमायूं ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए तैयारी की। उसके साथ १५,००० घुड़सवार थे। मोमिन खाँ काबुल का अधिपति बनाया गया। पेशावर में बैरम खाँ कन्धार के अनुभवी सैनिकों के जत्था के सहित उससे मिल गया।[1] पंजाब में राहतास का दुर्ग जो कि अफगान शक्ति का मुख्य केन्द्र था पंजाब के अफगानी प्रशासक तातार खाँ द्वारा खाली कर दिया गया। लाहौर भी बिना अधिक प्रयास के मुगलों के अधिकार में आ गया। तथा अफगानों ने मुगलों को जालन्धर और सरहिन्द पर अधिकार करने का भी अवसर दे दिया। फरवरी सन् १५५५ सरहिन्द तक का सम्पूर्ण भाग मुगलों के हाथ में चला गया। हुमायूं ने द्वितीय रबी तदनुसार २४ फरवरी सन् १५५५ को लाहौर में प्रवेश किया। जनता ने उसका स्वागत किया क्योंकि इस भाग में अफगान अधिक लोकप्रिय नहीं थे। हुमायूं के सेवक जौहर ने अफगानों के संबंध में एक मनोरंजक कहानी जिसे उसने हुमायूं द्वारा उस समय सुनी थी जब उसे पट्टी हैबतपुर का परगना दिया गया का उल्लेख इन शब्दों में किया है —

'जब मैं परगना में पहुँचा मैंने पाया कि अफगान कृषकों में अपनी पत्नियों तथा बच्चों को हिन्दू महाजनों के पास संचित धन में से ऋण लिये दिये गए धन राशि के प्रतिफल में धरोहर रख देने की प्रथा प्रचलित थी। अतएव मैंने सर्वप्रथम कार्य यह किया कि सब अनाज एकत्र कर लिया जो गुप्त कूपों तथा अन्य स्थानों में छिपाया गया था तथा उसको बेचकर महाजनों के ऋणों का भुगतान किया और अफगान कृषकों के परिवारों को मुक्त कराया'।[2]

इस प्रकार एक आफ्ताबची जौहर मालगुजारी एकत्रित करने वाले पद पर पहुँच गया तथा उसने अपनी कार्यपटुता से हुमायूं को सन्तुष्ट किया।

दीपालपुर का युद्ध—

पंजाब में २ हजार अफगान नसीब खाँ तथा नासिर खाँ के नेतृत्व में मुगलों से युद्ध में मोर्चा लेने के लिए दीपालपुर में एकत्रित हुए।[3] हुमायूं ने शाह अबुल माली (एक सैयद जिसको हुमायूं पुत्र कहकर पुकारता था तथा जो तिरमिज का निवासी था) को एक मजबूत सैनिक टुकड़ी के साथ उनका

१—स्मिथ विन्सेंट अकबर पृ० २८—के अनुसार हुमायूं अपने खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए नवम्बर १५५४ ई० में भारत की ओर मुड़ा। देखिए गुलबदन द्वारा हुमायूंनामा अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ० ११, २०।

२—जौहर हुमायूं के मैम्वायर्स—स्टुअर्ट द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद।

३—जौहर के कथनानुसार अफगान सैनिकों की संख्या लगभग १०,००० थी परन्तु बदायूनी के अनुसार २०,००० थी।

मुकाबला करने को भेजा। अफगान पराजित हुए तथा शाह अबुलमाली पीछे हुए धन सहित लाहौर लौट गया।

माछीवारा का युद्ध—

पंजाब की इस दुर्घटना ने दिल्ली में अफगानों के सरदार सिकंदर शाह सूर को सावधान कर दिया। उसने हुमायूं के विरुद्ध ३०,००० अश्वारोहियों की सेना के सहित तातार खां तथा हबीब खां को दिल्ली से रवाना किया। माछीवारा में सतलज नदी के तट पर दोनों सेनाओं ने डेरा डाला। शीतकाल के कारण सैनिकों ने ढेर अग्नि प्रज्ज्वलित की। उन्होंने इस बात को किंचित मात्र भी नहीं सोचा कि शत्रु ऐसे अवसर से लाभ उठा सकते हैं। बैरम खां ने तुरन्त ही परिस्थिति को समझकर जलती हुई अग्नि के प्रकाश में नदी को पार करने का आदेश दिया। वह अब अप्रत्यक्ष रूप से ही अफगानों के खेमों की ओर बढ़ने लगा तथा अग्नि के चारों ओर घेरा लगाए बैठे हुए सैनिकों को तीरों से बेधना आरम्भ कर दिया जिससे वह लोग अस्त-व्यस्त हो गए। अफगानों ने (जो तीर वृष्टि करने के लिए सुप्रसिद्ध थे) अग्नि को बुझाने के स्थान पर, जिसके कारण वे अपने शत्रुओं को नहीं देख सकते थे तथा शत्रु उन्हें भली भांति देख सकते थे उसमें और काष्ठ डाल दिया तथा बैरम खां की सम्पूर्ण सेना ने नदी को पार करके उन पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया और उनकी सैनिक शक्ति को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अफगानों ने इस अवसर पर अपने सभी हाथी सामान तथा बहुत से घोड़े खो दिए।[1]

इस पराजय ने अफगानों के साहस को पंजाब तथा सरहिन्द में तोड़ दिया और वे अव्यवस्थित दशा में इधर उधर बिखर गए। सिकंदर उजबेग आगे बढ़ा परंतु दिल्ली से आए हुए तातार-खां हैबत खां तथा नसीब मुबारकखां व अन्य सेना नायकों के अधीन अफगानों ने उसका सामना किया। इस समय दिल्ली के शासक सिकन्दर सूर को और दिशाओं में भी युद्धों का संचालन करना पड़ा दक्षिण-पूर्व में उसे हेमू से युद्ध करना था तथा पंजाब की सीमा पर उसे हुमायूं के आगमन को रोकना था। अतः सिकन्दर सूर ने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया। एक भाग हेमू और अदली के विरुद्ध संलग्न रहा तथा दूसरी सेना जिसमें ३ ,००० योद्धा थे तातार खां के नेतृत्व में से सरहिन्द का चल पड़ी।[2]

१—फिरिश्ता ब्रिग्स जिल्द २ पृ० १८४ १९०।

२—बदायूनी लिखता है कि जब हुमायूं को मालूम हुआ कि तातार खां काबुली पंजाब में १०,००० अश्वारोहियों के साथ धावा कर चढ़ आया है तो उसने बैरम खां इस्कन्दर खां उज़बक मिर्जा शिकू खां हजारा लाल खां बदख्शी हैदर मुहम्मद अख्तर बेगी मिरक कोलाबी तथा आलिम बर्गी को लाहौर से भेजा।

मच्छीवारा का द्वितीय युद्ध—

अफगानों की इतनी बड़ी सेना के आगे बढ़ने का समाचार पाकर मुगल भयभीत हो गए। हुमायूं अपने को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं जालन्धर वापस चला गया। [1] बैरम खां ने इस प्रकार पीछे हटने तथा सिकन्दर उजबेग के भाग जाने का विरोध किया। उसने मुगल सेनापतियों का सुसंगठित होकर आगे बढ़ने का आदेश दिया। खिज्र खां हाजी बेग तथा सिकन्दर सभी से आज्ञा पालन करने को कहा गया। मुगल सेना ने पुनः एकत्रित होकर नदी को पार किया तथा रात्रि में अफगानों से युद्ध किया। अफगान घबड़ा गए और रणक्षेत्र छोड़कर भागने पर बाध्य हो गए। मुगलों ने सरहिन्द का प्रान्त प्राप्त कर लिया तथा पंजाब उनके लिए सुरक्षित हो गया। हिसार फिरोजा तथा दिल्ली के कुछ संरक्षित राज्य भी मुगलों के अधिकार में आ गए।

सरहिन्द का युद्ध—

सिकन्दर सूर ने एक बार फिर शक्ति संगठित की तथा मुगलों का विरोध करने का निश्चय किया। उसने ८ ० अश्वारोहियों की सेना एकत्रित की तथा मुगलों का जिसकी संख्या ७ या ८ सौ थी स्वयं विरोध करने चल पड़ा। बैरमखां ने हुमायूं के पास उसकी सहायतार्थ स्वयं चले आने के लिए एक अतिआवश्यक संदेश भेजा—अन्यथा पीछे हटना अनिवार्य था। मुगल बादशाह २८ मई १५५५ को सरहिन्द पहुँच गया और मुगल सेना की संख्या बढ़कर जौहर के अनुसार ३ ००० तथा बयाजीद के अनुसार १० ००० हो गई।

दोनों पक्ष अपनी स्थितियों को सुदृढ़ करने में लग गए। डेढ़ मास तक इन लोगों ने तैयारियां कीं। [2] दूसरी शाबान ९६२ हिजरी अर्थात् बृहस्पतिवार २२ जून सन् १५५५ को युद्ध हुआ। अफगान जो अपने मस्त हाथियों पर आश्रित थे "पर्याप्त वीरता तथा साहस के साथ लड़े"। ईरानियों के घोड़े भाग खड़े हुए। मुगल लोग अफगानों के भयानक आक्रमण के समक्ष न टिक सकने पर भागने ही वाले थे कि हुमायूं की युद्ध नीति के परिवर्तन ने परिस्थिति बदल दी। सिकन्दर की सेना तितर बितर हो गई तथा वह स्वयं शिवालिक पर्वत की ओर भाग गया। मुगलों के हाथ अफगानों का बहुत सा सामान

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ०—१४५।

२—अबुलफजल—अकबरनामा—जिल्द १ पृ ६११—लेखक के अनुसार हुमायूं ने अन्तिम निर्णयात्मक युद्ध होने से ४० दिन पहले से चातुर्यमय लड़ाई लड़ी।

आशाओं के विपरीत सिकन्दर उजबेग ने यह सूचित किया कि विरोध की उस समय भी पूर्ण आशंका थी अतएव हुमायूँ को शीघ्र ही दिल्ली के रिक्त सिंहासन पर अधिकार कर लेना चाहिए। मुगल सम्राट शीघ्र ही अपनी सेना को दिल्ली की ओर संचालित करके स्वयं २३ जुलाई १५५५ दिन मंगलवार को दिल्ली पहुँच गया। अबुल फजल के अनुसार यह घटना १ रमजान ९६२ (शनिवार २० जुलाई १५५५) को हुई। कहा जाता है कि हुमायूँ सयाना से चल कर सलीमगढ़ पहुँचा तथा उसी माह की चौथी तारीख को दिल्ली में प्रवेश कर के सिंहासनारूढ़ हुआ।[1]

अबुल फजल के अनुसार अबुल माली पंजाब का प्रशासक नियुक्त हुआ था। परन्तु जौहर कहता है " प्रान्त का शासन उसने अपने हाथ में ले लिया। तथा इस प्रकार सम्राट द्वारा नियुक्त किए गए अधिकारियों को अस्वीकृत कर दिया।[2] हुमायूँ उसका बड़ा आदर करता था अतः उसने इसकी ओर कोई ध्यान न दिया। इसके अतिरिक्त उसको सिकन्दर अफगान से युद्ध करते रहने का उत्तरदायी-पूर्ण कार्यभार तथा दिल्ली एवं लाहौर के बीच यातायात बनाए रखने का कार्य सौंपा गया।

हुमायूँ की मृत्यु—

हुमायूँ की मृत्यु की वास्तविक तिथि के सम्बन्ध में तत्कालीन विद्वानों में बड़ा मतभेद है जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।[3]

लेखक	घटना काल	मृत्यु की तिथि
जौहर	—	११वीं रबी I ९६३ यह केवल स्टुअर्ट के अनुवाद में प्राप्त है। किसी हस्तलिपि में इसका वर्णन नहीं मिलता।
बायजीद	शुक्रवार सायंकाल रबी	९६३ के अन्त में
[illegible]	शुक्रवार रबी उल-अव्वल	सोमवार रबी-उल-अव्वल
अबुलफजल	शुक्रवार ११वीं रबी उल-अव्वल	रविवार १२वीं रबी उल अव्वल
निजामुद्दीन	७वीं रबी-उल अव्वल	१५वीं रबी उल-अव्वल
अल बदाऊनी	७वीं रबी उल-अव्वल	१५वीं रबी उल-अव्वल

१—अबुलफजल अकबरनामा जिल्द १ पृ० ६१४।
२—जौहर हुमायूँ के संस्मरण—पृ० १७१। ~
३—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूँ—पृ० ९६२।

लेखक	घटना काल	मृत्यु की तिथि
महमद मासमार	७वीं रबी उल-अव्वल	११वीं रबी-उल-अव्वल
फिरिश्ता	७वां रबी (सूर्यास्त के समय)	११वीं रबी उल-अव्वल
ममन साहिब	११वीं रबी उल अव्वल (सायंकाल)	११वीं रबी उल-अव्वल
बादशाह नामा	—	रविवार, ११वीं रबी उल अव्वल
मईसुम-मायसिर	शुक्रवार ९वीं रबी-उल अव्वल	रविवार ११वीं रबी-उल अव्वल

सबसे अधिक विश्वस्त लेखकों के अनुसार हुमायूं की मृत्यु की तिथि ११ वीं रबी उल-अव्वल अर्थात् रविवार २६ जनवरी १५५६ होती है तथा घटना का दिन शुक्रवार होता है।[1]

घटना के पूर्व सम्राट की वास्तविक दशा के सम्बन्ध में अकबर नामा में ब्योरे वार विवरण मिलता है। यह सर्व सम्मति से मान्य है कि हुमायूं को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास था। जब अकबर ने पंजाब जाने की आज्ञा प्राप्त की उस समय हुमायूं ने अपने स्वर्ग जाने की बात कही थी।[2]

यद्यपि यह बात मुगल सम्राट के लिए उपयुक्त न थी तथा शाहजादे को चिन्तित कर देने वाली थी विशेषकर उस समय जब कि समस्त मुगल परिवार की महिलाएँ काबुल में ही भारत आने की प्रतीक्षा कर रही थीं फिर भी हुमायूं अपनी भावनाओं को व्यक्त करने से अपने को रोक न सका। वह अक्सर दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्राचीन उद्यानों तथा समाधियों में भ्रमण किया करता था तथा उसका मस्तिष्क सदैव शीघ्र ही परलोक जाने के विचारों से भरा रहता था।

१—अबुल-फजल अकबरनामा पृ० ६५३-६५४-६५५ जिल्द—१ अंग्रेजी में बेवरीज द्वारा अनुवाद—साथ में अब्दुल हमीद का बादशाहनामा जिसका जिक्र—[illegible]-संस्करण पृ० ६१।

२—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० ३८।

'बयाजीद के वर्णन से प्रतीत होता है कि हुमायूं ने इस लोक के बारे में बहुत संकुचित भावना बना ली थी तथा वह जनसमुदाय की कृतघ्नता व दुष्टता से दुखित था। उसने इसका प्रण कर लिया था कि यदि वह अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर सका तो संसार से विरक्त हो जाएगा तथा अपने पुत्र को सब कार्य भार सौंप देगा व स्वयं अपने शेष जीवन के दिनों को धार्मिक तथा विद्वान पुरुषों के मध्य में बिताएगा'।

बेवरिज ने गुलबदन के हुमायूँनामा की अपनी भूमिका[1] में यह वर्णन किया है कि किस प्रकार हुमायूँ की अन्तिम घड़ियाँ मनोरंजक क्रिया कलापों में व्यतीत हुईं। उसके पास उस समय पुराने मित्र चले गए, जो कि उसी समय मक्का से वापस आए थे तथा दोनों हाजी मार्गों का सन्देश लाये थे। भूमि के पहले निवास-स्थान काबुल से आए हुए पत्र पढ़े गए। हुमायूँ शेर मंडल (शेरशाह द्वारा निर्मित भवन) जिसे वह अपने पुस्तकालय के रूप में प्रयोग करता था की छत पर गया था तथा उस दिन उसने नीचे एक त्रित जनता को अपना दर्शन दिया था तदुपरान्त बेवरिज के कथनानुसार हुमायूँ सम्भवत तुर्की अतिथि को विदाई देने व स्वागत के लिए किसी शुभ घड़ी को निश्चित करने व मंगल नक्षत्र के उदय होने को देखने के लिए व्यस्त रहा।

हुमायूँ की प्राण-घातक घटना की तिथि शुक्रवार का समर्थन अबुल फज़ल द्वारा तथा तुर्की ऐडमिरल कातिब-रूमी सीदी अली रईस के प्रामाणिक वर्णन से होता है। क्योंकि वह उस समय दिल्ली में ही था यद्यपि उसने प्रकट रूप से यह नहीं कहा फिर भी सम्भवत वह अन्तिम दिवस के दरबार में उपस्थित था। उसके शब्द यह हैं[2] —

नौ सेना अध्यक्ष—एडमिरल की प्रस्थान करने की सब तैयारियाँ हो चुकी थीं हुमायूँ ने शुक्रवार की संध्या को दरबार किया था। अपने विश्राम तथा विलास कक्ष को छोड़ते ही जब वह सीढ़ी के नीचे उतर रहा था उस समय मुअज्जन ने अज़ान दी। उसकी आदत थी कि जब कभी वह अज़ान सुनता था परमात्मा के सामने कृतज्ञता प्रकट करने के लिए घुटने टेक देता था। ऐसा ही उसने इस समय भी किया परन्तु दुर्भाग्य से कई सीढ़ी नीचे गिर पड़ा तथा उसके शीश तथा भुजा में पर्याप्त चोट पहुँची। वास्तव में यह किंवदन्ती सत्य ही है कि भाग्य का लिखा हो कर ही रहेगा। हुमायूँ की इस सहसा दुर्घटना से ही राजमहल में खलबली मच गई, परन्तु दो दिवस तक यह रहस्य (दुर्घटना का) गुप्त रखा गया। जनता में यह घोषित किया गया था कि सम्राट स्वस्थ है तथा निर्धनों को भिक्षा दान दिया गया। तीसरे दिन अर्थात सोमवार को उसकी (हुमायूँ) अपने आघातों के कारण मृत्यु हो गई।

बेवरिज ने अबुल फज़ल के वर्णन पर टीका करते हुए चगताई खाँ का तुर्की एडमिरल (नौ सेना नायक) लिखा है क्योंकि हुमायूँ अथवा अकबर के

१—गुलबदन हुमायूँ नामा बेवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका पृ १०।
२—मूल के वैम्बी का अनुवाद १८ पृ० ५२।

समय में कोई भी मुगल सेनापति इस नाम[१] का नहीं हुआ था। बवरिज के अनुसार सीदी अली ने सम्भवतः बन्नाई खाँ नामक उपनाम अपनी 'अमर्दई' भाषा में पारंगत होने के कारण पाया होगा।[२] वह उसी समय गुजरात से आया था तथा शुक्रवार को दरबार में उपस्थित हुआ था क्योंकि हुमायूं इसी दिन आम स्वागत सदा भेंट करता था।[३] इन प्रमाणों के बाद इतना निश्चय स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं की मृत्यु, दुर्घटना के दो दिन उपरान्त अर्थात् रविवार २६ जनवरी सन् १५५६ ई० को हुई। दुर्घटना की तिथि भी २४ जनवरी निश्चित हो चुकी है। बवरिज के शब्दों में "जब तक ज्योतिष द्वारा यह सिद्ध न कर लिया जाय कि शुक्र का उदय शुक्रवार २४ जनवरी १५५६ को नहीं हुआ तब तक सभी समय में हम इसी दिवस को दुर्घटना का दिवस मान सकते हैं।" इस तिथि की पुष्टि पुनः सीदी अली के इस कथन से भी होती है कि उसने लाहौर के लिए रवी उस्सानी के मध्य में बृहस्पतिवार को प्रस्थान किया। उसने मृत्यु के बाद तक प्रस्थान न किया तथा बृहस्पतिवार १७ वीं रबि उस्सानी को पड़ी होगी। बैस्नोग के अनुवाद के अनुसार दिवस से विपरीत एर्डमेन्स को लाहौर में बृहस्पतिवार को आगमन हुआ था परन्तु यह स्पष्ट रूप से असंगत है।[४]

दुर्घटना का स्थान तथा गिरने की विधि—

यह एक सर्वमान्य बात थी कि हुमायूं की मृत्यु शेरशाह द्वारा निर्मित भवन में हुई। सैयद अहमद ने अपनी 'असार सनादीद' में इस इमारत का वर्णन किया है।[५] 'यह लाल पत्थर की एक अष्टकोण इमारत है तथा इसमें दो मंजिल हैं। परन्तु अब इसका प्रथम भाग ठोस है अर्थात् उसमें कमरे नहीं हैं। इसमें अन्दरूनी जीने हैं जो दूसरी मंजिल को जाते हैं जो एक अष्टकोण कमरा है जिसमें ताक बने हुए हैं जिन्हें पुस्तकें रखने के प्रयास में लाया जाता था। इस स्थान से दो प्रथम अलग जीने छत तक जाते हैं जहाँ आठ खम्भों पर आधारित एक छोटी गुम्बी बनी है। इनमें से पथ-प्रदर्शकों द्वारा एक जीना वह बताया जाता है जिससे हुमायूं गिरा था। जीने में एक घुमाव है तथा सीढ़ियां ९ इंच ऊंचे ढालू एवं संकरे कड़े पत्थर (ग्रेनाइट) के बने हुए हैं। इतना समझ लेना चाहिए कि जीने छत ही से आरम्भ होते हैं अतः हुमायूं

१—सीदी अली रईस।
२—बैस्नोग-तुर्की प्रकाशन की भूमिका पृ० १७।
३—अबुल फजल अकबरनामा—अध्याय —६२ बवरीज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद पृ० सं० ६५ ३५। जिल्द —१।
४—अबुल फजल अकबरनामा—जिल्द—१ पृ ६५ ५५।
५—गौरिन दी तासी का अनुवाद भी देखिए।

उससे पृथक गिरने के बजाए छत ही के बीच गिरा था। निश्चित ही वह मुंडेर पर नहीं गिरा। रोबर्ट के अनुसार जीने छतरी के दोनों तरफ उस स्थान पर आते थे जो छतरी तथा मुंडेर के मध्य पड़ता था।

वास्तव में इस दुर्घटना के समय क्या हुआ यह नहीं जाना जा सकता परन्तु इसका सबसे अधिक विस्तृत वर्णन अकबरनामा के रचयिता के इन शब्दों में पाया जाता है "दिन के अन्त में वह पुस्तकालय की छत पर आया जो हाल में ही पुस्तकों से भर दिया गया था तथा वहाँ पर उपस्थित दरबारियों का कोर्निश अर्थात् पूजा व आशीर्वाद देने का मुख्य संदेश देने के पश्चात् पर्याप्त समय तक वह धार्मिक (स्थान) मक्का गुजरात तथा काबुल के सम्बन्ध में प्रश्न करता रहा।

"सन्ध्या के आरम्भ में उसने नीचे आने की इच्छा प्रकट की तथा जब वह दूसरे जीने पर था एक अज़ान पढ़ने वाले (मुअज़्ज़िन) ने जिसका नाम मिसकिन (दुष्ट) था नमाज़ के लिए असमय ही अज़ान दी। सम्राट ने उस आवाज के प्रति आदर भाव दिखाने के हेतु जहाँ वह था वहीं बैठ जाना चाहा। जीने की सीढ़ियाँ (दरजात) तेज थीं तथा पत्थर फिसलने वाले (नवकिन्दा) थे उसका पैर बैठते समय पोशाक के हिस्से में (दार दामन एन्जीस्तिन) फँस गया और उसका डंडा फिसल गया। उसका पैर लड़खड़ा गया तथा वह सिर के बल गिर पड़ा। उसकी दाहिनी कनपटी पर कड़ा आघात पहुँचा इसलिए दाहिने कान के मार्ग से खून के बिन्दु गिर पड़े। चूँकि उसका हृदय रहस्या से परिचित था और इसलिए कि वह संसार के लिए सुख प्रदान कर सके तथा सांसारिक आवश्यकीय प्रबन्ध कर सके।"[1] इस कारण उसने तुरन्त ही नश्वर धाम कुर्सी के हाथ अपनी कुशलता का एक शुभ संदेश भाग्य की उज्ज्वल ज्वलन्त रेखाओं को केन्द्रित करने वाले के पास भेजा।

मृत्यु का गोपन —

यद्यपि हुमायूँ की मृत्यु आकस्मिक थी फिर भी सम्बन्धित व्यक्ति हुमायूँ को पर्याप्त समय से उसका पूर्वाभास था। परन्तु कर्मचारियों को एक आकस्मिक धक्का लगा था भय का और अकबर की अनुपस्थिति एवं मुगल महिलाओं के काबुल में होने के कारण महल में कोलाहल मच गया। विषाद को घटाने के हेतु दुर्घटना का समाचार १७ दिन तक गुप्त रखा गया। जिस समय हुमायूँ निश्चेष्ट अवस्था में पड़ा था तथा यह निश्चित हो गया कि उसका अन्त निकट है शेख नज़र कुली अथवा जोली द्वारा एक फर्मान कालानौर में अकबर के पास

१—अबुल फज़ल अकबरनामा पृ० ६२२ ख० अध्याय ५९
पाद-टिप्पणी बिबलियोथ—पृ० १५३।

भेजा गया जिसमें यह सूचित किया गया कि सम्राट् हुमायूँ एक दुर्घटना का शिकार हो गया था परन्तु वह स्वस्थ हो रहा था तथा अब चिन्ता की कोई बात नहीं थी। फर्मान इस प्रकार था—[1]

"उस दिन मैं अपनी मस्जिद की छत से उतरा। बांग जीने पर (या सीढ़ियों पर) हो रही थी कि मैंने अजान सुनी तथा आदर की भावना से बैठ गया। जब अजान समाप्त हुई मैं उठा। परन्तु मेरे बेंत की नोक मेरे कोट (जामा) की निचले भाग में फँस गई। मैं फिसल गया तथा गिर पड़ा। जीने के कोने (गोशा) से मेरे कान का निचला भाग रगड़ा गया तथा लहू के कई कतरे मेरे कान के निचले भाग (बंगोशा) से निकल पड़े। कुछ समय तक मैं मूर्छित रहा। जब मुझे चेतना आई तो मैं दौलत खाना (शाही निवास स्थान) में चला गया। अब सब ठीक है मेरे लिए चिन्तित मत होना।

इसके उपरान्त तुरन्त ही तीन पत्र प्राणघातक दुर्घटना तथा उसकी मृत्यु की सूचना देने के लिए इस क्रम से भेजे गए।

१—एक द्रुतगामी पत्रवाहक तैरस खां को सम्राट् के जीने से गिरने की दुर्घटना की सूचना देने के लिए भेजा गया। उस समय मुगल सेना हरियाना में पड़ी हुई थी।

२—दूसरी सूचना नज्र चूली के हाथ कलानौर भेजी गई।

३—तीसरी सूचना बाद में भेजी गई जिसमें हुमायूँ की मृत्यु का दुखद समाचार भेजा गया था।

जब दुर्घटना की सूचना दी जा रही थी तब तक गुप्त रखी गई थी तब मृत्यु के समाचार को, जैसा कि अकबरनामा के रचयिता के निम्नांकित कथन से स्पष्ट होगा, जनता से १७ दिन तक गुप्त रखा जाना अनिवार्य था।

"समयज्ञों ने जो इस घटना के समय उपस्थित थे इस भयानक घटना को गुप्त रखने का ([illegible]) प्रयास किया तथा ऐसी हृदय-विदारक दुर्घटना की मसनद के उत्तराधिकारी को सूचना भेजने और मुख्य-मुख्य पदाधिकारियों को जो राज्य के विभिन्न भागों में थे एकत्रित करने का प्रबन्ध किया। सम्बन्धित बुद्धिमत्ता के साथ इस प्रकार घातक घटना को इन लोगों ने १७ दिन तक जनता से गुप्त रखा।"[2]

१—डा० ईश्वरी प्रसाद : हुमायूँ का यह अन्तिम फर्मान एक राजनैतिक चाल थी, जिसका हुमायूँ के समीप कूटनीतिज्ञों ने उसकी रुग्ण-दशा के निकट रखा था व उसका आशय जनता को झूठा विश्वास दिलाना था कि बादशाह के जीवन का कोई भय नहीं था। परन्तु वास्तव में हुमायूँ की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी और वह रविवार २६ जनवरी १५५६ को सायंकाल के समय घातक शिकार बना था। पृ० २६८-६९।

२—अबुल फज़ल : अकबरनामा पृ० ६५८। जिल्द—१

हुमायूँ की मृत्यु ने भारत के इतिहास में निश्चय ही एक संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न कर दी। मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना प्रायः अस्थाई तथा अदृढ़ थी। शासन की बागडोर संभालने के लिए अकबर अल्पवयस्क ही था। बैरम खां को अपनी प्रभुता विस्तार का अवसर भविष्य में मिलना था। अफगान अशान्त थे तथा तब तक अफगान सेना को नेता हेमू आगरा तथा दिल्ली के नगरों[1] के द्वार पर रणभेरी बजा रहा था।

जनता को और सान्त्वना देने के लिए एक व्यक्ति को हुमायू की भांति वस्त्र पहनाये गए। वह जनता के समक्ष लाया गया। एक तुर्की एडमिरल सीदी अली रईस ने वेष परिवर्तन कृति में सक्रिय सहयोग दिया तथा रोगी के स्वस्थ होने की असत्य सूचना के साथ लाहौर भेज दिया गया।[2] अबुल फज़ल के शब्दों में —

जब दुखद घटना की सूचना प्राप्त हुई तो जैसा कि ऐसे संकट काल में स्वाभाविक ही है बड़ी विपदा तथा उपद्रव खड़े हो गए। अधिकारियों ने जनता के हृदयों को सान्त्वना देने व उनमें मुगल सत्ता के प्रति विश्वास बनाये रखने का प्रयास किया और ऐसे दुखद काल में मित्र व शत्रु के लिए जो आवश्यक था किया। उन्होंने भरसक इस दुखद अभाव को पूरा करने तथा टूटी हुई राज शृंखला में जोड़ लगाने का प्रयत्न किया'।[3]

हेमू तथा हुमायू की मृत्यु—

एक युक्ति संगत प्रश्न यह उठता है कि प्राण-लेवा दुर्घटना तथा हुमायू की मृत्यु के समय हेमू कहां था तथा उसके सक्रिय होने का हुमायू की मृत्यु के पश्चात् कामकाज पर क्या प्रभाव पड़ा? अनेक इतिहासकारों के अनुसार हेमू को आदिली द्वारा हुमायू का जो पुनः मुगल साम्राज्य स्थापित करने आया था विरोध करने की आज्ञा मिली थी। जिस समय सिकन्दर सूर उत्तर-पूर्व से मुगलों को इस प्रकार आतंकित किए हुए था कि मृत्यु के समय में भी उसका उत्तराधिकारी अकबर तथा बैरम खां राजधानी से दूर सिकन्दर के विरुद्ध डेरा डाले हुए थे उस समय हेमू टिडवीरस्म की भांति अपनी वृहद सेना तथा पर्वत सरीखे ऊँचे व भड़ाकू हाथियों के संग्रह करने में संलग्न था। यद्यपि उसी

१—विन्सेन्ट स्मिथ अकबर पृ २९।
" जब वह (हुमायू) जनवरी १५५६ ई० में प्राण-लेवा दुर्घटना में ग्रस्त हुआ तो हेमू आदिली की ओर से रणक्षेत्र में उपस्थित था उसका ध्येय अकबर को अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त करने से रोकने का था।'
२—वही पृ १।
३—अबुल फज़्ल अकबरनामा पृ० ६५।

समकालीन इतिहासों में हेमू की युद्ध की तैयारी का बड़ा विशद बखान है परन्तु लगभग सभी इस पर चुप हैं कि विगत दुर्दशा के समय वह कहाँ था व क्या कर रहा था।

अबुल फजल द्वारा किये गए निम्नलिखित बयान से संकट-कालीन परिस्थिति पर प्रकाश पड़ता है —

"सभी प्रकार के सेवकगण तथा परस्पर बधाई देकर राजकीय कर्मचारी जो दिल्ली में एकत्रित हुए थे अलग अलग स्थानों को व्यथित हृदयों को सान्त्वना देने के लिए तुरन्त चल दिए। तार्दी बेग ने जो उस समय उनकी राय के अनुसार नगर की परिस्थिति सम्भालने के लिए दिल्ली में ही था गुलाम अली माहबूस्त तथा अन्य विश्वसनीय कर्मचारियों के हाथ समाचार संरक्षक न्यायालय भेज तथा स्वामि भक्ति एवं आज्ञाकारिता की घोषणा की। कामरान का पुत्र अबुल कासिम भी यशोगान अर्पित करने के लिए भेजा"।[1]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि अधिकारीगण का हृदय आंदोलित था तथा वह शीघ्रता से पुनः स्थापित मुगल साम्राज्य को आपत्ति में समझते थे। यह सोचना कठिन है कि वे पूर्णतः यह भूले हुए थे कि हेमू क्या कर रहा था? कई वर्णनों से यह भी प्रमाणित होता है कि अन्य भी दिल्ली के रिक्त सिंहासन को अफगानों के लिए पुनः प्राप्त करने को चिन्तित था। सिकन्दर पहले से ही शिवालिक की पहाड़ियों में परेशान था तथा हेमू के लिए ग्वालियर अलवर, कालपी, बयाना और आगरा के क्षेत्र खुले पड़े थे। इन स्थानों से सहायता प्राप्त किए बिना हेमू अपनी विशाल सेना के साथ कभी दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता था। आगरा बयाना तथा कालपी में दुर्भिक्ष का प्रकोप था तथा हेमू ने अनवरत रूप से सेना को संगठित करने तथा सैनिकों हाथियों और उनके घोड़ों को खिलाने का कार्य जारी रखा। अलवर में हाजी खाँ तथा सम्भल में शादी खाँ जिन्होंने दिल्ली के युद्ध में भाग लिया हेमू के साथ कार्य कर रहे थे।

हुमायूँ की मृत्यु दिल्ली पर अधिकार तथा हेमू के सिंहासनारूढ़ होने का सुन्दर वर्णन समकालीन कवि भगत मुदित ने "अनन्य रसिक माल" में जो राधावल्लभी सम्प्रदाय का ग्रन्थ है इस प्रकार किया है —[2]

हुमायूँ साहु जब गढ़ गिर मरौ—हेमू राज बहुक दिन करौ।
बहुरि अकबर को भयो राज—हेमू मारा बैठो गाज।

1—अबुल फजल अकबरनामा पृ ६२९।
2—भगवत मुदित कृत अनन्य रसिक माल १५० वर्ष पहले रचित हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी में सुरक्षित है। प्रकरण नवलदास की कथा—पृ० ५४ ८७ तक।

इसका अर्थ यह हुआ कि जब हुमायूं की अपने महल के जीने से गिर जाने से मृत्यु हो गई तो हेमू ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा कुछ समय तक शासन किया। यह विभिन्न वर्णन हेमू के सम्बन्ध में न तो एक मत ही हैं और न विशद रूप से लिखे गए हैं परन्तु इतना तो विश्वास करना कठिन है कि एक माह में ही हेमू ने दिल्ली पर इतना भीषण आक्रमण करने के लिए इतनी विशाल सेना एकत्रित कर ली। वरन् यह सम्भव है कि जिस समय हुमायूं के साथ यह दुर्घटना घटी हेमू अपनी अपार धनराशि पूर्ण रूपेण तैयार तोपों तथा युद्धातुर हाथियों सहित आगरा के समीप ही था।[1] इससे दिल्ली में छाये आतंक का कारण स्पष्ट हो जाता है। दुर्घटना के पश्चात तुरन्त ही हेमू चुनार की ओर बढ़ गया तथा आगामी कुछ ही मासों में मुगलों से टक्कर लेने के लिए सशक्त सेना तैयार कर ली। इस परिणाम की पुष्टि हुमायूं के शव-संस्कार सम्बन्धित विभिन्न वर्णनों से होती है।

देर से किया गया अन्तिम संस्कार—

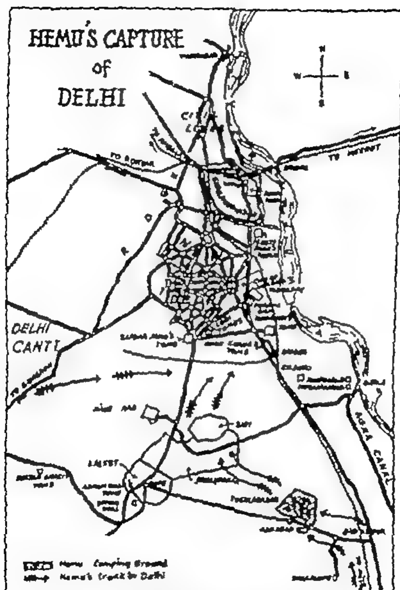
मुगल सम्राट की मृत्यु को गुप्त रखने के लिए किए गए उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त हुमायूं के शव को दिल्ली में दफनाने के सम्बन्ध में असफलता एक बड़ा रहस्य बना है।[2] बाकी नहावन्दी की मासिर रहीमी के अनुसार जब हेमू ने तारदी बेग को परास्त करके नगर पर अधिकार कर लिया तो हुमायूं के शव को दिल्ली से सरहिन्द ले जाया गया।[3]

बनर्जी द्वारा 'हुमायूं बादशाह' नामक पुस्तक में यह कहा गया है कि हुमायूं का शव कब्र से खोदकर सरहिन्द ले जाया गया इस डर से कि हेमू उसे खुदवा देगा बिल्कुल निराधार है। यदि शव गड़ा हुआ होता तो हेमू द्वारा उसकी दुर्गति होने की कोई सम्भावना न थी। सम्भवतः शव कफन (शव-पेटी) में ही सुरक्षित था। मकबरा न बनने के कारण तथा राजनैतिक असम्पन्नता से उसे दफनाया न जा सका था। सरहिन्द ले जाने में यह तात्पर्य था कि यदि लौटकर दिल्ली न आ सकें तो शव को कैसे बचाते। संकटकालीन परिस्थिति का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन इसी से हो जाता है। खोए हुए सिंहासन को प्राप्त करके पुनः विजय में पड़ने के कारण दिल्ली शीघ्र ही लौटने का मुगलों के लिए स्वप्न ही था।

१—डा० आशीर्वादि लाल मुगल साम्राज्य पृ० सं० ११९

२—अबुल-फजल अकबरनामा पृ० ६४ ६६५ जिल्द १ अध्याय १२।

३—मुल्ला-अब्दुल-बाकी-नहावन्दी मआसिर-ए-रहीमी —अब्दुर-रहमान खान-खाना के संस्मरण बिबलियोथिका इंडिका अरबी तथा फारसी ग्रन्थमाला। शम्सुल उलेमा मुहम्मद हिदायत हुसैन द्वारा संपादित। पृ० सं०—६२९ जिल्द १।


HEMU'S CAPTURE
of
DELHI
DELHI
CANTT
AGRA CANAL
Hemu's track to Delhi

अध्याय—६

दिल्ली पर आक्रमण तथा सिंहासनारोहण

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात तुरन्त ही मुगल शिविर में आतंक छा गया। शुक्रवार रबी उस सानी २ वीं हिजरी ९६३ तदनुसार १४.२.१५५६ को कालानौर[1] में अकबर को सम्राट घोषित कर दिया गया। यह घोषणा ११ फरवरी ही को कर दी गई थी।[2] बैरम खाँ ने संरक्षक का कार्य किया तथा उसने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि अनमनस्क तथा अवज्ञा करनेवाले मुगल सेनापति अकबर ही के साथ रहें। कहा जाता है इन प्रमुख सेनापतियों में से शाह-अबुल-मआली ने राज तिलक के अवसर पर किए जाने वाले दरबार में तुरन्त ही सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। यह समारोह सिंहासनारूढ़ होने के तीसरे दिन मनाया जाने वाला था। मुगल इटावा आगरा तथा संभल से एक-एक करके निकाले जा रहे थे। हेमू की सेना बढ़ती चली आ रही थी। नियामतउल्ला इतिहासकार के कथनानुसार मुगल सैनिकों के एक दल ने जिसने सिकन्दर खाँ उजबक तथा कयाकू(?) खाँ गंग के नेतृत्व में आगरा पर अधिकार पा चुके थे अपने को हेमू की सेना के विरुद्ध असमर्थ पाकर दिल्ली वापिस भाग कर शरण ली। यहाँ उन्होंने पुनः तार्दी बेग खाँ के साथ आकर अपने को संगठित कर लिया।

अबुल फजल के अनुसार भी इन प्रान्तों में नियुक्त किए गए मुगल अधिकारी दिल्ली में एकत्रित हुए। तार्दी बेग खाँ ने इन विभिन्न टुकड़ियों को संगठित किया तथा युद्ध की तैयारियाँ कीं। उसने प्रत्येक मनुष्य को ऐसी आशा से प्रोत्साहित किया कि उनकी हिम्मत बढ़ गई तथा अविश्वास भरे हृदयों को शान्ति मिली। अनेक उत्साही तथा वीर मनुष्य विभिन्न जिलों से वहाँ आ गए परन्तु कुछ विद्रोही अफगानों को शान्त करने में लगे रहने के कारण अली कुली खाँ शैबानी दिल्ली में अन्य शाही सेवकों से आकर न मिल सके।[3]

१—कालानौर गुरदासपुर नगर से १५ मील पश्चिम की ओर पूर्वी पंजाब में स्थित है। इसमें ३००० निवासी रहते हैं। ईंटों का एक साधारण पक्का चबूतरा जिसकी लम्बाई १८ फीट, ऊँचाई ३ फुट है उस स्थान का स्मारक है जहाँ अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ था।

२—अबुलफजल अकबरनामा जिल्द—१ पृ० ६२८।

३—अबुलफजल अकबरनामा पृ० ४६। जिल्द—२।

सम्भल का शादी खाँ—

जिस समय कि कालानौर में अकबर के राज्य तिलक का कार्य क्रम चल रहा था और दिल्ली में आतंक छाया हुआ था सम्भल[1] के शादी खाँ ने युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दी एवं दिल्ली की ओर कूच कर दिया। अकबर ने सिंहासनारूढ़ होने वाले दिवस से ही 'खान जमन' की उपाधि प्राप्त करने वाले अली कुली खाँ को अरली[2] के एक अमीर शादी खाँ अफगान के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सम्भल की ओर भेजा। बदाऊनी के अनुसार जब कि खान जमन (अली कुली खाँ) अफगानों का सामना करने की तैयारियाँ करने में व्यस्त था उसी समय दिल्ली आगरा तथा इटावा से यह सूचना मिली कि हेमू बड़ी शक्ति शाली सेना हाथी तथा अरली से प्राप्त अपार धन राशि को लेकर मुगल आधीन भारत की सीमा पर स्थित सेना को हराता हुआ युद्ध करने की निमित्त से दिल्ली के समीप आ पहुँचा था। तब आगरा से सिकन्दर खाँ उजबेग इटावा से कया खाँ कास्मी से अब्दुल्ला खाँ उजबेग बियाना से हैदर मोहम्मद खाँ तथा सरहदी क्षेत्रों से अन्य सेनापति दिल्ली आ पहुँचे और तारदी बेग खाँ से मिल गए।[3] जिस समय यह सब जगहें हेमू द्वारा विजित की जा रही थी अली कुली खाँ के सिपाही शादी खां से जूझ रहे थे। उसको भी पीछे हटना पड़ा परन्तु यमुना के एक ही किनारे पर होने पर भी वह उनके तारदी बेग खाँ तथा अन्य मुगल सैनिकों के साथ हेमू का विरोध करने के ध्येय से साथ मिल न सका।

अबुल फजल ने निम्नांकित पंक्तियों में खान जमन द्वारा शादी खाँ तथा मुबारिज खाँ के प्रमुख अधिकारियों के साथ जिनके अधिकार में सम्भल सरकार के कई परगने थे युद्ध का वर्णन किया है—

अली कुली खाँ उसको (शादी खाँ को) कुचल डालने के लिए आगे बढ़ा। अपने से पूर्व ही उसने अपने कई अन्य अधिकारियों को भेज दिया था जैसे कि महाबत खाँ लतीफ खाँ तथा ग्यासुद्दीन जिससे कि वह रहाब नदी[4]

१—आधुनिक मुरादाबाद जिले में।

२—अलबदाऊनी मुन्तखाबात-उत-तवारीख—पृ ५. हुमायूँ के द्वितीय आक्रमण के समय भारत वर्ष का नाम मात्र का बादशाह।

३—अलबदाऊनी मुन्तखाबा त-उत्-तवारीख—पृ ५।

४—देखिए अर्सकिन बाबर के संस्मरण का अंग्रेजी अनुवाद सम्भवतः बाबर के अभिनगत संस्मरण में वर्णित 'रहाप' से तात्पर्य है। तुर्की में 'रहाप' लिखा गया है। बम्बई से प्रकाशित फारसी संस्करण में भी यही है। उसमें इसके स्थान पर 'राहुत' है। जैसा कि अर्सकिन ने सुझाया है यह रापती का नाम नहीं हो सकता यह तो बाह्य रूप से राम गंगा प्रतीत होती है। देखिए इलियट जिल्द १—पृ ४९।

को पार करके उसके आने की प्रतीक्षा करे। साहस के दम की मदिरा ने इस सेना को सतर्कता तथा इरादों से जो कि बुद्धिमत्ता की प्रथम अवस्था है रोक दिया। गाज़ी खाँ ने यकायक उन पर आक्रमण कर दिया तथा उन्हें पूर्णतया परास्त कर दिया। यह अयोग्य मुगल सिपाही बगैर किसी युद्ध नीति को अपनाए हुए मद और धृष्टता तथा साहस को समुचित रखने के स्थान पर उसे खो बैठे। लतीफ़ खाँ तथा कुछ और सैनिक डूब गए। इस दुर्घटना की सूचना पाते ही अली कुली खाँ अपनी सेना को लेकर, जिसमें मेहदी कासिम खाँ बाबा सईद किबचाक तथा मुहम्मद अमीन दिवाना थे गाज़ी खाँ पर आक्रमण करने चल पड़े।[1] परन्तु इसके पूर्व ही कि वह नदी पार कर सके उसको ज्ञात हुआ कि हेमू एक बहुत बड़ी सेना को लेकर दिल्ली के पास आ गया था तथा मुगल अत्यधिक संकट में थे। उसने (अली कुली खाँ ने) वहाँ से पीछे चलने का निश्चय किया परन्तु दिल्ली में सैनिक कार्यवाही इतनी तेज़ी से हुई तथा मुठभेड़ इतनी आकस्मिक हुई कि वह तारदी बेग से मिल न सका। अबुल फज़ल के अनुसार उसका विचार झगड़े से बचकर अथवा निश्चिन्त होकर दिल्ली जाने का था। परन्तु इस घटना के विस्तृत वर्णन को देखने से मालूम होता है कि न तो वह पूरे उत्साह के साथ गाज़ी खाँ से युद्ध करने की तैयारी ही में था और न उसे इस बात की चिन्ता थी कि तारदी बेग खाँ को सहायता पहुँचाये। अकबर नामा के रचयिता ने स्वयं भी यह लिखा है —

'उसके (अली कुली खाँ) आने के पूर्व ही दिल्ली के अधिकारी एक बहुत बड़ी लड़ाई लड़ चुके व हार चुके थे और दिल्ली हेमू के हाथों में आ चुकी थी और इस प्रकार उसे (हेमू को) वह सब साधन प्राप्त थे जिससे कि उसका गर्व तथा उद्दण्डता बढ़े।'[2]

हुमायूँ अबुल माली का बड़ा सम्मान करता था परन्तु अपने निजी विचार तथा अविवेक के कारण उसको हिसार फिरोजा भेज दिया गया था तथा अकबर को पंजाब का प्रशासक नियुक्त किया गया था जिस समय अकबर तथा उसके शिक्षक व संरक्षक सिकन्दर सूर से मुकाबला करने सरहिन्द की ओर बढ़े उस समय माली खाँ के बहुत से अधिकारियों ने उसे छोड़ दिया तथा अकबर से आ मिले। इस प्रकार परिस्थिति बदल जाने से अबुल माली बड़ा व्यग्र तथा किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ। सिकन्दर अब भी स्वतंत्र रूप से विचर रहा था और अपनी सभापति को ऐसा कोई अवसर न मिल सका कि वह उसे दबा

1—अबुल फजल अकबरनामा—पृ० ४६।
2—अबुल फजल अकबरनामा—पृ ४६—जिल्द—२

सकें।[1] खान खाना, अली कुली खाँ के सिवा कालपी का निरीक्षण करता रहा और अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के उपरान्त उसे अफगानों से युद्ध करने को नियुक्त किया। उद्दण्ड एवं गर्वीले सेनापति ने अपनी निन्दा को सहन कर लिया। परन्तु फिर कृत्रिम उत्साह से अपना कार्य करता रहा। हुमायूं की मृत्यु के पूर्व भी जब कि तारदी बेग को दिल्ली का गवर्नर बनाया गया था सम्राट द्वारा अबुल माली को हटाने का आदेश दिया गया था क्योंकि वह अनुचित कार्य कर रहा था[2] मृत्यु के पश्चात बैरम खाँ तथा अली कुली खाँ अधिकार प्राप्ति की होड़ में परस्पर प्रतिद्वन्दी बने रहे।

दिल्ली पर अधिकार –

जब कि शादी खाँ विजय पूर्वक दिल्ली की तरफ बढ़ रहा था हेमू भी दिल्ली पर झपटा और तुगलकाबाद[3] के पास आकर अपना डेरा डाल दिया।

अबुल फजल के तत्कालीन घटनाओं के विस्तृत वर्णन के अनुसार मुबारिज खाँ के विरोधियों के ऊपर इस दुष्ट (हेमू) की सर्वनाश की ओर पतनोन्मुख विजयों ने उसे कुत्सित भावनाओं के कुचक्र में डाल दिया और जब 'जहाँबानी जन्नत आशियानी की दुखद मृत्यु वाली अवश्यम्भावी घटना की सूचना प्रान्तों में पहुँची तो उसने (हेमू ने) अपनी अदूरदर्शिता के कारण दिल्ली में छाए हुए आतंक से लाभ उठा करके उसी समय सम्राट की शक्तिमान फौज से जिसका कि रक्षक उस समय भगवान ही था युद्ध करने का साहस किया।" निजामतुल्ला ने भी कहा है कि जिस समय अदली को हुमायूं की मृत्यु की सूचना मिली उसने (अदली ने) हेमू को अकबर को परास्त करने के लिए भेजा।[4]

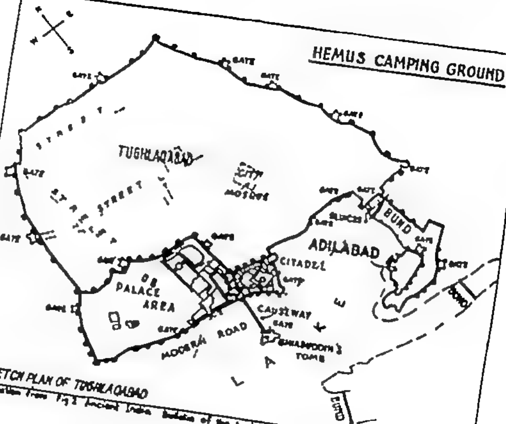
इटावा काल्पी तथा आगरा होकर हेमू दिल्ली की ओर बढ़ा। आगरा में उसका विरोधी सिकन्दर खाँ उजबेग दिल्ली की ओर वापस भाग पड़ा। हेमू ने शादी खाँ की विजय का हाल जानकर आगरा का घेरा डाल दिया और

१—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं १२० १२८ अकबरनामा पृ० ६६२ जिल्द—१ अबुल माली का अन्त बड़ा दुखद हुआ। ११ मई १५६४ ई को काबुल के मिर्जा हाकिम की आज्ञा से उसे प्राण दंड दिया गया।

—डा० ईश्वरी प्रसाद हुमायूं पृ० १६८।

३—तुगलकाबाद यह दिल्ली से १२ मील दूर मेहरौली-कुतुबपुर मार्ग पर स्थित है। इसकी नींव सन् १३२१ ई में गयासुद्दीन तुगलक ने अपनी राजधानी के लिए डाली थी। यह १३२२ ई० में बनकर तैयार हो गया था तथा १३२७ ई में उसके बेटे मुहम्मद बिन तुगलक की आज्ञा से खाली कर दिया गया था।

४—निजामतउल्ला मखजन ए अफगाना डार्न द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।



SKETCH PLAN OF TUGHLAQABAD

Adaptation from Fig 2 Ancient India Bulletin of the Archaeological Survey of India Number 1 Jan 1946



उसे अपने अधिकार में करके दिल्ली की ओर कूच किया।[1] नियामतउल्ला ने यह भी लिखा है कि हेमू ने सौगन्ध खाई थी कि यदि वह दिल्ली को विजित कर सकेगा तो इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेगा परन्तु यह उसके भाग्य में लिखा न था। उसने अपने प्रण को पूरा न किया और सदैव युद्ध में रहा।[2] परन्तु उस समय के किसी भी अन्य इतिहासकार ने इसका उल्लेख नहीं किया है। हेमू के पिता की धार्मिक प्रवृत्तियों तथा दृढ़ मनस्व को देखते हुए इस लांछन पर विश्वास करना और भी कठिन हो जाता है।

यह भी कहा जाता है कि उसने (हेमू ने) अफगानों के प्रति बड़ा गर्वित व्यवहार किया। सेना के अधिकांश भाग को हेमू भोज पर आमन्त्रित किया करता था तथा स्वयं एक ऊँचे सिंहासन पर बैठता था जहाँ कि किसी का हाथ भी नहीं पहुँच सकता था और उस स्थिति में अफगानों से हास्य विनोद किया करता था तथा उनको आज्ञा देता था कि वह खाना खाय तथा उसे हेमू शाह के रूप में सलाम करें। इससे कुछ अफगान सामन्त अप्रसन्न हो गए और उन्होंने निश्चय किया कि अवसर आते ही वह उसका पक्ष छोड़ देंगे। परन्तु बाद की घटनाएं, कादी खां का सम्मान तथा हाजी खां का अकबर में सम्मिलित आक्रमण तथा दिल्ली विजय इस बात की पुष्टि नहीं करते हैं। यहीं तक कि तथा कथित हेमू की सेना के तोपखाने के अग्रणी भाग के पानी पत के युद्ध में विद्रोह करने का भी कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता क्योंकि हेमू बराबर अपने पर्वताकार युद्ध के हाथियों पर विश्वास करता रहा। तोपखाने के बड़े भाग के छूट जाने से हेमू को हानि अवश्य हुई परन्तु उससे वह विचलित नहीं हुआ। अकबरनामा के रचयिता ने यथार्थ ही लिखा है कि —

"अपार धन सैनिकों की संख्या तथा युद्ध के सामान ने जिन्हें भारत के विभिन्न शासक एकत्रित करके छोड़ गए थे उसे और भी साहसिक एवं निर्भीक बना दिया तथा इसी प्रकार राज्य के नगरों तथा कस्बों को उनके विजेता अधिकारियों में बाँटी करा सके का भी प्रभाव पड़ा।"

"हेमू दिल्ली पर पूरी तैयारी के साथ चढ़ आया। मन्तखबागरवा यह अपनी दुस्साहसपूर्ण आशाओं की पूर्ति के लिए ५० ०० घुड़सवार १० ० हाथी ५१ तोपें तथा ५०० छोटी तोपें लेकर अग्रसर हुआ।[3]

अन्य में—

"प्रथम वर्ष के पवित्र मास २४ की मिहिर का मंगलवार, पूर्ण तैयारी के साथ जिस हिजरा ९६३ अर्थात् ६ अक्तूबर १५५६ ई० को हेमू दिल्ली के पास

१—फ़िरिश्ता पृ० १८४— से १९ ।
२—नियामतउल्ला मख़ज़न—ए—अफगाना ।
३—अबुल फज़ल-अकबर-नामा—जिल्द २ पृ ४७ ।

पहुँच गया तथा उसने तुगलकाबाद के पास डेरा डाला। फलत मुगल अधिकारीगण एकत्रित हुए एवं परामर्श किया। बहुत से भय के कारण लड़ना नही चाहते थे। उनका कहना था कि जब तक कि बादशाह की सेना न आवे उनको चाहिए कि वह दुर्ग को दृढ़ करते रहें। कुछ ने इस बात की अनुमति दी कि अली कुली खा के तथा उस बेग (सम्भल) को विजित करने गए हुए अधिकारियो के आने की प्रतीक्षा की जाए। कुछ वीर जिन्हें यश के लिए जीवन दान करने मे सकोच नही था तथा युद्ध क्षेत्र को भोजन कक्ष से अधिक प्रिय समझते थे कह रहे थे कि इस अवसर को ईश्वर प्रदत्त उपहार समझा जाए तथा तुरन्त युद्ध के कार्य मे व्यस्त हो जाना चाहिए।

गजल

भाग्य कहता है उसको त्याज्य समझो।
जो आज का काम कल पर छोड़ता है॥

अन्त मे उन सबने युद्ध करने का निश्चय कर लिया तथा साहस से कमर बांधी।[१]

तारदी बेग खां ने दिल्ली मे शीघ्रता से हेमू का मुकाबिला करने की तैयारियां शुरू कर दी। उसने उन सभी अधिकारियो को एकत्रित किया जिन्हो ने कि राजधानी म आश्रय प्राप्त किया था। इनम सब से प्रमुख अब्दुल्ला खां उजबेग तथा मदरूयान के लाल खा थे। इनके अतिरिक्त इस्कन्दर खा किया खां काक तथा हैदर मुहम्मद खा थे। बैरम खा ने जिस तारदी बेग के प्रति स्पर्धा तथा साम्प्रदायिकता की विचार धारा के कारण कोई रुचि न थी पीर मुहम्मद खां शरवानी को दिल्ली का प्रबन्ध देखने भेजा।[२] अबुल फजल ने मुगल फौजों की हार का कारण पीर मुहम्मद को बताया है। उसके अनुसार 'यह (दिल्ली का पतन) मात्र भाग्य वश हुआ जिसका उद्देश्य केवल परमात्मा को ज्ञात था अथवा यह सब मौलाना पीर मुहम्मद के निकृष्ट सकल्पो के कारण हुआ। उसके अनुसार तारदी बेग ने अपना कर्तव्य[३] भली भांति निबाहा उसने अपना हृदय साहसपूर्ण बनाया तथा उन सबका साहस बढ़ाया जिनमे साहस की कमी थी।[४] बदाऊनी ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि खान खाना मे जो स्वस्थ होते हुए भी तारदी बेग से असन्तुष्ट हो गया था और उसके बावजूद भी उसको 'बड़ा भाई' कहता था। सेना की हार

१—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २ पृ ६७।
२—अल-बदाऊनी-पृ० ४
३—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द २-पृ ६९।
४—वही पृ ४७।

को कारण तारदी बेग का विश्वासघात बता कर तथा सम्राट को लाभ अमा तथा अन्य सामन्तों की साक्षी इसकी पुष्टि में दिलाई और इस बात का पूर्ण विश्वास दिलाकर सब प्रकार की आज्ञा प्राप्त कर ली कि उसे मार दिया जाय।[1] उसके साथी ख्वाजा सुल्तान अली तथा मीर मुन्शी जिन पर भी विश्वासघात का संदेह था तारदी बेग के एक सम्बन्धी कंबर बेग के साथ जेल भेज दिए गए। माइने-अकबरी के लेखक ने भी तारदी बेग पर सफाया के बाद ही तुरन्त बिना विचार दिल्ली खाली कर देने का आरोप लगाया है।[2]

बैरम खां ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझा। कुछ मुगल सेना पतियों ने काबुल चले जाने की सलाह दी। परन्तु काबुल वहां की परिस्थिति से भी भिन्न था जिसके कारण कि मुगल महिलाएँ लाहौर आश्रय प्राप्त करने को भेजी जा रही थी। खान जमान उस समय मरठ में था जब उसने इस दुर्घटना का हाल सुना तथा वह दिल्ली बचाकर सम्राट से मिलने सीधेहरा की ओर चल पड़ा था (सम्राट) इस दौरान में जालन्धर में था तथा पंजाब के अतिरिक्त सभी प्रान्तों के छिन जाने के कारण किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था।[3]

अकबर ने बैरम खां पर पूर्ण विश्वास किया तथा उसे खान बाबा की उपाधि प्रदान की। उसने बैरम खां से विश्वासपात्र बने रहने का वचन ले लिया। परन्तु जब उसने मुगल अधिकारियों की सभा बुलाई तो उसमें अधिकांश इस मत के थे कि "चूंकि शत्रु की सेना म १ • • अश्वारोही तथा शाही सेना में कठिनता से २० • होंगे अतः यही बुद्धिमानी होगी कि काबुल वापस चले जाया जाय। बैरम खां ने इसका दृढ़ता से विरोध किया। अकबर भी भारत में रहने के पक्ष में था। अन्ततः बादशाह का मत मान्य हुआ तथा मुगलों ने भारत में ठहरने तथा युद्ध करने का निश्चय किया। फलस्वरूप मुगल सैनिक शिविर में पानीपत की ओर कूच करने की तैयारियाँ भी होने लगी। जब कि अकबर आखेट में व्यस्त था बैरम खां तारदी बेग के घर गया तथा उसे अपने खेमे में ले आया। संध्या के समय जबकि वह प्रार्थना में लगा हुआ था उस समय उसको मरवा दिया।[4] उसके ऊपर इस बात का अभियोग लगाया गया था कि उसने उस समय दिल्ली को छोड़ दिया जब कि उसकी रक्षा करनी चाहिए थी।

१—मनबवाकनी पृ ६।

२—अबुल फजल ब्लौकमैन द्वारा अनुवादित-आईन-ए-अकबरी जिल्द २—पृ० ११८ ११९।

३—फिरिश्ता ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद। पृ० १८४ १९०।

४—मनबवाक्नी पृ ९ ७।

अकबर के आने पर उसने अपने किये की सूचना उसे दे दी तथा यह भी सूचित किया कि दया का इस परिस्थिति में भयंकर परिणाम हो सकता था क्योंकि मुगलों की आशाएँ उस समय ऐसे ही योजनाओं पर अवलम्बित थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक शक्ति प्रयोग में ला सकता था। अकबर को विश्वास हो गया कि यदि तारदी बेग खाँ भी इस प्रकार उदाहरणार्थ दंडित न किया जाता तो मुगल सेना की परिस्थिति कुछ और ही होती तथा बाहरी लोगों की भावनायें कुछ इस प्रकार की थी कि शेरशाह वाला अवसर (अर्थात् मुगलों का भारत से निष्कासन) एक बार पुनः दुहरा न जाये।[1]

बैरम खाँ का तारदी बेग का हत्या का दण्ड विधान में इस प्रत्युत्पन्नता का बड़ा अच्छा प्रभाव चगताई सामन्तों पर बहुत पड़ा जो कि उसे उचितयुक्त न समझते थे। परन्तु वह निराश हो गये थे और उनके पास अकबर के शिक्षक व संरक्षक की आज्ञा पालन करने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। फिरिश्ता बदाऊँनी तथा अबुल फजल सब इसका अनुमोदन करते हैं।

दिल्ली का युद्ध ७ अक्तूबर १५५६

अबुल फजल के अनुसार मुगलों तथा हेमू की सेनाएँ पवित्र माह मिहिर की अरब २५ वीं—तदनुसार २ जिलहिज्जा—७ अक्तूबर १५५६ को तैयार होकर युद्ध-स्थल में एक दूसरे के सम्मुख आईं दोनों पक्षों के प्रमुख सेनापति निम्नांकित थे—

मुगल पक्ष		हेमू—पक्ष
१—तारदी बेग खाँ		१—हेमू—केन्द्र तथा वामपक्ष के अध्यक्ष।
२—अफजल खाँ		
३—अशरफ खाँ		
४—मौलाना पीर मुहम्मद शरवानी—बैरम का प्रतिनिधि		२—शादी खाँ (मध्यम में)।
५—हैदर मुहम्मद खाँ ६—कासिम मालसिस ७—हैदर बख्शी ८—अली दोस्त खाँ बाहेरी	दाहिना पक्ष	३—हाजी खाँ अलवर से।
९—इस्कन्दर खाँ तथा दूसरा दूकाहिया।	वाम पक्ष	४—राय हुसेन जलवानी सम्मुख तथा दाहिना पक्ष।
१०—अब्दुल्ला उजबेग ११—किया खाँ १२—लाल खाँ	सम्मुख पक्ष	

१—फिरिश्ता पृ० १८४-१९०।
२—अबुल फजल अकबरनामा—जिल्द २ पृ० ८८।

अकबरनामा के रचयिता ने हेमू की सेना की बनावट की प्रशंसा की है। उसके सम्मुख में वैरी के पक्ष में भी टुकड़ियाँ सैनिक तरीके पर खड़ी की गई थीं और उन्होंने आगे बढ़कर पूर्ण प्रयास किये थे।

मुगलों के पक्ष से आक्रमण आरम्भ हुआ। उनकी आगे की सेना ने हेमू की सेना के दाहिने पक्ष पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण का श्रीगणेश आगे की सेना के सेनापति अब्दुल्ला उजबेग तथा वामपक्ष के सेनापति इस्कन्दर मिर्जा द्वारा हुआ। उनका आकस्मिक आक्रमण सफल रहा और 'उन्होंने हेमू की सेना के अग्रिम एवं दाहिने पक्ष को भगा दिया और खदेड़ते रहे"[1]। बदाऊनी ने इस्कन्दर के साथ खाँ का दाहिने पक्ष पर रहना लिखा है परन्तु यह असत्य है। बल्कि उन्होंने वैरी की सेना को पूरी तरह भगा दिया और अपने सामने की ओर हौंस तथा आसपास के कस्बे तक पीछा करते रहे। उनके हाथ बहुत सा सामान लगा। 'अबुल फजल के अनुसार" ४०० प्रसिद्ध हाथी भी इसी के *लूट के सामान में सम्मिलित थे तथा हेमू की सेना का प्रसिद्ध नेता राय हुसैन* जलवाली वृहत् जन संहार रूपी सागर में डूब गया। १०० से अधिक वैरी युद्ध में मृत्यु के घाट उतर गए।

हेमू अकबर से सहायता के लिए सेना की प्रतीक्षा कर रहा था। मुगलों की प्रारम्भिक सफलता देखकर वह आगे बढ़ आया था तथा 'पर्वतों जैसे बड़े हाथियों सहित सेना के मध्य में भी युद्ध से अलग रहा था। हाथी खाँ जैसे ही अकबर से आया कि हेमू ने आवाज दी और तार्दी बेग खाँ पर आक्रमण कर दिया जिसके पास मुट्ठी भर आदमी थे और एक ही वार में उसे पूर्णतया हरा दिया'।[2]

अबुल फजल ने हेमू की युद्धनीति का व इस आश्चर्यजनक विजय का एक और वर्णन इन शब्दों में किया है —

'अभागे हेमू ने जिसने असभ्य साहस के साथ चातुर्य को भी अपना लिया था युद्ध के मैदान में विकट चालाकी की नीति बरताई। उसने १० चुने हुए हाथी तथा जीवन न्यौछावर करने वाले कुछ वीरों का दल सेना से अलग कर लिया और उस समय की प्रतीक्षा करने लगा जब उसे भागना अथवा आक्रमण करना पड़ता। जिस समय कि मुगलों की अस्त समय के लिए विजयी

१—अबुलफजल ब्लाकमैन द्वारा आईन-ए-अकबरी का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ११६।

"इस्कन्दर मिर्जा जो बायू (बुरंगार) का नायक था … उसके दल ने हेमू के अग्रणी भाग (हरावल) तथा बाएं बाजू (बुरंगार) को परास्त कर दिया और बहुत से अफगानों को मार गिराया।

२—अकबरनामा पृ० ६।

सेना ने अपने अनुकूल परिस्थिति बना ली थी और सहस्र आदमी को सवेत रखी थी तथा उसके कुछ लोग लूट का सामान एकत्रित करने में व्यस्त थे व तारदी बेग खाँ जिसको इस वीरता के मैदान में सम्मान का पद प्राप्त था थोड़े से सैनिकों के साथ दृश्य पर विचार-मग्न खड़ा था। चतुर हेमू ने यह अवसर देखकर उन पर आक्रमण कर दिया।"

"मुगल सेनापति हेमू के इस भीषण आक्रमण का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त साहस संचित न कर सके। पीर मुहम्मद ने भी भागना ही पसन्द किया। तारदी बेग खाँ सब कुछ खोया हुआ जानकर भाग खड़ा हुआ। हेमू तुरन्त ही दिल्ली नगर में प्रविष्ट हुआ। जो मुगल सेनापति आगे गया हुआ था उसने जब दिल्ली वापस आकर इस परिवर्तित परिस्थिति को देखा तो वह भी तुरन्त ही भाग खड़ा हुआ। परन्तु हेमू ने अपने सैनिकों को उनका पीछा करने से मना कर दिया।

सिंहासनारोहण—

हेमू की यह दिल्ली विजय निर्णयात्मक थी और उसने तुरन्त ही उसे सुदृढ़ बनाना आरम्भ कर दिया।

"संक्षेप में हेमू ने जो कि अपनी बड़ी सेना को तितर-बितर तथा अनिश्चित अवस्था में देख रहा था इस घटना को (तारदी बेग खाँ का भागना) अपने बैरी की चाल समझा तथा उनका पीछा नहीं किया। तारदी बेग खाँ ने लेकिन अपनी सेना को बलपूर्वक उसी युद्धक्षेत्र में ला खड़ा किया। सेना के बड़े दलों को विभाजित कर देने वाले वीरों ने जिन्होंने सैनिकों का पीछा किया था जब वह वापस आये आश्चर्य चकित रह गये और तुरन्त उसी दिशा में चल दिये जिधर तारदी बेग भाग गया था।

"इसके पश्चात् हेमू दिल्ली में प्रविष्ट हुआ और अपनी उत्कण्ठा में और भी वृद्धि कर दी जिससे उसका गर्व धमण्ड तथा पागलपन में परिणित हो गया।[१]"

इस महान विजय को प्राप्त करने के उपरान्त हेमू ने अपने को दिल्ली का सम्राट घोषित करने का निश्चय किया।[२] अब तक उसने अदली के ही नाम पर युद्ध संचालन तथा शासन किया था व अधिकार प्राप्त किये थे परन्तु दिल्ली तथा आगरा जैसे स्थानों की आकस्मिक विजयों को सुदृढ़ तब तक नहीं

१—अकबरनामा पृ० ६ ७

२—साधु धर्मसिंह द्वारा प्रकाशित वंश-वृक्ष से ज्ञात होता है कि हेमू ने अपने भाई जुझार राय को दिल्ली के दक्षिणी भू भाग का सूबा नियुक्त किया था। और महिपाल व रमैया को सेना-नायक बनाया था।

बनाया जा सकता था जब तक वह स्वयं सम्राट के पूर्ण अधिकार न प्राप्त कर ले। इस कथन में कोई सत्यता नहीं जान पड़ती कि हेमू ने अदली के आदेश के विरुद्ध शासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिए। अदली की बार की चिन्ता जनक हालत का व पानीपत में हेमू की मृत्यु पर उसके दुख प्रकट करने से स्पष्ट है कि अदली पूर्वी प्रान्तों ही से सन्तुष्ट था और यदि हेमू दिल्ली के सम्राट पद का भार करने के लिए जीवित भी रहता तो अदली उसका पूर्ण सहयोग देता। अन्य अफ़गानों की स्वामी भक्ति का पता भी उनके पानीपत के मैदान में प्रदर्शित किए विशेषकर युद्ध तथा अकबर के शासन के ६ आरम्भिक वर्षों में हुए युद्धों से पता चलता है जो कि हेमू की मृत्यु के उपरान्त भी चलते रहे।

जहाँ तक कि बदाऊनी द्वारा लिखित विक्रमाजीत की उपाधि ग्रहण करने का सम्बन्ध है उसके विषय में पहले ही सन्देह व्यक्त कर दिया गया है। उसके अनुसार की विजय के पश्चात् ही अन्सी द्वारा यह सम्मान सूचक पद प्राप्त हुआ था और लेखक ने यह सत्य ही लिखा है कि उसको कुछ समय पहले से यह उपाधि प्राप्त रही। दिल्ली विजय ने उसे अपने को हिन्दुस्तान का सम्राट स्थापित करने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया।

बदाऊनी के इस कथन में कोई सत्यता नहीं जान पड़ती कि 'जब उसने इस्लाम धर्म के कानूनों को उखाड़ने में अपने पूरे प्रयास कर लिए तो वह १५०० युद्ध के हाथियों तथा असंख्य एवं असीमित धनराशि व बहुत बड़ी सेना के साथ पानीपत के मैदान में युद्ध करने के लिए आया।[1] हेमू सिंहासन पर ७ अक्तूबर १५५६ को बैठा और यदि यह तिथि सत्य है तो उसने केवल २९ दिन शासन किया जब कि ५ नवम्बर १५५६ ई० को उसका भाग्य सदैव के लिए पानीपत के द्वितीय युद्ध के फलस्वरूप मृत्यु द्वारा सहसा अस्त हो गया। इतने थोड़े समय में जब कि उसे मुगलों द्वारा पूरे युद्ध की आशंका बनी हुई थी हेमू सिवाय असम्भव उदारता तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना द्वारा राज्य करने के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकता था। यद्यपि हेमू की सेना में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही थे परन्तु असली जाति भाइयों तथा राजपूत के अलावा अफ़गान सबसे अधिक प्रमुख थे। ऐसी दशा में यह उसकी समझ के बाहर था कि वह इस्लाम के नियमों को उखाड़ने की सोचता। इसके विपरीत यह स्पष्ट है कि अफ़गानों को उस पर पूर्ण भरोसा था तथा उन्होंने पानीपत के मैदान में वीरतापूर्वक उसके लिए लड़कर प्राण दिए। इस युद्ध में हेमू की आकस्मिक मृत्यु ही थी जिसने युद्ध का पांसा पलट दिया न कि अफ़गानों का विश्वासघात।

[1]—अलबदाऊनी मुन्तखब-उत-तवारीख पृ ६-७।

अध्याय—७

पानीपत की दूसरी लड़ाई

सन् १५५६ ई० भारत भीषण आर्थिक और राजनैतिक समस्या की लपेट में था। दिल्ली में जुलाई सन् १५५५ ई० में शीघ्रता में पुनः स्थापित मुगल आधिपत्य बहुत भ्रमात्मक सिद्ध हुआ और हुमायूँ की मृत्यु के साथ-साथ अचानक उसका अन्त हो गया। दिल्ली का सिंहासन एक बार पुनः कई प्रतिद्वन्द्वियों के मध्य संघर्ष का कारण बना जिनमें से प्रमुख थे—हेमू, सिकन्दर और अकबर। शिवालिक की उत्तरी पहाड़ियों में सिकन्दर के उलझे रहने और अकबर के पूर्व में तथा चुनार के चारों ओर के प्रदेशों से सन्तुष्ट रहने के कारण दिल्ली के सिंहासन के लिए हेमू सबसे प्रभावशाली आकांक्षी बन गया। साम्राज्य की राजधानी पर जो तत्कालीन भारत की भी राजधानी थी अधिकार हो जाने से हेमू को मनोवांछित अवसर मिल गया और उसने सफलतापूर्वक उससे लाभ उठाया। ग्वालियर और चुनार में सूर सम्राटों के विशाल कोष को पाकर प्रथम श्रेणी के अफगान और राजपूत सैनिकों सहित और पूर्व में पर्वत सदृश युद्ध के हाथियों के अनुपम दल से सम्पन्न हेमू १५५६ ई० में दिल्ली का सम्राट हो गया।

मुगल बड़ी कठिन परिस्थितियों में थे। उन्हें सिकन्दर के सम्मुख टिकना तक कठिन प्रतीत हो रहा था। काबुल में भी उनकी दशा शोचनीय होती जा रही थी। यहाँ तक कि मुगल स्त्रियाँ जो वहाँ रुक गई थीं अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं कर रही थीं और उन्हें लाहौर लाया जा रहा था। मुगल सम्राट के साथ साथ जिसको एक स्थान से दूसरे स्थान को भागना पड़ा इन मुगल स्त्रियों को भी भाग्य के तीव्र परिवर्तनों को भोगना पड़ा। हुमायूँ ने यह प्रबन्ध किया था कि जैसे ही वह दिल्ली में अपने पैर जमा लेगा वे भारत आ जाएँगी। लेकिन उसकी मृत्यु और तदुपरान्त के फौजी झगड़ों ने जिनमें निम्नांकित मुख्य थे यह योजना भंग कर दी —

इनमें से प्रमुखतम ये थे।

(क) अबुल—मा—अली के विद्रोह का दमन।

(ख) सिकन्दर अफगान के विरुद्ध कार्यवाही और।

(ग) पानीपत में हेमू के साथ संघर्ष।

जब हुमायूँ अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा था शाही बेग खाँ ने कामरान मिर्ज़ा के पुत्र मिर्ज़ा अबुल कासिम को कत्ल में डाला। खान और कुछ चुने हुए हाथियों को लेकर ख्वाजा मुअज्जम अली बखीश खाँ और मीर मुंशी अशरफ खाँ के साथ सम्राट को अपनी भक्तिभाव अर्पण करने भेजा। "इसी वर्ष मिर्ज़ा सुलेमान काबुल को जीतने के विचार से इब्राहीम मिर्ज़ा के साथ आया और मुनअम खाँ ने फिर जान पर दरबार को संदेश भेजा। तब सम्राट ने मुहम्मद कुली खाँ बरलास और मखसूस खाँ तथा मिर्ज़ा खाँ हमारा था कुछ व्यक्तियों के साथ (हुमायूँ की) विधवा रानी और अन्य पत्नियों को जो काबुल में थी लाने के लिए नियुक्त किया।[1]

इसीलिए जब तक काबुल का भय नहीं हुआ मुगल स्त्रियाँ भारत के लिए रवाना न हो सकीं। स्त्रियाँ शिविर में उसके भग्न होने तक रहीं और तत्पश्चात् वे लाहौर गईं और वहाँ से ७ दिसम्बर १५५७ ई० को उन्होंने दिल्ली की ओर यात्रा की।[2]

१५५६ ई० में भारत में मुगल अपने परिवार की स्त्रियों से दूर थे और चारों ओर कठिनाइयों से घिरे थे। भारत के विभिन्न भागों में राजनैतिक स्थिति डाँवाडोल थी और उनके बिल्कुल विपरीत थी। बंगाल बिहार और उड़ीसा बिल्कुल स्वतंत्र राज्य थे। कर्रानी वहाँ शासन करते थे। हेमू की विजयों के कारण वे अफ़गानों के नाम मात्र को राजा रहते थे। सन् १५२७ ई० में पराजय हो जाने के पश्चात् राजपूत पृष्ठभूमि में थे। उनकी राजनैतिक क्रियाएँ बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर में केन्द्रित हो गई थीं। मालवा और गुजरात ने अपनी स्वतंत्रता पहले ही से स्थापित कर ली थी। सुविख्यात रानी दुर्गावती के आधीन भारत का गोंडवाना हिन्दू सामन्त राज्य के रूप में पुनर्जीवित हो रहा था। दक्षिण में विजय नगर साम्राज्य अपनी कीर्ति के शिखर पर था। सुदूर उत्तर और पश्चिम काश्मीर, सिन्ध और बलूचिस्तान में स्वाधीन और स्वतंत्र राज्य थे।

इस की ऐसी परिस्थिति में बालक बादशाह (अकबर) के राज्याभिषेक ने प्रथम प्रभुता के लिए अधिकार स्थापित कर दिया। जब कलानौर में उसका यह संस्कार सम्पन्न हुआ तो उसके अधिकार में कोई निश्चित साम्राज्य नहीं कहा जा सकता था।[3]

१—अल बदायूनी। मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० ५।

२—गुलबदन का हुमायूँ नामा-अकबरनामा-भाग २—५६—५८। अर्सकिन को भी देखिए। पृ० ५०।

३—विन्सेंट स्मिथ अकबर—पृ० ११—१२।

अकबर और उसके शिक्षक-अभिभावक बैरम खाँ के सामने सर्वप्रथम और सबसे प्रमुख कार्य दिल्ली में पुनः अधिकार स्थापित करना और तत्पश्चात हारे हुए प्रदेशों को जीतना था। तारदी बेग खाँ की हत्या के पश्चात और बालक सम्राट के भारत में ठहरने का निश्चय करने पर मुगलों ने हेमू से मोरचा लेने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।

आर्थिक स्थिति—

आगरा और दिल्ली क्षेत्रों में विरोधी सूर दावेदारों में लगातार होने वाले युद्धों ने प्रदेश को उपज विहीन और व्याकुलतापूर्ण कर दिया था। बदाऊनी के प्रमाण के अनुसार जो १५५५-५६ ई० के अकाल का साक्षी था खाद्य सामग्री का अभाव २ वर्ष तक रहा और रासती बुभुक्ष देखने में आते थे। अकाल वर्षा न होने के कारण पड़े जब कि सनाग्रा का एकत्र होने से विनाश और कष्ट बढ़ गए। बदाऊनी ने लिखा है कि जब आगरा के दक्षिण-पश्चिम से ३६ मील दूर बयाना के निकट हेमू ने डेरा डाला था—

लाग[1] रोटी 'रोटी' कहते-कहते मर गए जब कि वह एक लाख व्यक्तियों के जीवन का मूल्य भी दे एक दाने से अधिक नहीं आंकता था वह अपने ५०० हाथियों को चावल चीनी और मक्खन खिलाता था। सारा संसार आश्चर्यचकित और रुष्ट था।

आर्थिक स्थिति और भारी विपत्तियों के होते हुए भी हेमू ने अपनी रसद के मामले को ठीक कर लिया और जब वह दिल्ली में था तो उसने अपनी

१—मुन्तखबउत्तवारीख-मुन्तखाब-उत-तवारीख इलियट तथा डासन ५ ४९०-४९१ और अनुवाद में क्रिया सम्बन्धी परिवर्तनों के साथ रैंकिंग जिल्द १ पृष्ठ ५४९ ५१ हेमू की बर्बरता केवल बदाऊनी द्वारा ही उल्लिखित है। अन्य इतिहासकार इस विषय पर मौन हैं। अबुल फज़ल जो स्वयं बर्बर हो सकता था अपने तथ्य जाने के होते हुए भी हेमू के 'पौरुष' व गुणों पर विश्वास करता है। (अकबरनामा—२ ६)। अबुल फज़ल की बर्बरता के प्रमाण के लिए हुमायूँ के प्रति कुछ विद्रोहियों के वध का पुरस्कार वर्णन देखिए (अकबरनामा १ ३१५-अध्याय ३)। वह अपनी अकबरनामा में अकाल और सम्बन्धित महामारियों का उल्लेख करता है। वह कहता है कि घोर अकाल महामात्य के राज्याभिषेक के वर्ष (अकबरनामा ०६३ १६ नवम्बर १५५६ ई०) में आरम्भ में हुआ। राजधानी विशिष्ट हो गई और कुछ मकानों के अतिरिक्त कुछ भी शेष न रहा (निर्देश दिल्ली की ओर ही होगा) एक संक्रामक प्लेग फैली और हिन्दुस्तान के बहुत से शहरों में फैल गई। असंख्य व्यक्ति मर गए। (आईन-ए अकबरी जिल्द ३ पृ० ४२६)। वही लेखक इस तथ्य की भी पुष्टि करता है कि बहुत से व्यक्ति मनुष्य का मांस तक खाने लगे थे। और अनेक डेरा डालने को और खाने का दल बन गए थे। (अकबरनामा—२-५७)।

फौज की शक्ति सौगुनी बढ़ा ली। कुछ ही दिनों के अन्दर वह युद्ध में १५०० हाथियों, अपार धन और असंख्य सवारों और प्यादों के विरुद्ध कूच करने वाली एक विशाल सेना के साथ तैयार था।[1]

मुगल सेना में किसी भी समय १४०० हाथियों से अधिक सक्रिय न रहे। अकबर के हाथी खाने में कुल ५०५१ हाथी थे। सेना में हाथी भारी तोपें खींचने के काम आते थे। हाथियों को कवच पहनाने तथा हाथियों को हथियारों से लैस करने की प्रथा में मुगलों ने हेमू का अनुकरण किया।

पानीपत के युद्ध का वर्णन करते हुए अबुल-फजल कहता है—

"दुर्भाग्य का मारा हेमू मूर्खतापूर्ण प्रेरणाओं के एकत्रित होने के कारण जैसा कि संक्षेप में पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है बराबर दम्भ और उद्दण्डता की ओर मुड़ता जा रहा था। शाही खाँ की विजय तथा आपत्तियों से भारतीय सेना विशेष उत्साहित थी और उसमें भाग्य के अधिष्ठाताओं से टक्कर लेने के लिए साहस भरा था। बड़े और छोटे घमण्ड से भरे थे और विघ्नकारी कल्पनाओं में निमग्न थे।[2]

फरिश्ता के कथनानुसार भी हेमू की सेना इतनी विशाल थी कि उसने "बादशाह से भिड़ने के लिए, टिड्डी दल व रेगिस्तान की चींटियों के समान असंख्य सेना के साथ राजधानी से बाहर की ओर कूच किया।[3]

हेमू की सेना का अग्रदल—

दिल्ली के राजसिंहासन के लिए युद्ध करने का निश्चय करके बैरम खाँ ने मुगल सुल्तानों व सामन्तों की एक आवश्यक बैठक किया जिनमें से अधिकतर अकबर के हितों की रक्षा करने के लिए और साधारण विपत्ति का सामना साथ रहने के लिए एक थे। मुगल सेना ऐतिहासिक रण-क्षेत्र पानीपत की ओर बढ़ी। दूसरी ओर हेमू ने गुण और संख्या में महान अपनी सशस्त्र सेना के अग्रदल को मुबारक खाँ और बहादुर खाँ जो उसके प्रमुख अधिकारी थे के संरक्षण में दिल्ली से लगभग ३० मील की दूरी पर स्थित पानीपत की ओर भेज दिया और युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दी।[4] यह सेना का अग्रदल बहुत अच्छी प्रकार रक्षित नहीं था और संख्या में भी न्यून था। मुख्य सेना से पहले पूर्व ऐसे अग्रदल को भेजकर हेमू ने भूल की। मुगलों की ओर से लगभग १० हजार

१—वही पृ० ७ देखिए डा० शर्मा मुगल राज्य तथा शासन बम्बई—१९५१—पृ० १८७-१८८।

२—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २—पृ० २८-२९।

३—फिरिश्ता जिल्द २ ब्रिग्स पृ० १८८ से १९०।

४—अबुल फजल अकबरनामा पृ० ५८

सशस्त्र सेना के अग्रदल ने अली कुली खां उजबक के नेतृत्व में कूच किया। उसके साथ लाल खां बदख्शी मो० कुली बरलास और सामन्ती खां जैसे सक्रिय और युद्ध-प्रेमी सैनिक थे। अबुल फजल के अनुसार 'हेमू की सशस्त्र सेना पर अधिकार कर लिया गया और शत्रु का अग्रदल बिना लड़े ही भाग पड़ा हुआ।'[1] बदाऊनी थोड़ा भिन्न वर्णन करता है जब वह कहता है —

'उसने अपनी सशस्त्र सेना अपने सामने भेज दी और खान जमन, इस्कन्दर खां जैसे तथा अन्य बड़े अमीरों के दल को जो अग्रदल के रूप में बढ़ रहे थे उसे भेंट करने का अवसर उन्हें पानीपत के युद्ध लड़ाई करने के बाद मिला।'[2] बाद का वर्णन वास्तविकता के अधिक निकट प्रतीत होता है लेकिन यह भी सच है कि हेमू का सशस्त्र तोपची सैन्यदल संख्या में न्यून होने के कारण और काफी अधिक आगे बढ़ जाने के कारण मुगल अग्रदल का सहज शिकार हो गया। यह कहा गया है कि हेमू की सशस्त्र तोपची सेना के कार्य वाहक अधिकारियों ने उसको धोखा दिया या जान बूझकर आगे बढ़ गए। लेकिन बदाऊनी का उपर्युक्त वर्णन पूर्णतः प्रमाणित नहीं होता है। अल-बदाऊनी अगली कुछ पंक्तियों में केवल मान लेता है कि अफगान हेमू की संरक्षता आदि के विवरण से संतुष्ट नहीं थे लेकिन पानीपत के युद्ध के सम्पूर्ण ब्यौरेवार कार्यवाहियों के बीच कोई न्यूनता दृष्टिगत नहीं होती। उनकी पराजय उनकी संख्या में शक्ति कम होने के कारण हुई। जैसा कि डा० त्रिपाठी इस बारे में कहते हैं— 'अपने सशस्त्र सैन्यदल का निर्बल रक्षक के आधीन पहले ही भेज देना हेमू के लिए एक घातक भूल सिद्ध हुई।'[3]

हेमू का आगे बढ़ना—

लेकिन हेमू सशस्त्र सेना के कमी हो जाने पर विचलित नहीं हुआ क्योंकि वह महत्वपूर्ण नहीं थी। वह अथक रहा और पानीपत रण क्षेत्र की ओर पूर्ण युद्ध-व्यवस्था के साथ तेजी से बढ़ा। उसने अपनी सेना का निम्न लिखित नायकों के अधीन तीन विभागों में प्रबन्ध किया।[4]

(१) दक्षिण पक्ष शादी खां काकर[5] के अधीन।

(२) वाम पक्ष हेमू के भानजे रमैया के अधीन जो योद्धा के लिए मान्य था

(३) मध्य भाग स्वयं हेमू के अधीन

१—अबुल फजल अकबरनामा पृ० २९।
२—अल-बदाऊनी-मुन्तखाबात उत-तवारीख। पृ० ७ व ८।
३—डा० आर०पी० त्रिपाठी—मुगल साम्राज्य का उत्थान तथा पतन-पृ० १०२।
४—अबुल फजल अकबरनामा पृ० २९।
५—अफगान जाति।

हेमू के रण-मत्त हाथी—

हेमू अधिकतर अपने युद्ध के हाथियों पर विश्वास करता था जिसका विशद वर्णन अकबरनामा में इन शब्दों में उपलब्ध है [1]—

'वह अपने साथ पहाड़ सदृश्य और अजगर के से मुँह वाले हाथियों को ले जाता था जो अनेक भारतीय शासकों द्वारा एकत्रित किए गए थे और जो दैवी देन के कारण तथा आडम्बर पूर्ण और अल्प दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों के लिए एक चेतावनी के रूप में यथार्थ रूप एवं सत्य में इस परदेशी के लिए एक साथ जुटा दिए गए थे। उनमें ५०० ताड़ समान (ऊँचे) हाथी थे जिनमें से प्रत्येक तेजी और चतुरता में अनुपम था। शक्ति और साहस में [2] वे आदर्श थे और इन सक्रिय पशुओं का दौड़ना 'दौड़' नहीं कही जा सकती थी क्योंकि यद्यपि 'ईराक (अरब) की घुड़दौड़ तेज कही जा सकती थी परन्तु वह इन हाथियों की दौड़ से तेज नहीं हो सकती थी। वास्तव में इन सुशिक्षित हाथियों में से प्रत्येक एक बड़ी सेना को तितर-बितर कर सकता था। मुख्यतः उनका काम शत्रु सेना की व्यवस्था को अव्यवस्थित कर देना था क्योंकि घोड़ों ने ऐसे भीषण स्वरूपों का सामना कभी नहीं किया था। लेखक हाथियों के पराक्रम का नाम भी उसी अलंकारमय भाषा में वर्णन करता है —

'शत्रु की पतली डोर में उन दौड़ते हुए पहाड़ों के झुण्डों को कैसे पिरोया जा सकता है। उन्होंने विशाल इमारतों को हिला-हिलाकर नष्ट कर दिया और क्षण ही भर में मजबूत पेड़ों को जड़ से उखाड़ दिया। युद्ध और संघर्ष की वेला में वे आदमी और घोड़े को ऊँचा उठा लेते थे और उनको हवा में फेंक देते थे" [3]

पद्य

"वे भले मंथर गति से बढ़ते हैं परन्तु जब युद्ध करते हैं,
तो शक्तिशाली भी उनके पैरों के नीचे 'पिसे हुए सुरमे' की भाँति हो जाते हैं।

हेमू की [illegible] सेना —

१५ युद्ध के हाथियों और शस्त्र सेना के [illegible] के अतिरिक्त "३० हजार अभ्यासी घुड़सवारों के साथ जिसमें वे राजपूत और अफगान थे जिन्होंने अनेक अवसरों पर अपने आक्रमणों द्वारा उनके दंभ और उद्दण्डता को बढ़ा दिया था हेमू ने उत्तम व्यवस्था के साथ कूच किया। [4] सैनिकों और

१—अबुल फजल अकबरनामा जिल्द २० पृ० ५९।
२—अनुवादक की टिप्पणी—"मैं समझता हूँ कि 'कारनामा' के बाद 'इत्तफाक' गलत है। एक हस्तलेख में इस शब्द के बाद एक संयोजक है।'
३—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६०।
४—अबुल फजल—अकबरनामा—पृ० ६०।

अफगान अमीरों का उत्साहवर्धन करने के लिए हेमू उन्हें जागीरों का उपहार दिया करता था और पराक्रमी योद्धाओं के लिए अपने खजानों का द्वार खोल दिया करता था।[1] उसकी अन्तिम घड़ी की तैयारियों, युद्धस्थित हाथियों के वितरण का अबुल फजल द्वारा भी इन शब्दों में सुन्दर वर्णन किया गया है।[2]

" "उन विशाल गजों की पहाड़ सी पीठों पर जो कवच (काठिम)[3] और सुरक्षा करने वाली वेशभूषा से सज्जित रहते थे बन्दूक धारी सिपाही और धनुषधारियों को बैठाया जाता था और युद्ध के लिए तैयार किया जाता था। सब हाथियों पर ये युद्ध के सर्वांगीण-कवच थे उनको सूंड भालों और चाकूओं से युक्त थी और वे रणधीर और साहसी महावतों के सुपुर्द थे। प्रत्येक के लिए उसका स्थान निश्चित था।

निम्नलिखित हाथियों के नामों का उल्लेख किया गया है, जो कि प्रमुख सेना नायकों के सुपुर्द निम्न प्रकार से किए गए थे—

(१)	मालिक जंग	हुसन खां फौजदार	के सुपुर्द
(२)	गज संवर[4]	मैकल खां	
(३)	शेर बनिया	इख्तियार खां	"
(४)	कौल मवार	संग्राम खां	के सुपुर्द

(५) काली बेग जिस पर कई युद्धों में हेमू स्वयं आरूढ़ हुआ था उस दिन कामन नामक महावत के सुपुर्द किया गया था। अबुल फजल के कथनानुसार हेमू ने अफगान नेताओं को प्रसन्न किया जो युद्ध रूपी जंगल के शेर थे और शेर खां और सलीम खां और अन्य सभी व्यक्तियों के अन्तरंग मित्र थे और उनको युद्ध के लिए उत्साहित किया।

हेमू स्वयं 'हवाई'[5] नामक हाथी पर सवार हुआ और शाहाबाद जिले की ओर आया।

हेमू का सक्रिय होना—

हेमू के आगमन उसकी शक्ति और साज-सामान का समाचार मुगल

१—अल-बदाऊनी मुन्तखबात-उत-तवारीख—पृ० ७-८ बदाऊनी के अनुसार हेमू ने सेना को तोपची सेना की हानि के लिए सांत्वना देने के लिए रुपया और उपहार बांटा। लेकिन उसकी आशा से भिन्ने धन को ग्रहण न कर सकने के कारण अफगानों ने उसके पतन के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी आरंभ कर दी।"

२—अबुल फजल-अकबरनामा ६०। देखिए डा० शर्मा। मुगल शासन तथा राज्य मुगल सेना में हाथियों का प्रयोग—पृ० १४३-१४४।

३—स्मोथ मैन- प्लेट १४ बी।

४—गाह्व मे मर्दैर जिसका अर्थ 'चमत्कारी' का होता है।

५—अल बदाऊनी-मुन्तखबात उत-तवारीख—पृष्ठ ७-८।

शिविर में शैबानीन २३ वीं आमाल मुरादी महीना अनुसार, बृहस्पतिवार २ मुहर्रम ९६४ अर्थात् ५ नवम्बर १५५६ ई०, को पहुँचा। मुगलों ने इसकी पुष्टि कर ली कि वह साहस से निकट आ रहा था।[1] उसने सबसे पूर्व एक बड़ी फौज एक कतार में कूच करती हुई शादी खाँ काकड़ के नेतृत्व में जिसने पहले ही दिल्ली का अधिकार करके अपने को प्रसिद्ध कर लिया था और जो सम्भल का निवासी था आगे भाग भेज दी।

मुगल शिविर में घबराहट—

जैसे ही मुगलों को हेमू की तैयारियों की विशालता का विश्वास हो गया शाही सेवकों के हृदयों में भुक्रमणि गन्न होकने वाला की क्रियाओं के कारण (जिनमें कोई सेना कभी मुक्त नहीं रहती बल्कि एक प्रकार से ऐसी ही भी सेनाएँ रहती हैं) व्यग्रता ने स्थान बना लिया।[2] मुगल अग्रक्रम में १ हजार उत्तम सेना थी जिसमें ५ हजार अनुभवी सैनिक थे और वे हेमू के आगे बढ़े हुए सैन्य दल से टक्कर लेने के लिए तैयार हो गए। मुगलों की ओर सिकन्दर खाँ और अन्य वीर सैनिक दाहिने भाग में थे जब कि बाँया भाग अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में था मध्य में अली कुली खाँ शैबानी हुसैन कुली खाँ शाह कुली महरम और कुछ अन्य मुख्य सेना नायक थे।

बैरम खाँ और अकबर, जो पानीपत से दस कोस दूर करनाल में थे युद्ध की निकटता का समाचार पाकर शेष मुगल सेना के साथ आगे बढ़े।[3] वे पानीपत से ५ कोस दूर एक स्थान पर रुके और वहाँ उन्होंने विश्वसित कर देने वाला यह समाचार सुना कि बहुत से मुगल पराजित हो चुके थे परन्तु लड़ाई तब भी तेजी से चालू थी। अकबर और बैरम ने रणक्षेत्र की ओर बढ़ने के आदेश दे दिए। बैरम खाँ ख़ान ख़ानान पंक्तियों के समक्ष और विभागों के चारों ओर गया और उसने युद्ध के नियमों के बनाए रखने और विशुओं की सुरक्षा के लिए उपाय किये।[4] उसने मुगलों को घेर कर एकत्रित किया और उपहार देकर और भावी पदोन्नति के आश्वासन (वायदे) देकर सामन्तों को प्रसन्न किया और उन्हें युद्ध करने को उत्तेजित किया। लेकिन जब तक कि अकबर और बैरम पानीपत से ५ कोस की दूरी पर स्थित अपने शिविर से बाहर निकल सके उसी समय हेमू के प्राण घातक दुर्घटना में ग्रस्त होने का समाचार मिला और युद्ध मुगलों के पक्ष में समाप्त हुआ।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ६०।
२—अबुल फजल अकबरनामा—पृ० ६२।
३—डा० आशीर्वादि लाल मुगल साम्राज्य।
४—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २-पृ०—६२।

अल बदाऊनी भी उक्त वर्णन की पुष्टि करता है कि 'मुहर्रम ९६४ के पवित्र मास के १०वें दिन (जो रबी-अशुरा भी कहलाता है) शुक्रवार की सुबह—

"मित्रों के लिए यह शोक का दिन नहीं है
पर साथ ही शत्रु के लिए प्रसन्नता का दिन भी उतना ही कम है।[1]

अफ़ग़ान के मुगल अमीरों और हेमू के बीच युद्ध और हत्याकाण्ड आरम्भ हुआ। सम्राट और खान खानान उस दिन तीन विभागों में विभक्त थे और एक दूसरे को सहायता भेजते रहे जब तक कि विजय की सूचना न मिल गई। अबुल फज़ल द्वारा आईन-ए अकबरी में आये यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'यद्यपि अकबर और बैरम खां निकट ही थे उन्होंने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया। मुगलों का अग्रदल अलीकुली खां के अधीन था जिसकी पानीपत के पास हेमू से टक्कर हुई।[2]

दूसरे सेनानायकों में से जिन्होंने मुगलों की ओर से भाग लिया मिर्ज़ापुर का मुहम्मद कासिम खां एक था जिसने हेमू के साथ युद्ध होने पर खान ज़मान के अधीन हरावल या सेना के अग्रदल के नेता के रूप में कार्य किया था।[3] दूसरे नायक शाहकुली महरम-ए-बहरली ने जो बैरम की सेना में था हेमू के विरुद्ध युद्ध में ख्याति प्राप्त की थी। यह शाह कुली ही था जिसने हेमू के हाथी पर आक्रमण किया यद्यपि वह यह नहीं जानता था कि उसका विपक्षी कौन था।[4]

घातक दुर्घटना—

उस दुर्घटना का संक्षिप्त वर्णन जो घातक और निर्णायक सिद्ध हुई, अबुल फज़ल द्वारा उज्ज्वल और स्पष्ट ढंग से इन शब्दों में किया गया है —

'जब हेमू का पता चला कि कीर्ति के स्तम्भ अभी दूर है और कुछ अधिकारी आगे बढ़ आए हैं तो वह तेज़ी से उनकी ओर यह सोच कर बढ़ा कि यदि उसने उन व्यक्तियों को जो चुनी हुई सेना थी छिन्न-भिन्न कर दिया तो शेष कार्य सुगम हो जाएगा। हेमू की यह आशा बिल्कुल सही थी। यदि वह घातक दुर्घटना से ग्रस्त न होता तो सम्भव में उसका भीषण आक्रमण सफल होता और मुगल सेना जो पहले ही एक दूसरे से पाँच कोस की दूरी पर दो शिविरों में विभक्त थी उसका सामना कर सकने योग्य न होती। यदि पानीपत में वह विजयी हो जाता तो अकबर और बैरम खां केवल भागने की ही शरण लेते।

१—अल-बदाऊनी पृ० ७-८।
२—अबुल फज़ल-आईन-ए-अकबरी-जिल्द १ (ब्लाखमैन) पृ० ३२९।
३—अबुल फज़ल-आ... मैन) पृ० ३४३।
४—वही ३२९।

हेमू की विशाल सेना की प्रगति के प्रवाह को रोकना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी। वास्तविक युद्ध में हेमू 'प्रमुखतः अपने बहुत से बलशाली हाथियों पर भरोसा रखता था।" प्रत्येक पक्ष के वीर पुरुष उत्तम प्रयास करते थे और चिल्लाकर एक दूसरे पर झपटते थे। उन्होंने साहस और भक्ति के साथ सेवा की और यश कमाया।[१]

पद

'दोनों सेनाओं की ऐसी टक्कर हुई
कि उन्होंने पानी से आग उत्पन्न कर दी।
आप कहेंगे कि हवा में केवल रक्त वर्णी तलवारें ही थीं
उनका इस्पात पूर्णतः ठोस माणिक जैसा हो गया था।[२]

यद्यपि कुख्यात सेना के सेनानी स्थिरता और निष्ठा में असफल नहीं रहे, तब भी हाथियों के आक्रमण ने दायें और बाएं विभागों को हिला दिया। और यदि हेमू का अकस्मात पतन न हुआ होता तो मध्य में किया गया धावा मुगल सेना के मध्य को तुरन्त खण्डित व पराजित कर देता।

जब मुगल सेना-नायकों को विश्वास हो गया कि उनके घोड़े मदमाते हाथियों की बराबरी बिल्कुल नहीं कर सकते तो उन्होंने चक्कर काटना आरंभ कर दिया अर्थात बाहर निकलने के लिए चेष्टा की। अकबरनामा के अनुवादक ब्लाकमैन के अनुसार इसमें शायद 'पराठी युद्ध' का अर्थ था अर्थात मुगल घोड़ों की पीठों पर से उतर पड़े और हाथियों का घेर लेने की नीति बदल दी। युद्ध सवारों को पहले ही घोड़ों की काठियों पर से नीचे फेंक दिया गया था उसके पश्चात तेज व उग्र घोड़ों की छुरी जैसे खुरों द्वारा उनको मसल दिया गया था। ऐसे संकटमय समय में मुगलों ने धनुर्धारियों के एक स्वामिभक्त दल को चारों दिशाओं में भेज दिया जिन्होंने महत्वपूर्ण सेवा की। उसी फुर्ती से हाथियों के आक्रमण से एक खाई द्वारा सुरक्षित रह सका जिसे वे पार न कर सके। 'युद्ध के वीर इच्छुक और केन्द्र के सिंह-सदृश्य व्यक्ति एक छोटे से स्थान में संकुचित थे और आक्रमण करने के अवसर की खोज में स्थिर थे। उन्होंने ऐसी सहन शक्ति प्रदर्शित की कि केन्द्र की ओर से हाथी वापस चले गए। तत्पश्चात वे लोग शत्रु के पीछे निकल पड़े और अपने तीर चलाये और तलवारें घुमाई।" इसी समय जब कि युद्ध अपनी चरम सीमा पर था और मुगल घुटने टेकने ही वाले थे और एक निराश प्रतिरोध कर रहे थे दुर्भाग्य का मारा हेमू हवाई नाम के हाथी पर, जो उसके सबसे अच्छे हाथियों में से एक था बड़े गर्व से

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २-पृ ६१।
२—बीजापुर माणिक से मिलता-जुलता एक पत्थर और कम्बर के आकर्षक गुण रखनेवाला।

प्रहार हुआ और उसने एक ओर वीर तलवार चलाने वालों को तथा दूसरी ओर पंक्ति को भेदने वाले हाथियों के आक्रमण की ओर देखा।[1] हेमू ने अपने भीषण हाथियों को एकत्रित करके हर प्रकार का रण-कौशल जो उसकी शक्तिशाली सामर्थ्य में था, और हर प्रकार का साहसिक कार्य जो उसकी विध्वंसकारी आत्मा में छिपा था दिखाया। अबुल फजल इस वीर की प्रशंसा में आगे कहता है—"उसने शक्तिशाली आक्रमण किए और बहुत से पराक्रमशील कार्य किए, तथा प्रताप शाली सेना के कई साहसी सैनिकों को हटा दिया। लेकिन दुर्भाग्य ने समय का पलड़ा पलट दिया।[2]

दुर्घटना—

'अचानक संघर्ष के बीच में दैवी कोप रूपी धनुष द्वारा छोड़ा गया तीर हेमू की आंख में लगा और खोपड़ी को छेदता हुआ उसके सिर के पीछे निकला।[3] अलबदायूनी के शब्दों में भी अचानक मृत्यु का तीर, जिसे कोई ढाल रोक नहीं सकती उसकी कटाक्ष पूर्ण आंख में लगा जिससे खोपड़ी में से उसका दिमाग बिल्कुल स्पष्ट बाहर निकल आया और वह मूर्छित हो गया।[4] हेमू इस समय अपने पर्वत-समूह हाथियों के साथ उस स्थल पर, जहां बाल अमन टिका था मध्य भाग का भार संभालने में रत था। इस समय जब विजय उसको प्राप्त हो सकती थी वह अपनी घातक दुर्घटना में ग्रस्त हो गया 'तीर के आंख में घुस जाने पर, वह असहनीय पीड़ा के कारण अपने हौदे में गिर गया।' अपने को पुनः उठाते हुए हेमू ने तीर को खींचा और नेत्र के छिद्र से बाहर निकल आने पर जिसे उसने रूमाल में लपेट लिया और अपनी कष्टमय दशा के होते हुए भी उसने अदम्य साहस के साथ उन थोड़े से व्यक्तियों को लेकर प्रयास करते हुए जो उसके निकट रह गए थे शत्रु पंक्ति के बीच से वापसी मार्ग करने के लिए युद्ध करता रहा।[5]

शादी खाँ और भगवान दास की मृत्यु —

शादी खाँ जो हेमू के पक्ष का प्रमुख अफगान सेना-नायक था लड़ता हुआ मारा गया और अबुलफजल के कथनानुसार भाग्यशाली मुगल सेना के उस तेज घोड़ा के पैरों के नीचे कुचला गया। भगवान दास को जो उसके अत्यन्त कार्यमियों में से एक था और जो रण क्षेत्र में अपनी वीरता के लिए

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २ पृ० ६४।
२—अबुल फजल अकबरनामा-जिल्द २ पृ० ६४।
३—वही—पृ० ६४।
४—अलबदायूनी मुन्तखब उत तवारीख—पृ० ६०—६१।
५—अबुलफजल अकबरनामा जिल्द २ पृ० ६४।

विख्यात था उसके (हेमू के) सामने ही टुकड़े-टुकड़े कर दिये गए।[1] यह स्पष्ट नहीं है कि इन पराक्रमी योद्धाओं का अन्त उस अव्यवस्था और भगदड़ के पश्चात् हुआ जो हेमू के घातक पतन के पश्चात् हुआ था। सेना में भगदड़ मच गई, और संहार और हाहाकार आरम्भ हो गया। इस दशा में ऐसी मृत्युओं की सम्भावना नहीं अधिक है। किसी भी दशा में प्रमुख बलवान योद्धा हेमू की ओर से लड़ता हुआ मारा गया। साधारण व्यक्तियों के हृदय बैठ गए और वे भाग खड़े हुए।

हेमू का बन्दी होना—

स्वामी को हौदे में घायल पड़ा देखकर हेमू के हाथी हवाई के महावत ने अपने को किंकर्तव्य-विमूढ़ पाया। हेमू के बन्दी बनाए जाने के विभिन्न वर्णन किए गए हैं—

अल-बदायूनी के अनुसार—"शाह कुली खाँ महरम हेमू के हाथी से मिला था और उस हाथी के महावत ने उससे कहा 'मुझे मत मारो। मेरे हाथी पर हेमू सवार है।' इसलिए वे उसे उसी अवस्था में शिविर में ले आए।[2]

अबुल फजल के शब्दों में "उसी समय शाह कुली खाँ और कुछ और व्यक्ति उस हाथी के पास आए जिस पर हेमू सवार था। वह नहीं जानता था कि हेमू हाथी पर था और उसने महावत को इसलिए मार डालना चाहा ताकि वह हाथी को अपनी लूट का भाग बना ले। बेचारे महावत ने जिसके पास न तो दमनशक्ति का कवच था और न साहस का शिरबख्तर, अपनी जान जाने के डर से अपने स्वामी की ओर संकेत कर दिया। जब शाह कुली खाँ ने अपने महान सौभाग्य के बारे में सुना तो उसने अपने भाग्यों को आशीर्वाद दिया और प्रसन्नता से दोनों को बादशाह की ओर उन्मुख किया। उसने महावत को आश्रय का आश्वासन दिया और उसे राज पुरस्कार दिलाने की आशा दिलाई तब उसने उसको तथा कुछ अन्य हाथियों को अलग किया और युद्ध क्षेत्र को छोड़ दिया"।[3]

अबुल फजल ने उस हाथी के महावत द्वारा किए गए कार्य का तथा हाथी व महावत के महत्त्व का जिसकी कल्पना हेमू न कर सका विस्तृत वर्णन इन शब्दों में किया है—

"विमूढ़ता के नशे में वह (हेमू) यह न समझ सका कि वह, जो हाथी के महावत पर आश्रित है उस पर निश्चय रूप से प्रवृत्त हो जाएगा

१—अबुल फजल-अकबरनामा—पृ० ९४।
२—अल बदायूनी मुन्तखब—उत—तवारीख। पृ० ८-९।
३—अबुल फजल-अकबरनामा। जिल्द—२—पृ० ९५।

जिसका भरोसा हाथी में है। तब फिर उसकी सभ्यता कैसे न मानी जाए, जिसे हाथी के सजनहार का विश्वास प्राप्त है और उसके विरुद्ध हाथियों को सहाय दार्य घुमाकर क्या प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है" ?[1]

यह भारतीय युद्ध पद्धति थी जिसमें हाथी एक प्रमुख भाग लेते थे सिद्धान्तों के पूर्णतः अनुकूल था। बहुत से शूरवीर हाथियों की तरंगों का शिकार हो गए। महत्वपूर्ण अवसर पर हाथियों की भगदड़ से उत्तम सेनाओं का नाश हो गया केवल हाथियों के दांव के कारण कई सम्पूर्ण साम्राज्य हाथ से जाते रहे। हेमू इसका अपवाद न था। घातक घाव के कारण उसका हौदे में गिरना सेना की भगदड़ के लिए एक संकेत मात्र था। उसके दो धुरंधर सेना नायक शादी खां और भगवानदास का भी गौरव मय अन्त हुआ। उसके अपने निकट सम्बन्धी भांजे रमैया और भतीजे महीपाल विपत तथा संकटकालीन परिस्थिति पर काबू न पा सके। वे सब भाग खड़े हुए। विशाल खजाने के साथ वे अलवर लौट गए और अपने अनिष्ट की प्रतीक्षा करने लगे। अफगान शूरवीर भी देश के विभिन्न भागों में अपने गढ़ों की ओर भाग निकले। जैसा कि आगे की घटनाओं से ज्ञात होगा अकबर को इन छत-विछत अफगानों के विरुद्ध २ से ६ वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। आगरा, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार और पूर्व में कुछ अन्य स्थान तथा गढ़ अदली और हेमू के स्वामी भक्त सेवकों के अधिकार में बने रहे और मुगलों द्वारा उन पर एक-एक करके ही अधिकार किया जा सका।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २—पृ ६५।

अध्याय—८

हेमू का शहीद होना

हेमू के हाथी का महावत शत्रुओं को अपने सामने देखकर प्राण जाने के भय से हाथी को जहाँ शाह कुली खाँ ने निर्दिष्ट किया वहीं, हांक ले जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। जैसे ही महावत ने हाथी को अन्य हाथियों से अलग किया उसे शत्रुओं के भालों से एक दम घेर कर लिया गया और पानीपत से ५ मील दूर अकबर के शिविर में ले जाया गया। वहाँ क्या घटित हुआ इसका समकालीन वृत्तान्तकारों द्वारा विविध प्रकार से वर्णन किया गया है।

हेमू की हत्या का सबसे अधिक प्राप्त उपाख्यान अल-बदाऊनी का है जो कहता है[1]

... ..."और शेख गदा-ए-कम्बोह तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों ने सम्राट से कहा—'क्योंकि महात्म्य का धर्मद्रोहियों के विरुद्ध यह प्रथम युद्ध है इसलिए आपको इस नास्तिक के ऊपर तलवार खींचनी ही चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के कार्य का प्रतिफल महान होगा।'

लेकिन सम्राट ने उत्तर दिया—"मैं अब इस पर प्रहार क्यों करूँ क्योंकि यह तो पहले ही मृत प्राय है? यदि उसमें चेतना और क्रियाशीलता शेष हो तो मैं ऐसा करूँगा।"

इसके पश्चात् बैरम खाँ ने स्वयं अपनी तलवार हेमू के शरीर में भोंक दी और गदा-ए-शेख तथा अन्य व्यक्तियों ने जो वहाँ उपस्थित थे उसका अनुसरण किया। बदाऊनी आगे कहता है—"इस प्रकार यह उक्ति पूर्ण हुई—"उसका मारना से क्या लाभ, जो अभागा आप मरता हो?"[2] और उन्हें उस तिथि के लिए निम्नलिखित स्मरण-अभिव्यक्ति-पद्य अंकित मिला—

"यदि एक शोक और कपट से महान् निर्मित
विधि के लेख द्वारा हिन्दू हेमू के हाथ आ गई
तो मोहम्मद अकबर ने यह शाह जिसकी कीर्ति आकाश तक पहुँची,
ईश्वर की सहायता से उस दासी पुत्र वाले हिन्दू हेमू को बंदी बना लिया।

१—अल-बदाऊनी मुन्तखाब उत-तवारीख—पृ० ९ १२।

२—अर्थात्—मरने जाने वाला ही—उसका कीजिए याद पृ० ५१-से-५०

जिसका भरोसा हाथी में है। तब फिर उसकी उच्चता कैसे न मानी जाए, जिसे हाथी के युद्धप्रहार का विश्वास प्राप्त है और उसके विरुद्ध हाथियों को सहायतार्थ बुलाकर क्या प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है' ?[1]

यह भारतीय युद्ध पद्धति के जिसमें हाथी एक प्रमुख भाग लेते थे सिद्धान्तों के पूर्णतः अनुकूल था। बहुत से शूरवीर हाथियों की तरंगों का शिकार हो गए। महत्वपूर्ण अवसर पर हाथियों की भगदड़ से उत्तम सेनाओं का नाश हो गया केवल हाथियों के दोष के कारण कई सम्पूर्ण साम्राज्य हाथ से जाते रहे। हेमू इसका अपवाद न था। घातक घाव के कारण उसका हौदे में गिरना सेना की भगदड़ के लिए एक संकेत मात्र था। उसके दो धुरंधर सेना नायक शादी खाँ और भगवानदास का भी गौरव मय अन्त हुआ। उसके अपने निकट सम्बन्धी भाई रमैया और भतीजे महीपाल विजय तथा संकटकालीन परिस्थिति पर काबू न पा सके। वे सब भाग खड़े हुए। विश्वास जताने के साथ वे अलवर लौट गए और अपने अनिष्ट की प्रतीक्षा करने लगे। अफगान शूरवीर भी देश के विभिन्न भागों में अपने गढ़ों की ओर भाग निकले। जैसा कि आगे की घटनाओं से ज्ञात होगा अकबर को इन शेर-दिल अफगानों के विरुद्ध २ से ६ वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। अलवर, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार और पूर्व में कुछ अन्य स्थान तथा गढ़ अफगानों और हेमू के स्वामी भक्त सेवकों के अधिकार में बने रहे और मुगलों द्वारा उन पर एक-एक करके ही अधिकार किया जा सका।

१—अबुल फजल-अकबरनामा—जिल्द २—पृ० ६४।

अध्याय—८

हेमू का शहीद होना

हेमू के हाथी का महावत शत्रुओं को अपने सामने देखकर, प्राण जाने के भय से हाथी को जहाँ शाह कुली खाँ ने निर्दिष्ट किया वहीं हाँक ले जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। जैसे ही महावत ने हाथी को अन्य हाथियों से अलग किया उसे शत्रुओं के योद्धाओं के एक दल द्वारा घेर लिया गया और पानीपत से ५ मील दूर अकबर के शिविर में ले जाया गया। वहाँ क्या घटित हुआ इसका समकालीन वृत्तान्तकारों द्वारा विविध प्रकार से वर्णन किया गया है।

हेमू की हत्या का सबसे अधिक प्रामाणिक उल्लेख अल-बदाऊनी का है जो कहता है[1]

"...... और शेख गदा-ए-कम्बोह तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों ने सम्राट से कहा—'क्योंकि महामान्य का धर्मद्रोहियों के विरुद्ध यह प्रथम युद्ध है इसलिए आपको इस काफ़िर पर अपनी तलवार भोंकनी ही चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के कार्य का प्रतिफल महान होगा।'

लेकिन सम्राट ने उत्तर दिया—"मैं अब इस पर प्रहार क्यों करूँ, क्योंकि यह तो पहले ही मृत-प्राय है? यदि उसमें चेतना और क्रियाशीलता शेष हो तो मैं ऐसा करूँगा।"

इसके पश्चात् बैरम खाँ ने स्वयं अपनी तलवार हेमू के शरीर में भोंक दी और गदा-ए-शेख तथा अन्य व्यक्तियों ने जो वहाँ उपस्थित थे उसका अनुसरण किया। बदाऊनी आगे कहता है—"इस प्रकार यह उक्ति पूर्ण हुई—'उसको मारने में क्या लाभ जो जलाया जाने वाला हो?'[2] और उन्हें उस तिथि के लिए निम्नलिखित स्मरण-तिथिसूचक-पद उचित लगा—

"यदि धन मान और कीर्ति से महान् किन्तु
विधि के मत द्वारा हिन्दू हेमू के हाथ आ गई
तो माहात्म्य अकबर के बढ़ शाह जिसकी कीर्ति आकाश तक पहुँची,
ईश्वर की सहायता से उस पापी मूरत वाले हिन्दू हेमू को बंदी बना लिया।

१—अल-बदाऊनी मुन्तखाब उत-तवारीख—पृ० ९ १२।
२—अर्थात्—नरक जाने वाला हो—तुलना कीजिए पाद पृ० २१-से ६०

शक्ति रूपी कलम से स्थायी लेख-पत्र पुस्तककर्ता के लेख में
उस दिवस के संबंध में लिखा उसने हिंदू हेमू को पकड़ लिया। [१]

इतिहासकारों द्वारा इस कथा को अधिकृत कहा गया है, जो अकबर के दरबार के मुसाहिबों द्वारा आविष्कृत कही जाती है। [२] अहमद यादगार और डच लेखक वानडेन ब्रौके जिसने अपनी सूचना एक 'साम्राज्य के विश्वस्त वृतान्त' से ली थी, के स्पष्ट कथनों द्वारा, इसी का खंडन भी किया गया, यह इस प्रकार है—

"हेमू के सैनिक" अपने सेनापति को अकेला छोड़कर, विभिन्न दिशाओं को भगे गए, जिससे मुगलों को समस्त युद्ध के सामान तथा हाथियों पर अधिकार मिल गया। और हेमू को जो युद्ध के बीच स आंख में एक तीर लग जाने के कारण भागने को बाध्य था लेकिन शाह कुली महरम-ए बहारमी द्वारा पकड़े जाने पर और शिविर में वापस लाये जाने पर अकबर के सामने प्रस्तुत किया गया जो कि वहाँ पर हेमू तथा पठानों की पराजय का समाचार जानते ही शीघ्रता से आ गया था। अकबर ने अली कुली खां की प्रार्थना पर, एक ऐसे कार्य द्वारा जो एक युवराज की शान के विरुद्ध था खड्ग से अभ्यर्पित बंदी की गर्दन को अलग कर दिया। और सिर को दिल्ली के द्वार पर लटका देने का आदेश दिया। [३]

१—शब्द "विभिष्ठ हेमू-र्ठं" ९६४ तिथि प्रकट करते हैं।
हेमू-र्ठ के अन्तिम अनुस्वार (र्ठं) के उच्चारण का लोप हो जाता है जैसे "अमीनाराम के लिए "अमीनराराम में पाठ-नु ५१ ७।

२—विन्सेंट स्मिथ मुगल-ए-आजम अकबर पृ० ९६।
१४ वर्ष का बालक जैसा था जिसका आज्ञापालन की आशा रखने का अधिकार था के निर्देशों का पालन करने के लिए उचित रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता न यह समझ लेने का उचित कारण ही है कि उस समय बालक अपने अधिकारियों से अधिक सन्देह करता था। अधिकृत कथा के पहले ही एक अधमरे असहाय बंदी को मारने के लिए अनिच्छा की एक महान भावना ने उसको अपने अभिभावक के निर्देशों का पालन करने-को मना कर देने को बाध्य किया ऐसा दरबारी मुसाहिबों का बाद का आविष्कार प्रतीत होता है।

१—रायल एशियाटिक सोसाइटी का जनरल (पत्रिका) १९१९ पृ० ५२७-५३५
The death of Hemu De laet, de Imperio Magol sive Indie Vera, Lugduni Batav run Eljevir १६३१
पृ० १०८ २८१। अलग पृष्ठ संख्या वाले दो विषय हैं दोनों में तिथि १६३१ ही है। मनुच्छेद Vanden Broecke द्वारा लिखित Fragmentum Indicae Historiae में से है। (स्मिथ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद) (De laet ने Vanden Broecke के उक्त (पाठ) से अनुवादित किया है)।

अहमद यादगार द्वारा किया गया वर्णन कुछ सीमा तक "कप" लेखक से मिलता है, लेकिन अन्य वर्णनों से बहुत भिन्न है। वह कहता है—

"ऐसा हुआ कि सर्वशक्तिमान के विधान से हेमू के मस्तक में एक तीर लगा। उसने अपने हाथी के महावत से हाथी को रणक्षेत्र से बाहर ले चलने को कहा.........इस आकस्मिक दुर्घटना का समाचार जब शाह कुली बेग से बताया गया तो वह हाथी के पास आया और उस हाथी को बैरम खां के सामने उपस्थित किया गया। बैरम खां ने अपने को विजयावस्था में दिखाते हुए, और धन्यवाद देते हुए, हेमू को हाथी से नीचे उतारा तत्पश्चात उसके हाथ बांध दिये उसको भाग्यशाली युवक राजकुमार के सामने ले गया और कहा—"यह हमारी प्रथम सफलता है इसलिए महामान्य अपने पुनीत कर से इस धर्म द्रोही का तलवार द्वारा मार डालें। फिर युवराज ने उसे मार डाला और उसके सिर को उसके मलीन शरीर से अलग कर दिया। (नवम्बर ५ सन् १५५६ ई०)"।[1]

अकबर के पुत्र और उत्तराधिकारी जहांगीर के संस्मरणों द्वारा इस घटना का एक और रुचिकर वर्णन प्राप्त हुआ है। उसमें लिखा है —

"कई व्यक्तियों ने हेमू को वह जैसी दशा में था वैसा ही बादशाह (अकबर) के पास तुरन्त भेज दिया। बैरम खां ने कहा कि यह उचित होगा यदि बादशाह स्वयं अपने हाथ से धर्मद्रोही का तलवार से हनन करें, ताकि "गाजी" (धर्मवीर) की उपाधि प्राप्त करके उसका प्रयोग शाही फरमानों में कर सकें। बादशाह ने उत्तर दिया "मैंने इससे पहले ही उसके टुकड़े कर दिए हैं" और समझाया "एक दिन काबुल में मैं ख्वाजा अब्दुस्समद शीरीं-कलम की उपस्थिति में एक चित्र की नकल कर रहा था जब कि मेरी तूलिका से एक आकृति बनी जिसके अंग एक दूसरे से पृथक और विभक्त थे। उस समय पास निकट के उनमें से एक ने पूछा 'यह किसका चित्र है?' मेरे मुंह से निकल गया कि 'यह हेमू का है।'"

"उसके (हेमू के) खून से अपने हाथ को अपवित्र न करके उसने अपने सैनिकों में से एक से उसका सिर काटने को कहा।"[2]

कथा का यह स्वरूप जहांगीर ने दरबार में लोगों से सुना होगा और इस प्रकार अपनी जीवनी में उसे सम्मिलित करने का अवसर प्राप्त किया। जैसा कि विन्सेंट स्मिथ कहता है यह आश्चर्यजनक है कि युवराज (जहांगीर)

1—अहमद यादगार की तारीख-ए-शाही (इलियट और डासन) जिल्द ५—पृ० ६५-६६ और ६ की नोट का भाग। अन्य गणना के अनुसार हेमू का वध २२.११.५६ को हुआ था।

2—जहांगीरनामा अंग्रेजी अनुवाद बेवरिज और रोजर्स। —

द्वारा किया गया वर्णन, जिसकी सत्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता अबुल फज़ल द्वारा किए गए वर्णन से भिन्न है। जब हेमू अकबर के सामने लाया गया उस समय जो कुछ हुआ उसका सबसे अधिक ब्यौरेवार वर्णन अकबरनामे से उपलब्ध है—

'... जब कि शूरवीरों में से प्रत्येक को उपस्थित किया जा रहा रहा था और वे सांसारिक और आध्यात्मिक पुरस्कार पा रहे थे शाह कुली खाँ बंदी हेमू को वहाँ लाया। यद्यपि उन्होंने उससे प्रश्न किये उसने अज्ञानता (जहालत) के कारण उत्तर नहीं दिया। शायद वह बोल सकने में असमर्थ था या वह लज्जा से आक्रांत था और कुछ कहने के लिए अनमना था। बैरम खाँ खान खाना ने महामान्य शाहंशाह से इस 'राजद्रोह की राशि' को अपने पवित्र हाथ से मारने की और एक पवित्र युद्ध द्वारा विशेषता प्राप्त करने की प्रार्थना की ... ।[1]

अबुल फज़ल के अनुसार अकबर ने हेमू की हत्या करने में बड़ी अनिच्छा प्रकट की जितना ही राजभक्तों ने उससे आग्रह और अनुरोध किया वह उतना ही उसके प्रतिकूल हो गया। बालक सम्राट को "अपने मस्तिष्क के पाक दामन पर ऐसी धूल के धब्बे न पड़ने देने का" निश्चय करने का भी श्रेय दिया गया है और यदि ऐसी घटना हो भी "तो वह अपनी तलवार को ऐसे मरणासन्न व अपवित्र शत्रु के रक्त से कैसे रंजित करेगा?" यह ठीक ऐसा ही वर्णन है जो एक खुशामदी चाटुकार दरबारी लेखक की लेखनी से ही फूट सकता है जैसा कि विंसेंट स्मिथ द्वारा भी उल्लिखित है। उसके अनुसार "पानीपत के युद्ध के समय अकबर पुनर्जन्म न लिया हुआ बालक था। जो मनोरंजन में मग्न था और अपने परिपक्व-पुरुषत्व की भावनाओं से युक्त न रहा होगा। अतः उसमें अपने शिक्षक-अभिभावक के आदेशों का पालन न करने का साहस न था और इसीलिए तलवार से प्रहार किया। फिर 'गाजी' की उपाधि धारण करने का मोह और आकर्षण भी बालक सम्राट द्वारा रोकने के लिए अत्यधिक उत्तेजक था।[2]

इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि अकबर ने अपने शासन के प्रथम वर्ष में गाजी की उपाधि धारण कर ली थी। इस बात पर कि यह उसके द्वारा अपने हिंदू प्रतिद्वंद्वी हेमू का हनन करने पर धारण नहीं की गई थी संदेह करने का कोई कारण नहीं है। अपनी अधिकृत जीवनी में जहाँगीर द्वारा किये गए कथन में यह स्पष्टतः अंकित है कि अकबर को उपाधि प्राप्त करने के लिए ऐसा करने की सम्मति दी गई जिससे उसका प्रयोग शाही फरमानों पर हो सके।

१—अनुवादक अकबरनामा—बिव —पृ० ७१ ७२।
२—विंसेंट स्मिथ अकबर पृ ३९।

कि अकबर इस उपाधि का प्रयोग करने में गर्व समझता था और उसको कोई मनसंताप नहीं था इससे यह स्पष्ट होता है कि उसने अपने शिक्षक-अभिभावक के आदेशों का पालन किया, और जैसा इतिहासकार फिरिश्ता द्वारा उल्लिखित है या तो उसने तलवार से प्रहार किया और या तलवार से केवल हेमू का सिर छू दिया।

घटना के बारे में दिए गए विविध उल्लेख बहुत से सूक्ष्म विवरणों में एक-दूसरे से विस्तृत रूप से भिन्न हैं। मुख्य प्रश्न निस्सन्देह रूप से केवल एक विषय को निश्चित करता है— अकबर ने शिक्षक-अभिभावक की आज्ञा मानी अथवा नहीं ? क्या बैरम खाँ के आदेशों का पालन करते समय उसने कुछ दुविधाएँ अनुभव कीं ? क्या उसने अपने सेवकों में से किसी एक को कार्य सम्पन्न करने को कहा या स्वयं (इसके लिए) कष्ट उठाया ? अबुल फजल का रोचक व अलंकारमय वर्णन, बदायूनी का सरल उल्लेख तथा अहमद यादगार और हीलायत के पूर्ण रूप से विरोधी वर्णन आज पाठक को भ्रम में डाल देते हैं। विविध वर्णनों का साथ साथ में अध्ययन करने पर, अकबर की आयु का विचार में रखते हुए और वे परिस्थितियाँ जिनमें उसे शिक्षा और आदेश दिए जा रहे थे एक व्यक्ति को इस परिणाम पर पहुँचाती हैं कि फिरिश्ता द्वारा दिया गया हेमू की आहुति का निम्नांकित वर्णन पूर्वगामी वर्णनों से कहीं अधिक वास्तविक लगता है।

जब हेमू को उपस्थित किया गया बैरम खाँ ने बादशाह से स्वयं अपने हाथ से धर्मद्रोही को मारकर एक प्रशंसा योग्य काम करने के लिए प्रस्ताव किया। अकबर ने अपने वज़ीर की इच्छा पूर्ति करने के लिए अपनी तलवार खींची और बन्दी का सिर छूकर 'गाजी'[1] के विशिष्ट नाम का पात्र बन गया जब कि बैरम खाँ ने अपनी निजी तलवार खींचकर, एक ही प्रहार से हेमू के सिर को उसके धड़ से विलग कर दिया।[2]

धड़ से सिर के अलग होने पर, हेमू के सिर को प्रदर्शन की शिक्षा देने के लिए काबुल भेज दिया गया और उसका धड़ दिल्ली से लाया गया और मुगलों के शत्रुओं को चेतावनी के रूप में फाँसी की टिकटी पर लटका दिया गया। (अल-बदायूनी के कथनानुसार यह घटना १५ नवम्बर १५५६ ई० को हुई थी।

युद्ध की लूट का माल—

विजयी मुगल सेना द्वारा जिसने तुरन्त दिल्ली नगर की ओर कूच किया, लूट के माल के रूप में लगभग १५०० हाथी और असीमी राशि में

१—इसका अर्थ है वह व्यक्ति जिसने युद्ध में अपने कार्यों द्वारा धर्मद्रोहियों को मारा हो और अपने धर्म का प्रचार किया हो।

२—फिरिश्ता ब्रिग्स का अंगरेजी अनुवाद जिल्द २ पृ० १८४ १९०।

कोषागार एवं भण्डार की जिसे कल्पना भी लोभन में शक्तिहीन है हस्तगत किया गया ।[1] पानीपत से लेकर दिल्ली तक मार्ग में कोई विरोध नहीं हुआ। अबुल फजल के शब्दों में—"दुर्भाग्यशाली शत्रु ने तुरन्त अपनी पीठें दिखा दी और भागने में भी अपनी सुरक्षा समझी। साहस रूपी जंगल के शेरों ने तीरों तथा युद्ध के भालों के प्रहारों द्वारा महागजों को उनके पहाड़ों (हाथियों) की चोटियों पर से सिर के बल नीचे गिरा दिया और पर्वत सदृश गजों को एक तूफान की भाँति (भाग) जाने के लिए बाध्य कर दिया।[2] विजयी मुगल सैनिक भागनेवालों की अविवेकपूर्ण हत्या में और लूट का माल एकत्र करने में रत हो गए। उन सैकड़ों और हजारों सैनिकों के अतिरिक्त जो रणक्षेत्र से भागते समय घोड़ों और हाथियों द्वारा कुचल गए होंगे रणभूमि में लगभग ५००० व्यक्ति नष्ट होगए। सिकंदर खाँ उजबेग को एक सैन्यदल के साथ भागनेवालों का पीछा करने के लिए भेजा गया। उसे विशाल लूट का माल मिला। मुगल सेना तत्पश्चात् शीघ्र ही दिल्ली में प्रविष्ट हो गई और अकबर भी पानीपत से आ पहुँचा। उसने 'व्याख्यान-मंच' से एक बार फिर से खुतबा घोषित कराया वहाँ वह एक मास ठहरा। और प्रतिभाशाली अमीरों को आगरा सम्भल और अन्य नगरों के सूबेदार के रूप में नियुक्त किया गया।[3] मुगल इतिहासकार के कथनानुसार "नगर की आम जनता ने बहुत बड़ी शान्ति पाकर उसका स्वागत किया क्योंकि उन्हें आशा थी कि मुगल सम्राट की वापिसी' दिल्ली को और अधिक विध्वंसक युद्ध और परिणामस्वरूपहोने वाले विनाश से बचा सकेगी।

१—अल-बदायूनी मुन्तखब उत्-तवारीख पृ ९ १८

२—अबुल-फजल अकबरनामा—जिल्द २ ३१ ७२

३—अल-बदायूनी मुन्तखब उत्-तवारीख पृ० ११

अध्याय—६

परिणाम व प्रतिकार

दिल्ली पहुँचकर, अकबर ने बैरम खाँ के परिवार के मुसाहेब पीर मुहम्मद खाँ को मेवात की ओर भेजा जहाँ हेमू का खजाना जमा किया हुआ कहा जाता था। उस स्थान का शासक हाजी खाँ था और हेमू के कुटुम्बियों ने वहीं अलवर में शरण ग्रहण की थी। अकबर के शासन के प्रथम वर्ष की समाप्ति के पूर्व अर्थात् जनवरी १५५७ ई० में पीर मुहम्मद ने हेमू के जन्म-स्थान देवली सचरी (या सचारी) तक अकबर की सरकार पर अधिकार कर लिया।[1]

हेमू के वृद्ध पिता को फांसी—

हेमू के वृद्ध पिता राय पूरण मल जो ८० वर्ष के थे पकड़ लिए गए और मौलाना (पीर मुहम्मद) के सामने लाये गए। वहाँ उनसे इस्लाम धर्म को अंगीकार करने को या मरने के लिए प्रस्तुत होने को कहा गया। इसका उन्होंने उत्तर दिया—[2]

८० वर्ष तक मैंने अपने भगवान की अपने धर्म के अनुसार उपासना की है। तो मैं अब अपने जीवन की शाम होने पर उसे क्या बदल दूँ, और वह भी केवल जीवन के भय से और बिना यह समझे कि वह तुम्हारी पूजा में तुम्हें कैसे बाधा पहुँचाती है। पीर मुहम्मद ने ऐसे सम्मानपूर्ण उत्तर पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसी वर्ष के वृद्ध और दुर्बल व्यक्ति को तुरन्त फाँसी पर लटका दिया। अबुल फजल के मतानुसार "पीर मुहम्मद ने उसे मार डाला। उसका लूट का माल एकत्रित करके वह अकबर के पास लौट आया।"[2]

महारानी का बच निकलना—

अल बदाऊनी हेमू की पत्नी के जिसको मुगल सेनानायक पकड़ी न जा सके के साहस पूर्ण भाग निकलने का एक विशद वर्णन छोड़ गया है—

'और, पीर मुहम्मद खाँ और मेहदी कासिम खाँ का संबंधी हुसैन खाँ और कई अन्य सेनानायकों ने मुगल खाँ के साथ मिलकर दिल्ली से सामने

१—अबुल फजल-अकबरनामा-जिल्द २ पृ० ७१-७२।
२—अकबरनामा से उद्धृत ... आईन-ए-अकबरी पृ० ३३९।

वालों का पीछा किया, और अलवर से होते हुए वे हेमू की पत्नी तक पहुँचे जिसके साथ सोने से लदे हाथी थे। महारानी ने स्वयं तो कुछ किले और बैजवाड़ा में पहाड़ और जंगल का सहारा लिया और सोना पीछे छोड़ दिया जिसका बहुत बड़ा भाग बैजवाड़ा प्रदेश के गँवारों के हाथ लगा। फिर भी राजभक्तों की सेना के हाथ जो भाग लगा वह इतना बड़ा था कि उन्होंने ढाल भर भर के उसे बाँट लिया और 'निसार-ए-जर,' सोने के टुकड़ों का बिखेरना तिथि (९६४) प्रकट करता हुआ पाया गया। और सड़क पर, जिससे महारानी गई सोने की सिल्ली व सिक्कों की इतनी बड़ी संख्या गिरी थी कि बहुत वर्षों तक यात्रियों और पथिकों को प्राप्त होते रहे।[1]

हाजी खाँ का भागना—हेमू के पिता से निपटकर और हेमू की पत्नी के धन निष्क्रमण को रोकने में असफल होने पर मुगलों ने हाजी खाँ को जो मेवात का सूबेदार था पकड़ना चाहा। उसने बुद्धिमत्ता और सेना एकत्रित करने की कुशलता में पहले ही अपने को प्रसिद्ध कर लिया था और उसने हेमू के साथ साथ दिल्ली के संग्राम में विजय प्राप्त की। लेकिन इस बार वह विजयी सेना की शक्ति से डर गया और उसके पहुँचने से पूर्व ही भाग गया।[2] उसके भाग जाने के फलस्वरूप मेवात की सम्पूर्ण सरकार मुगलों के अधिकार में आ गई। हाजी खाँ दक्षिण-पश्चिम की ओर गया और मेवाड़ में प्रविष्ट हुआ। हाजी खाँ और राणा उदयसिंह के मध्य एक युद्ध हुआ। वह और उसका सहयोगी मुजफ्फर खाँ शेरवानी वीरता से लड़े और उन्होंने राणा को हरा दिया। फलस्वरूप अजमेर, नागौर और समीपवर्ती प्रदेश हाजी खाँ के हाथ आ गये। बाद में हाजी खाँ बसा नरी ने मुगलों और अपने तथा हेमू के एक अन्य गुलाम सदाम खाँ के बीच राजीनामा कराने में बहुत विशिष्ट भाग लिया। लेकिन तत्पश्चात् शीघ्र ही दोनों गुजरात में जाकर, जब[3] कि बैरम खाँ ने भी पराजय व निष्कासन के पश्चात वहाँ शरण ली तो मूसा खाँ फौलादी और जमाल के हाजी खाँ ने उसका पाटन में स्वागत किया। वहीं पर मुबारक खाँ अफगान द्वारा बैरम खाँ की हत्या की गई थी। हाजी खाँ कुछ समय के लिए मुगल-दरबार में गया लेकिन पुनः भाग खड़ा हुआ। वह ९७० में आसफ खाँ के विरुद्ध सोमा में लड़ा और मारा गया।

सिकन्दर सूर का पीछा—

जब कि हेमू अपनी विशिष्ट चेष्टा द्वारा दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया था और मुगल उसको नष्ट करने की तैयारी में लगे थे [illegible] ख्वाजा को सिकन्दर का जिससे उन्हें पीछे से भय हो सकता था विरोध करने के लिए नियुक्त किया था। परन्तु खेद है। हेमू और सिकन्दर के बीच कोई मिली जुली

१—अल-बदायूनी मुन्तखाब-उत्-तवारीख पृ ?
२—अबुल-फजल-अकबरनामा जिल्द—२ पृ ७१-७२।
३—अल-बदायूनी मुन्तखाब उत-तवारीख २८ ४, ११।

सिवा और कोई सहयोग न था, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुगल एक के ऊपर ध्यान केन्द्रित कर सके और दूसरे को रोके रहें। जैसे ही दूसरे मुगल सेनानायक स्वतन्त्र हो सके उनको लाहौर भेज दिया गया। लेकिन इसी बीच मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी ने एक साहस कार्य किया। एक ओर तो उसने अफगानों से "शेख-ए इस्लाम" की उपाधि और दूसरी ओर मुगलों से "मखदूम उल-मुल्क" की उपाधि प्राप्त की।[1] उसने पंजाब में कहा कि वह मुगलों की सेवा में है और सिकन्दर को पहाड़ियों से बाहर निकालने के लिए आमंत्रित किया और राजस्व की वसूली के लिए निकला। खिज्र खां सिकन्दर का प्रतिरोध करने के लिए लाहौर नगर से चला। जब वह चमयारी शहर में पहुँचा तो सिकन्दर ने एक बृहत सेना के साथ उसका सामना करने के लिए कूच किया। खिज्र खां का [illegible] जिसमें ७००० चुने हुए व्यक्ति थे पराजित हुआ और वह भागकर लाहौर चला गया। वस्तुतः यही वह समय था जब कि पानीपत का निर्णायक युद्ध लड़ा गया। मुगल सेनाएं दिल्ली पहुँची ही थी कि दिल्ली में समाचार प्राप्त हुआ कि लाहौर से [illegible]० मील के अन्तर पर एक स्थान चमयारी की सीमाओं पर सिकन्दर के सम्मुख खिज्र खां पराजित हो गया था और लाहौर पहुँच गया था। "महामात्य (अकबर) ने जालंधर के लिए प्रस्थान किया ही था कि सिकन्दर ने एक बार फिर शिवालिक पहाड़ियों का आश्रय लिया तब पीछा करती हुई शाही सेना [illegible] और दाहमीरी तक प्रविष्ट हो गई"।[2]

यदि पानीपत में उनकी हार हो गई होती तो सिकन्दर की ओर से मुगलों को जो भय था वह वास्तव होता। वह काबुल को उनकी वापिसी के मार्ग को काट देता और हिन्दुस्तान की सीमा में आये जो सिपाही भी वह सरहिंद के मुगलों से कभी एक न हो पाती। लेकिन पानीपत में हेमू की हार ने अफगानों की मृत्यु का घण्टा बजा दिया। यद्यपि सिकन्दर कुछ समय तक का प्रतिरोध करता रहा और अपने को मानकोट के दुर्ग में बन्द रखा फिर भी मुगलों ने अब कूटनीति का सहारा लिया और अफगान सामन्तों से मिलकर सैनिकों का युद्ध करवा देकर नौकरी में शामिल करके उनके प्रतिरोध को कम करना आरम्भ किया। जब कि घेरा डालने का कार्य चल रहा था। सिकन्दर के समर्थकों ने एक-एक करके उसका साथ छोड़ना आरम्भ किया और मुगल दरबार में उपस्थित हो गए। सैयद महमूद बारहा गाजी खां सूर के साथ शाही सम्राट के पास आया और २० वीं रमजान ९६४ तदनुसार—१५५८ ई० को हाथी भेंट किए। वहाँ दो सेनानायक शान्ति प्रस्ताव भी लाए

१—अबुल फजल—अकबरनामा जिल्द—२ पृ० ७१।
२—अल-बदायूनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख-पृ० ११।

और सिकन्दर को अफ़गानों से खान ज़मान द्वारा विजित कर लेने पर जौनपुर की जागीर भी भेंट अर्पित की गई। लेकिन अफ़गानों के गढ़ पर जो उन्होंने हेमू के मंत्रित्व में सुदृढ़ किए थे अधिकार करना एक कठिन कार्य था जैसा कि अकबर के शासन का प्रारम्भिक इतिहास दर्शाएगा।

लखनौ का युद्ध—

खान ज़मान अफ़गानों का दमन करने के लिए पूर्व की ओर बढ़ा। हसन खां बचगोटी ने २० हज़ार व्यक्तियों के साथ उसका सामना किया लेकिन खां ज़मान और बहादुर खां संख्या में कम होते हुए भी लखनौ में अफ़गानों को हराने में सफल हुए।

जौनपुर—

जौनपुर में अगला संघर्ष बंगाली अफ़गान से हुआ था अपने को सुल्तान बहादुर कहता था और जिसने सिक्के जारी किए थे तथा बंगाल में अपने नाम से खुतबा पढ़वाया। पहले मुगल फौजों की जौनपुर में बुरी हार हुई, लेकिन खान ज़मान ने उत्तम-युक्ति से पराजय को विजय में बदल दिया। यह विजय बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि इससे एक बार पुनः मुगलों के लिए पूर्वी प्रदेशों के द्वार खुल गए। बहुत सा-लूट का माल तथा विशाल भंडार खान ज़मान के हाथ लगा जो उस समय अन्य आक्रमणों के लिए रखा था।[1]

ग्वालियर—

वर्ष ९६६ तक अर्थात् १५५८ में ग्वालियर अदली और हेमू के एक दास सुहेल[2] खां के अधिकार में बना रहा। मुगल सेनाओं ने उसे घेर लिया उसने दया की भीख मांगी और चाबियां सौंप दी। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के दो वर्ष पश्चात् १५५८ ई० में ग्वालियर का दुर्ग अकबर के अधिकार में आ गया।

रणथंभौर—

यह दुर्ग अदली और हेमू के एक दास संग्राम खां[3] के अधिकार में बना रहा। लेकिन १५५८ ई० में मुगलों द्वारा उस पर अधिकार किए जाने के भय से उसने इसे राजा सुर्जन हाड़ा को बेच दिया। कुछ समय पूर्व उसने हिन्दू बेग मुगल के विरुद्ध घोर संघर्ष किया था लेकिन और आगे चल कर सफला

१—अल बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० १८ १९।

२—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १८ १९ तारीख-ए-अल्फी का ईलियट के हस्तलेख में 'सुहेल' है अबुल फ़ज़ल कहता है कि सलीम अदली ने ग्वालियर का प्रभुत्व इस दास को दे दिया था।

३—तबकात-ए-अकबरी में झुझार खां लिखा गया है ईलियट ५ २६०।

पश्चिम पाकर उसने शान्ति की विनती की। हाजी खाँ भीकन बसावन और बल बदाऊनी के पिता मध्यस्थ बने और संग्राम खाँ कुछ शर्तों पर दुर्ग को त्याग देने के लिए तत्पर हो गया। लेकिन जब मुगल अमीरों ने नकद धन मास के रूप में मुआवजे के देने में विलम्ब और टालमटोल करना आरम्भ किया तो संग्राम खाँ ने इस दाय मुजैन हाड़ा को सौंप दिया और हाजी खां के साथ गुजरात चला गया। इस प्रकार हेमू के यह दो अभिमानी सहगामी सेना-नायक मुगलों के राप से बचने के लिए गुजरात के अधिक सुरक्षित प्रदेश में जाकर बस गए। उनका इसका आभास तक न था कि एक दिन हेमू का सच्चा शत्रु और आकर्षणी बैरम खाँ एक अफगान के हाथों अपना अन्त कराने के लिए गुजरात आएगा।[1]

अदली का सर्वनाश और मृत्यु—

हेमू की मृत्यु अदली के भाग्य के लिए एक घातक धक्का था। वह हेमू ही था जो उसके लिए एक स्तम्भ था और उसके पीछे अथवा तूफान पर उसकी सहायता को आ सकता था। जैसे ही उसकी मृत्यु का समाचार पूर्वी प्रदेशों में पहुँचा बंगाल के मुहम्मद शाह पुत्र ने जिसे हेमू ने हराया था तथा कालपी में मार डाला था, का पुत्र खिज्र खाँ अदली से बदला लेने के लिए, उसके विरुद्ध विद्रोह के लिए उठ खड़ा हुआ।[2] उसने मौज़ में सूरजगढ़ पठान की आज्ञा दी। अदली का युद्ध हारना पड़ा और वह विनष्ट हो गया। 'उसका शरीर जो पूर्णतः मृत नहीं था और जो खिज्र खाँ के आदेशाधीन था एक हाथी के पैर से बाँध लिया गया और खींचा गया।'[3] इस प्रकार पूर्वी प्रदेशों में अदली का शासन ६ वर्ष तक रहा और उसकी मृत्यु ९६४ हिजरी अर्थात् १५५८ ई में हुई।

चुनार पर अधिकार –

पूर्व में अदली के राज्य का केन्द्र चुनार का दुर्ग अदली के एक दास जमाल खाँ के अधिकार में बना रहा। जब उसने सुना कि मुगल खान जमान के नेतृत्व में पूर्व की ओर बढ़ रहे हैं तो उसने दुर्ग के आत्म-समर्पण की शर्तों को निश्चित करने के लिए एक प्रतिनिधि मुगल दरबार में भेजा। मुगलों ने इसके निबटारे के लिए मेहर अली बेग को भेजा। उसके पास शर्तों से युक्त एक फरमान था।[4] जमाल ने दूत का बड़ा हार्दिक स्वागत किया और उसको

---

[1]—मुन्तखबउत्तवारीख-मुल्ला बदाऊनी उल-तवारीख पृ ४१।
—फिरिश्ता पृ० १४७ से १४९।
[3]—नियामतउल्ला जिल्द १ पृ० १६१ से १६३।
[4]—मुन्तखबउत्तवारीख-मुल्ला बदाऊनी उल-तवारीख पृ० २८ २७।

शरशाह और सलीम शाह के राजमहल तथा दुर्ग की सभी सुरक्षा सम्बन्धी युद्ध सामग्री दिखाई। लेकिन जब जमाल खाँ को सन्धि का फरमान जिसमें उसे जौनपुर में पाँच परगने प्रदान किये गए थे दिखाया गया तो उसका भ्रम दूर हुआ क्योंकि उसकी आशाएँ कुछ इससे अधिक थीं। उत्तर में उसने मेहर अली के सामने अपनी निजी शर्तें रखीं और मुगल दरबार से अपने प्रार्थना पत्र का उत्तर आने तक उसे रोक रखने का प्रयास किया। इसी बीच खान जमान और फथ खाँ अफगान जो रोहतास दुर्ग में था के साथ उसका समझौता सफल हो हो गया। मेहर अली को षड्यंत्र की गन्ध आई और फथ खाँ की आशानुकूल विमुखता और खान जमन की अवज्ञा के कारण उसके कान खड़े हो गए। उसने बड़ी व्यग्रता में गंगा के किनारे-किनारे बिना किसी साथ के दुर्ग से भागकर बच निकलने की चेष्टा की। अपने ध्येय में असफल होकर मेहर अली आगरा लौट गया। चुनार का दुर्ग जमाल खाँ के अधिकार में रह गया।[1] इसका आत्म-समर्पण करा लेने का मुगलों का प्रथम प्रयास सफल न हो सका।

कुछ समय पश्चात चुनार का दुर्ग अदली के एक दूसरे दास फत्तू[2] व उसके पुत्र शेरखाँ के अधिकार में रहा। हिजरी ९६८ में खान जमन[3] ने उनके विरुद्ध एक युद्ध किया जब कि वे एक पर्याप्त बड़ी सेना के साथ आए थे। खान जमन को विजय प्राप्त हुई। फत्तू ने जिसकी ख्याति पहले ही चारों ओर फैल गई थी मुगल दरबार के पास दुर्ग के आत्म समर्पण का प्रस्ताव करते हुए याचना-पत्र भेजा। इस समय खान जमन पर अवज्ञा का सन्देह किया जा रहा था और अकबर स्वयं कड़ा (जिला इलाहाबाद में) की ओर बढ़ रहा था। फत्तू को ठिकाने से लगाने के लिए शेख मुहम्मद (जिसका कि फत्तू एक शिष्य था) और आसफ खाँ गए और उन्होंने चुनार दुर्ग पर शान्ति पूर्ण अधिकार कर लिया। तत्पश्चात फत्तू ने मुगलों की नौकरी कर ली और बाद में नगरकोट और कांगड़ा के घेरे में मिर्जा युसुफ खाँ इस्माइल कुली खाँ राजा बहादुर और अन्य अमीरों के साथ भाग लिया। अल-बदाऊनी द्वारा उसका इन शब्दों में उल्लेख है—"अदली का एक दास[4] मुसुम्माती अली फत्तू।

अफगानों के विरुद्ध नई कार्यवाही ९७२ हिजरी—१५६१ ई०

अपने को बैरम खाँ की कष्टप्रद तथा अप्रिय अभिभावकता से मुक्त करके अकबर ने कुमीलों को अपनी आधीनता में लेना आरम्भ किया। जब उसके सेना नायक आसफ खाँ ने रानी दुर्गावती से अपना संघर्ष समाप्त किया

१—२—अल बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ४२—४४।

३—अली कुली खाँ।

४—अल-बदाऊनी—पृ० ७८-८।

ही अकबर को पूर्व से समाचार मिला कि खान-ए-जमन अफगानों से मित्रता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहा था। परिणाम स्वरूप बंगाल का शासक सुलेमान कर्रानी सक्रिय हो गया। इस्लाम शाह के पुत्र सुलतान खाँ ने उनके मुखियाओं नामतः इस्कन्दर खाँ, खान-ए-आलम बहादुर खाँ और इब्राहीम के साथ मिल कर अवध में राजद्रोह के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ कर दिया। अकबर स्वयं रणभूमि में आया जैसा कि अल-बदाऊनी द्वारा निम्नलिखित शब्दों में वर्णित है[1]—

""""महामान्य शाहंशाह शक्ति सम्पन्न कृत्रिम प्रस्थानों द्वारा लखनौ आए। सिकन्दर खाँ ने युद्ध नहीं किया परन्तु खान जमन और बहादुर खाँ से मिलकर, मजनू खान ... खाँ और मजनू खाँ का विरोध करना बन्द कर दिया और अपने सब आदमियों और परिवारों के साथ जौनपुर का वापस लौटते हुए गगान नदी का पार किया और निचले देश को चले गए ।

पूर्वोक्त वर्ष के जिल-हिज्जाह मास में १ वें दिन शुक्रवार को सम्राट जौनपुर के किले पर उतरा"" "" ... उन दिनों सम्राट ने बंगाल के मालिक सुलेमान कर्रानी (जिसकी खान-जमन से घनिष्ठ मित्रता थी) के पास खान-जमन को किसी प्रकार का सहयोग अथवा सहायता देने से रोकने के लिए हाजी मुहम्मद खाँ सिस्तानी को दूत बनाकर भेजा। जब वह रोहतास दुर्ग पहुँचा कुछ अफगानों ने उसे पकड़ लिया और उस खान-जमन के पास जिनसे उनका एक प्रकार का ... था भेज दिया "" "" "" ""

खान-जमन के विद्रोह का प्रतिरोध करने के लिए अकबर ने हसन खाँ खजान्ची और महापात्र बाद-फरोश (जो शेरशाह और इस्लाम शाह के दरबारियों में से एक था और जो संगीत शास्त्र और हिन्दी कविता में अद्वितीय था) को उड़ीसा के राजा के पास (जो दूसरे राजाओं की अपेक्षा अपनी सेना व सैनिक साज के लिए विख्यात था) दूत के रूप में भेजा ताकि वह उसे खान जमन का सहयोग और सहायता देने से रोके। पूर्वी अभियानों में जहाँ अफगान पहले से ही किले के घेरा ग्रहण करने में उसका रोका जाता था। इसी बीच अली कुली खाँ ने मुनीम खाँ द्वारा सन्धि के लिए समझौता करना प्रारम्भ कर दिया। उसने भी क्षमा-याचना की। बहादुर खाँ ने भी अधीनता मान ली। अकबर ने विद्रोहियों को क्षमा कर दिया और इस प्रकार उनका प्रेम प्राप्त किया। अफगान एक बार फिर पूर्व में अकेले रह गए।

रोहतास का आत्म समर्पण—

सुलेमान कर्रानी इस समय तक रोहतास तक कूच कर चुका था पर वह अफगान मुगलों की ओर से दुर्ग के गवर्नर के रूप में कार्य कर रहा

1—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब-उत-तवारीख पृ० ७७—७८।

था) और उसका घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन -
सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर कुमार के निकट शिकार का आनन्द लेने में र खान जमन ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादु से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया। भागी कुली खाँ ने भा गोरखपुर गया था एक बार पुन दया की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति । बार और क्षमा कर दिया गया। ३ मार्च १५६६ ई तक अकबर ने सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगा सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने ती बार विद्रोह किया। वह ९ जून १५६७ ई को फतेपुर परसोहीं में पर हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया। बहादुर खाँ का फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इसके बाद लखनऊ से भाग गया और १५७१ में उस मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों क दी गईं पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा भाग मिला।

'सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुन के दुर्ग तक तथा जमा नियाह से लेकर चूहसान नदी के घाट तक बहादुर ' और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक औ एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया।'[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमा कर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान शासक ने उजबक विद्रोह के जाल में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजब मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शांति पूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। उसने मुगल सम्राट के अपने नाम से सिक्के व आदि [illegible] कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे। १५७२ ई में सुलेमान ने अंतिम साँस ली और उसका पुत्र बयाजीद उसका उत्तराधिका हुआ। लेकिन अपनी परिपक्वहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्

१—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १०४।

अपन छोटे साले हेमू और अन्य अमीरों के छल के कारण मार डाला गया।[1] बयाजीद के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को दशाम पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध संघ हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर मीरक मिलका जो कि ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई का सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में

...त हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजी... किए बिना पटना को ले लेना असम्भव था। मुगल सम्राट को ...म सैनिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ ...न के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। ... पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में ...का घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध ...एक सन्धि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा ...ति कुछ समय तक ही चला रहा। अक्तूबर १५७५ ... पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और ...का प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आगी... को दबाना किया और दास बनाया। ...ले पराजित हो गए और मुगलों को

...। द्वारा इस अवस्था में भली भाँति

मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला ...काला पहाड़ घायल होकर ...। टोडरमल ने दाऊद का मित्र न ...

पृ० १६७ से १८७ तक।

... का उत्थान और पतन

था और उसको घेर लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया ।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर भुमार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमन ने एक बार फिर मानकपुर की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस में युद्ध किया । अभी कुली खाँ ने जो गोरखपुर चला गया था एक बार पुनः क्षमा की भीख माँगी । मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया । ३ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया । लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया । वह जून १५६७ ई० को फतहपुर परसोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला ।

'सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा नियाह से लेकर चूहघाट नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।'[१]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के ...
करानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय
विद्रोह के जाल में
मुखियाओं
पूर्व ०
०

बल छोटे साले हेमू और अन्य अमीरों के द्वेष के कारण मार डाला गया।[1] बयाज़ीद के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफ़गानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति का ढोंग फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध शुरू हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ी सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर श्रीधर जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफ़गानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। गुटबन्दी का इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य का अफ़गानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में दृढ़ता से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असम्भव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में आकांक्षित सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। भाग कर करके पटना से लिया गया पर अफ़गान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम ने एक संधि सम्पन्न करा दी जबकि दाऊद द्वारा अकबर का कुछ समय तक ही बना रहा। अक्तूबर १५७५ ई० ~ बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और भाग पड़ा। राजा टोडरमल की बाकी अवरोध किया और युद्ध कराया। स्व ा गए और मुगलों को

सगर्रा में भली भाँति

वामा

ᵒर

था और उसका घेरा लिया गया । लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया ।

खान जमान का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमान ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस में युद्ध किया । अभी कुली खाँ ने भी शाहपुर बसा लिया था एक बार पुनः क्षमा की भीख माँगी । मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया । ३ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबा को अपने अधीन कर लिया था और उसके मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग से किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया । लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमान ने तीसरी बार विद्रोह किया । वह जून १५६७ ई० को फतेहपुर परसाही में पराजित हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया । बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७० में उसकी मृत्यु हुई । विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों को दे दी गईं पूर्व में शान्ति थी । मुनीम खाँ को सबसे बड़ा भाग मिला ।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के घाट तक तथा जमा नियाह से लेकर चूहसान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमान की सब जागीरें दे दीं और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया ।"[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमान के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था । लेकिन अफगान शासक ने उजबेग के विद्रोह के काल में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई । तत्पश्चात् उजबेग मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया । सुलेमान ने एक शांति पूर्ण रुख अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया । उसने मुगल सम्राट के अपने नाम से सिक्के चलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार करा लिया । इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे । १५७२ ई० में सुलेमान ने अंतिम साँस ली और उसका पुत्र बयाजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ । लेकिन अपनी परिपक्वहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १०४ ।

मतन छोड़ सामने हिन्दू और अन्य अमीरों के हाथ के कारण मार डाला गया।[१] सुलेमान के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी शक्ति प्रदर्शन की और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छेड़ा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ का आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना में शिविर लेना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर श्रीधर, जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई, की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की अविस्मरणीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सम्भवतः न बचाने के लिए बिहार में पूरी तरह एकत्रित हुए। मानसून न होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में आकस्मिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक संधि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चलता रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की मामी सत्ता में मुगलों ने एक बार फिर जमने की चेष्टा किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[२]

"अफगानों की तलवार से जुनैद से मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदाऊनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० १९७ से १८७ तक।
२—डा० आर पी त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

था और उसको घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमान का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द ले रहा था खान जमान ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ ने जौनपुर और बनारस में युद्ध किया। अभी कुछ ही समय न था गोरखपुर बसा गया था, एक बार पुनः क्षमा की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। ३ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबा को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमान ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह जून १५६७ ई० को फतहपुर परसाही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलवाकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७२ में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों को दे दी गईं जो पूर्व में शामिल थीं। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा पद मिला।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा गंगा सिपाह से लेकर चूहमान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमान की सब जागीरें दे दीं और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उनकी जागीरों की ओर विदा कर दिया।"[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमान के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान कर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान शासक ने उजबक के विद्रोह की आग में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शान्तिपूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सम्मत हो गया। उसने मुगल सम्राट के अपने नाम से सिक्के ढलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया। इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे। १५७२ ई० में सुलेमान ने अंतिम साँस ली और उसका पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी अविवेकशीलता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तखब उत-तवारीख पृ० १ ६ ।

मरने हारे वाले हेमू और अन्य अमीरों के दल में कारण मार डाला गया।[1] ग्यासीर के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली, मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध छिड़ा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद का हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर श्रीधर, जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की असफलीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में पूर्ण रूप से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में सांकेतिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक संधि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चला रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की भावी सेना में मुगलों ने एक बार फिर अपने को संघटित किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से पराजित हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[2]

'अफगानों की तलवार से जुनैद मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदाऊनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० १६७ से १८७ तक।

२—डा० आर० पी० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

था) और उसको घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान ज़मान का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान ज़मान ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ ने जौनपुर और बनारस से युद्ध किया। अभी कुली खाँ ने जो गोरखपुर भगा गया था एक बार पुनः क्षमा की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। ९ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उज़बक मुखियाओं तथा अफ़गानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान ज़मान ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह जून १५६७ ई० को फतेहपुर परसोंही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७१ में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों को दे दी गईं पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा भाग मिला।

सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमानिया से लेकर चूहसान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान ज़मान की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया।[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान ज़मान के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान कर्रानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन पठान शासक ने उज़बक के विद्रोह में भाग लेने का न बंगाल में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उज़बक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शान्तिपूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। उसने अपने साम्राज्य में अपने नाम से सिक्के चलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया। इस तरह से अफ़गान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे। १५७२ ई० में सुलेमान ने अन्तिम साँस ली और उसका पुत्र बायज़ीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी चरित्रहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

१—अल-बदायूनी-मुन्तख़ब-उत-तवारीख़ पृ० १०४।

मत छार आमे हेमू और अन्य अमीरों के षड्यंत्र के कारण मार डाला गया।[1] सुलेमान के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति भी उठा फेंकी। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बयाना पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। युद्ध में युद्ध लंबा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ी सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर भीतर जिससे शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की अप्रत्याशित सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में तेजी से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में तत्कालिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। भाग मन करके पटना से लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक सन्धि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चलता रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आधी सेना में मुगलों ने एक बार फिर आने का साहस किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्त्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से जुनैद मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदाऊनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० १६७ से १६७ तक।
२—डा० आर० पी० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन

था और उसको घेर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर चुनार के निकट शिकार का आनन्द ले रहा था खान जमन ने एक बार फिर आक्रमण की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया। असी कुली खाँ ने जो गोरखपुर चला गया था एक बार पुनः दया की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। ३ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबों को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के सहयोग के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर नये का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह जून १५६७ ई० को फतहपुर परसोही में पराजित हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और १५७२ में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गईं और दूसरों को दे दी गईं। पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा नियाहु से लेकर चूसान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसको जागीरों की ओर विदा कर दिया।"[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान शासक ने उजबक के विद्रोह के जाल में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शांति पूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। उसने मुगल सम्राट के अपने नाम से सिक्के चलवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार करा लिया। इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द लेते रहे। १५७२ ई० में सुलेमान ने अन्तिम साँस ली और उसका पुत्र बयाजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी चरित्रहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

1—अल बदाऊनी-मुन्तखब उत-तवारीख पृ० १४।

अपने छोटे सामने हेमू और अन्य अमीरों के षड्यन्त्र के कारण मार डाला गया।[1] सलीम के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूर्व में युद्ध मंजा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ा सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर मीठर जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्रशंसनीय सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में दृढ़ता से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में सांकेतिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक सन्धि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चला रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की भावी सत्ता में मुगलों ने एक बार फिर अपने का सघर्ष किया और दम लगाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्त्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली-भाँति आंका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से जुनैद से मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जगन्नाथ को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदाऊनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० १६७ से १८७ तक।

२—डा० आर० पी० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

था और उसको भर लिया गया। लेकिन मुगल सम्राट के आगमन पर, सुलेमान एक बार फिर पूर्व की ओर लौट गया।

खान जमन का असफल विद्रोह—

जब कि अकबर कुमार के निकट शिकार का आनन्द लेने में रत था खान जमन ने एक बार फिर आजमगढ़ की ओर कूच किया और बहादुर खाँ से जौनपुर और बनारस से युद्ध किया। अली कुली खाँ न जो गोरखपुर बसा गया था एक बार पुन दया की भीख माँगी। मुनीम खाँ की सम्मति से एक बार और क्षमा कर दिया गया। १ मार्च १५६६ ई० तक अकबर ने पूर्वी सूबा को अपने अधीन कर लिया था और उजबक मुखियाओं तथा अफगानों के समुदाय के किसी प्रकार के भी भय को दूर भगा दिया। लेकिन १५६७ ई० में उसे एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा जब कि खान जमन ने तीसरी बार विद्रोह किया। वह ९ जून १५६७ ई० को फतेहपुर परसोही में परास्त हुआ और एक हाथी द्वारा कुचलकर मार डाला गया। बहादुर खाँ को भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस्कंदर लखनऊ से भाग गया और१५७२ में उसकी मृत्यु हुई। विद्रोही मुखियाओं की जागीरें जब्त कर ली गई और दूसरों को दे दी गई पूर्व में शान्ति थी। मुनीम खाँ को सबसे बड़ा अंश मिला।

"सम्राट ने उसे जौनपुर और बनारस से लेकर गाजीपुर और चुनार के दुर्ग तक तथा जमा नियाह से लेकर चूसान नदी के घाट तक बहादुर खाँ और खान जमन की सब जागीरें दे दी और उसे सम्मान की पोशाक और एक घोड़े का उपहार देकर उसकी जागीरों की ओर विदा कर दिया।"[1]

बंगाल पर चढ़ाई—

जब अकबर ने खान जमन के विरुद्ध कूच किया उस समय सुलेमान करानी पूर्व में पहले से ही सक्रिय था। लेकिन अफगान धामरा' ने उजबक के विद्रोह के काम में अपने को न फँसाने में चतुरता दिखाई। तत्पश्चात् उजबक मुखियाओं का दमन करके अकबर आगरा लौट गया। सुलेमान ने एक शांति पूर्ण ढंग अपनाया और मुनीम खाँ के हस्तक्षेप द्वारा अकबर की प्रभुता स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया। उसने मुगल सम्राट के अपने नाम से सिक्के बनवाना और खुतबा पढ़वाना तक स्वीकार कर लिया। इस ढंग से अफगान कुछ समय तक बंगाल में शासन का आनन्द भोग रहे। १५७२ ई० में सुलेमान ने अन्तिम साँस ली और उसका पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन अपनी चरित्रहीनता के कारण वह कुछ ही समय के अन्दर

[1]—अल-बदाऊनी-मुन्तखाब उत-तवारीख पृ० १०८।

अपने छोटे साथी हेमू और अन्य अमीरों के दल के कारण मार डाला गया।[1] सलीमशाह के स्थान पर, सुलेमान का दूसरा पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठाया गया। उसके सिंहासनारूढ़ होने पर, अफगानों ने अपनी नीति बदल दी और अकबर के प्रति नाम मात्र की राजभक्ति को उठा फेंका। जैसे ही मुगलों को इसकी सूचना मिली मुनीम खाँ को बंगाल पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। युद्ध में युद्ध मंदा हो गया और पर्याप्त समय तक चलता रहा। मुनीम खाँ को आरंभ में थोड़ी सफलता मिली और दाऊद को हाजीपुर और पटना से निकाल देना कठिन पाकर मुगल सम्राट को अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। दाऊद को इस अवसर पर श्रीधर, जिसको शीघ्र ही राजा विक्रमाजीत की सम्मानित उपाधि मिल गई की सहायता उपलब्ध हो गई। पूर्व में हिन्दू और अफगानों ने पुनः एक प्रभावशाली गुट बना लिया। मुगलों को इसने हेमू की प्राचीन सफलता की याद दिला दी और वे मुगल साम्राज्य को अफगानों और हिन्दुओं के हाथों एक बार फिर सर्वनाश से बचाने के लिए बिहार में शीघ्रता से एकत्रित हुए। मानसून के होते हुए भी अकबर बिहार पहुँचा। हाजीपुर पर अधिकार किए बिना पटना को ले लेना असंभव था। मुगल सम्राट को इस साहसिक कार्य में आंशिक सफलता प्राप्त हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि हाजीपुर के पतन के पश्चात् सन् १५७४ ई० में दाऊद भाग गया। आक्रमण करके पटना ले लिया गया, पर अफगान फिर बच निकले। १५७५ ई० में और युद्ध हुए और दाऊद को घुटने टेकने पड़े। राजा टोडरमल के विरोध करने पर भी मुनीम खाँ ने एक संधि सम्पन्न करा दी लेकिन दाऊद द्वारा अकबर का स्वामित्व मान लेना कुछ समय तक ही चलता रहा। अक्तूबर १५७५ ई० में मुनीम खाँ की मृत्यु होने पर बंगाल में पुनः विद्रोह फूट पड़ा और उड़ीसा तथा बिहार पर इसका समान प्रभाव पड़ा। राजा टोडरमल की आधी सेना से मुगलों ने एक बार फिर अपने को संवेष्ट किया और यश कमाया। जुलाई १५७६ ई० में अफगान बुरी प्रकार से परास्त हो गए और मुगलों को स्पष्ट विजय प्राप्त हुई।

इस विजय का महत्व डा० त्रिपाठी द्वारा इन शब्दों में भली भाँति आँका गया है।[2]

"अफगानों की तलवार से जुनैद मारा गया। धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू और जनमत को निर्दयता से भ्रष्ट करनेवाला काला पहाड़ घायल होकर भाग गया। और दाऊद भी भाग खड़ा हुआ। टोडरमल ने दाऊद का निकट से

१—अल बदायूनी मुन्तखाब-उत तवारीख पृ० १६७ से १८७ तक।
२—डा० आर० पी० त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २१८।

पीछा किया और उसे पकड़ लिया। खान-ए-जहान दाऊद सदृश सुन्दर व्यक्ति के प्राण लेने के लिए इच्छुक नहीं था लेकिन अमीरों ने उसके सिर को काटकर, सम्राट के पास भेज दिया व कृतज्ञता दिखाई। उसके साथ साथ बंगाल की स्वतंत्र 'बादशाहत' भी समाप्त हो गई।" यह केवल बंगाल के स्वतंत्र शासन का ही अन्त नहीं था वरन् अफगानों व मुगलों के संघर्ष का भी अन्त था। १५५६ ई० से १५७६ ई० तक की २० वर्ष की अवधि में अकबर को आए दिन अफगानों के विरोध का सामना करना पड़ा।

सन् १५५६ ई० में हेमू की पराजय से और देश के विभिन्न कोनों में अफगानों के भाग जाने से ही अकबर की विजय निश्चित नहीं थी। पूरे बीस वर्ष तक उसे मुगल साम्राज्य को जीवित रखने और दृढ़ करने के लिए बारम्बार संघर्ष करने पड़े। आरंभ में उसे एक-एक गढ़ों पर अधिकार करना पड़ा। अजमेर, रणथंभौर, ग्वालियर, चुनार, रोहतास और कई अन्य (गढ़) कड़े और लम्बे युद्ध के बाद मुगलों के हाथ लगे। अदली और हेमू के दास के रूप में उल्लिखित अफगान शूरवीरों ने कड़े प्रतिरोध के बाद ही हार मानी। बिहार, उड़ीसा और बंगाल में उनके अन्तिम गढ़ का विनाश होने पर मुगलों को एक सैद्धांतिक विजय प्राप्त हुई। मुगल साम्राज्य की नींव स्थिर हो गई और सम्राट धन-मान-वर्धक युद्ध की अवधि में व विस्तार के तथा मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ करने के युद्ध में प्रविष्ट होने के लिए स्वतंत्र था। हेमू और उसके वंशज व सेना-नायक पठानस्थल से पूर्णतः लुप्त हो गये थे। जो जीवित रहे उन्होंने नए शासन से समझौता कर लिया और मुगलों से पद सम्मान और कृपा स्वीकार कर ली।

अध्याय—१०

अफगानों और दूसरों से मुगलों का राजीनामा

अकबर प्रारम्भ से ही समझौते की भावना से ओतप्रोत था और यह उसके शासन काल के प्रारंभिक वर्षों से ही प्रकट होने लग गई थी। यह कहा गया है कि १५६१ ई० में ही उसने साधुओं और फकीरों की संगति करना आरंभ कर दिया था। मुगल सम्राट के चरित्र के इस स्वरूप से संबंधित सर्व प्रथम कथा आने वाली पीढ़ियों को उन श्रीहित हरिवंश के निष्ठावान् शिष्यों राधावल्लभी संघ से हस्तगत हुई। राधावल्लभी सम्प्रदाय के कवि संत और संस्थापक श्रीहित अकबर के समकालीन थे। उनका जन्म संवत् १५५९ में हुआ और वह १६०९ वि० संवत्[2] तक जीवित रहे। अकबर के राज्याभिषेक के समय वह पूर्ण यौवन पर थे और उनका संप्रदाय मथुरा-वृन्दावन में कीर्ति सम्पन्न था। उनके शिष्यों में से दो दूसरी जाति के थे जिनमें से एक ने अकबर को अपने आध्यात्मिक बल के चमत्कार दिखाये थे जैसा कि भगवत मुदित द्वारा रचित निम्नलिखित चौपाइयों से प्रकट हो जायगा।

नवल दास की कथा

अब श्रीहित हरिवंश के शिष्य नवल हैं आन॥
दूसर कुल पावन कियो, तिनकी कहौं बखान॥ १॥

१—डा० आर पी त्रिपाठी मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन पृ० २२९।
"वर्ष १५६१ ई० में ही वह साधारण मनुष्यों साधुओं और फकीरों के बीच भावना की भक्तिओं में वेश बदलकर घूमा करता था। १५६२ ई० में अपनी ही इच्छा से उसने राजपूतों से विधिवत् वैवाहिक संबंध करने का महत्वपूर्ण पग उठाया ......। सम्भवतः उस समय वह अफगानों और अपने दरबार के अविश्वासी कुलीनों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए राजपूतों से घनिष्ठतम संबंध स्थापित करने का इच्छुक था ....।"

१५६३ ई० में उसने मथुरा में यात्री-कर समाप्त कर दिया और १५६४ ई० में जजिया समाप्त कर दिया।

२—कविता कौमुदी—भाग १ पृ० २२१ १९२१ संस्करण १५०२ ई० में जन्म और १५५२ ई० तक जीवित। विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार जी उसकी जन्मतिथि १५५९ वि० संवत् है—राधावल्लभी सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य २०१४ वि० संवत्।

रेवारी (रिवाड़ी) मधि घर है तिनको कथा कीरतन में मन तिनको ॥ २ ॥
साधुन की सेवा सुठि करै, महा नम्र सबको मन हरै ॥ ३ ॥
सब संपति वृन्दावन आए, श्री हरिवंश मिले सुख पाए ॥ ४ ॥
बहुत द्यौस (दिवस) लौं सेवा कीनी गुरु ने शिष्य परीक्षा लीनी ॥ ५ ॥
तब निजु मन्त्र सुनायो वाको धर्म अनन्य बतायो ताको ॥ ६ ॥
महाविरक्त युगल रस भोगी क्षमा शम संतोष न होगी ॥ ७ ॥
श्री राधा वल्लभ के गुन गावैं रसिक जननि के चित्त चुरावैं ॥ ८ ॥
बाहिर भीतर प्रभु को देखे हानि लाभ सुख दुःख समलेखे ॥ ९ ॥
जहाँ तहाँ फिरे नवल को साथ गुरु हो पुन गहिबे को हाथ ॥ १० ॥
क्षमा दया के नाहिं छोरैं अति अगाध हिये महुँ न कोई ॥ ११ ॥
गुरु हरि साधुनि सुतर सुभाय कृपा प्रकाश भजन दिन जाई ॥ १२ ॥
और सुनौ कौतुक एक नीको परचौ भयो नवल जन जी को[1] ॥ १३ ॥

ऐसा था श्रीहित हरिवंश का शिष्य जिसने अकबर के कोप से हेमू की मृत्यु-पर्यन्त दूसर जाति को बचाया। हेमू की जाति के होने के कारण दूसरों को सताने वाली नीति को छोड़ देने के लिए अकबर को सफलता पूर्वक फुसलाने वाले वही थे। मुगल सम्राट ने बन्दी बनाये गये रिवाड़ी के सब दूसरों को उन्हीं के कहने से मुक्त कर दिया और महिपाल के पुत्र चौधरी मायमल को नारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।[2] इस प्रकार अनुराग से संबंधित कथा जिस (अनुराग) के गान वर्तमान शताब्दी के आरंभ काल तक पटियाला के सिस राज्य (अब पूर्वी पंजाब में विलीन) के अधीनस्थ कनौडिया दूसरों द्वारा उठाए गए हैं अनन्य रसिकमाल के लेखक द्वारा इन दोहों में उल्लिखित है।[3]

हुमायूँ शाह[4] जब गढ़ गिर मरो हेमू राज अचानक दिन करो ॥ १४ ॥
बहुरि अकबर को भयो राज हेमू मार्यो बैठ्यो गाज ॥ १५ ॥

१—भगवत मुदित रसिक अनन्य माल ना० प्र० सभा काशी के पुस्तकालय से प्रतिलिपि १८८९ सम्वत्।
गोस्वामी नवलदास की वंशावली में जगन्नाथ का पुत्र उल्लिखित किया गया है। वह नवलकिशोर के नाम से प्रसिद्ध हुए।
२—देखिए-अध्याय १। पृ० सं० १२ से १४
३—भगवत मुदित कृत रसिक अनन्य माल प्रकरण नवलदास की कथा पृ० सं० ४५-४७ हस्तलिखित प्रति मायाशंकर याज्ञिक संग्रह नागरी प्रचारिणी-सभा-संग्रह वाराणसी।
४—यहीं दूसरी हस्तलिखित प्रति में "शेरशाह" लिखा है जो त्रुटिपूर्ण है क्योंकि शेरशाह की मृत्यु गढ़ से गिरकर नहीं हुई थी। व हेमू ने हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् राज्य किया था न कि शेरशाह के पश्चात्। इसी प्रकार 'अकबर की जगह हिमाऊं' लिखा है, यह भी त्रुटिपूर्ण है।

सिंहासनारूढ़ होते ही अकबर ने आज्ञा दी कि सब डूमरों को बंदी बना लिया जाय—

"शाह कही बनियन को लावहु मारो हसन कही करि पावहु ॥ १६ ॥
अहदी[1] गए पकरि सब लाए, आन अकोपे तट दिखाए ॥ १७ ॥

मुगल सैनिक गए और बिना कुछ सोचे विचारे सबको बंदी बना लाये और उनको सम्राट के सामने प्रस्तुत किया—

तब वजीर ने विनती कीनी चूक सब डूमर लिर दीनी ॥ १८ ॥
बनिक छोड़ तब डूमर ही पकरो ढूंढ ढूंढ बज्र में जकरो ॥ १९ ॥

लेकिन वजीर ने बतलाया कि सब डूमरों को नहीं पकड़ा जाना था बल्कि केवल हेमू की जाति से संबंधित डूमरों को ही बंदी बनाना था।

हेमू जन परहन को पाए, खोय सब रिवाड़ी से लाए ॥ २० ॥
बंदी किये बहुत भाँत दिखाए, दूरे छिपे तिनहीं बताए ॥ २१ ॥

सैनिकों ने परिवर्तित आज्ञा का पालन किया और केवल रिवाड़ी से हेमू जाति के लगभग २०० डूमरों को पकड़ लिया। उनको बंदी बनाया गया और डराया-धमकाया गया जिससे और बहुतों का भी पता लग गया जो भाग गए थे तथा छिप गए थे। यह दमन इतना व्यापक था कि रिवाड़ी और दिल्ली में या उसके आसपास कोई एक डूमर भी नहीं मिल सकता था। उस समय सम्राट को यह सूचना मिली कि केवल एक डूमर बच रह गया था जो वृन्दावन में त्यागमय जीवन-यापन कर रहा था सारी दूता ने आकर कहा—

डूमर तो अब कोई नाहीं एक रहो वृन्दावन माहीं ॥ २२ ॥
तब नारायन अहदी[1] धाये नवलदास को ले पहुंचाए ॥ २३ ॥

जब संत नवलदास को अकबर के सामने लाया गया तो उसने उनसे उनकी जाति और पूर्वधारणायें पूछीं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया —

'उनकी कोई जाति नहीं थी और हरिभक्तों की अपनी निजी पूर्व धारणाएँ थीं जिसके फलस्वरूप वा अथवा जाति का कोई भय भाव नहीं रह गया था। यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है —

'बादशाह ने पूछी बात कहिये नवल अपनी जात ॥ २४ ॥
नवल कही जिन पैदा किए सब उन हम अपने करि लिये ॥ २५ ॥

१—तुमीन अश्वारोही (Gentleman Troopers) श्री० शर्मा मुगल शासन व राज्य पृ० १४५ मुगल सम्राट के अधीन एक करमी के मातहत में तुमीन अश्वारोहियों का एक दल होता था।

रैवारी (रिवाड़ी) नगर घर हु तिनको कथा कीरतन मे मन तिनको ॥ २ ॥
साधुन की सेवा नित करै, महा नम्र सबको मन हरै ॥ ३ ॥
सब संपति वृन्दावन आए, श्री हरिवंश मिले सुख पाए ॥ ४ ॥
बहुत द्यौस (दिवस) लौं सेवा कीनी गुरु नै शिष्य परीक्षा लीनी ॥ ५ ॥
तब निजु मन्त्र सुनायौ वाको धर्म अनन्य बतायौ ताको ॥ ६ ॥
महाविरक्त भूषन रत भीनौं क्षमा त्याग संतोष न हीनौं ॥ ७ ॥
श्री राधा वल्लभ के गुन गावै रसिक अनन्य के चित्त चुरावै ॥ ८ ॥
बाहिर भीतर प्रभु को देखै, हानि लाभ सुख दुख समलेखै ॥ ९ ॥
जहाँ तहाँ फिरै नवता को भाव गुप्त ह्वै गुन चहिबे को चाव ॥ १० ॥
प्रथा यथा के नहिं सोई अति अगाध हिये नहिं न कोई ॥ ११ ॥
गुरु हरि साधुनि सुजस सुगाय, कृपा सकाम भजन बिन भाई ॥ १२ ॥
और सुनौं कौतुक एक नीको परचै भयो मवास जन जी को[1] ॥ १३ ॥

ऐसा था श्री हित हरिवंश का शिष्य जिसने अकबर के रोष से हेमू की मृत्यु-पर्यन्त दूसर जाति को बचाया। हेमू की जाति के होने के कारण दूसरों को सताने वाली नीति को छोड़ देने के लिए अकबर को सफलता पूर्वक कुम लाने वाले वही थे। मुगल सम्राट ने बन्दी बनाये गये रिवाड़ी के सब दूसरों को उन्हीं के कहने से मुक्त कर दिया और महिपाल के पुत्र चौधरी लालमल को मारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।[2] इस उदार अनुदान से संबंधित कथा जिस (अनुदान) से प्रायः वर्तमान शताब्दी के आरंभ काल तक पटियाला के सिख राज्य (अब पूर्वी पंजाब में विलीन) के अधीनस्थ कनौडिया दूसरा द्वारा उठाए गए हैं अनन्य रसिकमाल के लेखक द्वारा इन दोहों में उल्लिखित है।[3]

हुमायूं साह[4] जब तब गिर मरो हेमू राज कछुक दिन करी ॥ १४ ॥
बहुरि अकबर को भयो राज हेमू मार्‍यो बैठ्यो गाज ॥ १५ ॥

१—भगवत मुदित रसिक अनन्य माल ना० प्र० सभा काशी के पुस्तकालय से प्रतिलिपि १०८९ सम्वत्।
गोस्वामी ललितचरण की वंशावली में उपनाम था पुन उल्लिखित किया गया है। वह ललितकिशोर के नाम से प्रसिद्ध हुए।
२—देखिए-अध्याय १। पृ सं १२ से १४
३—भगवत मुदित भय रसिक अनन्य माल प्रकरण नवलदास की कथा पृ० स ८६.४७ हस्तलिखित प्रति मायाशंकर याज्ञिक संग्रह नागरी प्रचारिणी-सभा-संग्रह वाराणसी।
४—यहीं दूसरी हस्तलिखित प्रति में 'शेरशाह' लिखा है जो त्रुटिपूर्ण है क्योंकि बादशाह की मृत्यु छत से गिरकर नहीं हुई थी। न हेमू ने हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् राज्य किया था न कि बादशाह के पश्चात्। इसी प्रकार अकबर की जगह 'हिमाऊं' लिखा है वह भी त्रुटिपूर्ण है।

सिंहासनारूढ़ होते ही अकबर ने आज्ञा दी कि सब धूसरों को बंदी बना लिया जाय—

"शाह कह्यो बनियन को लावहु सारो सदन जहाँ लगि पावहु ॥ १६ ॥
अहदी[1] गए पकड़ि सब लाए, आन झरोखे तर बिठाए ॥ १७ ॥

मुगल सैनिक गए और बिना कुछ सोचे विचारे सबको बंदी बना लाये और उनको सम्राट के सामने प्रस्तुत किया—

"तब वजीर ने विनती कीनी चूक भई धूसर लिख दीनी ॥ १८ ॥
बनिक छोड़ सब धूसर ही पकड़े ढूँढे ढूँढे बस्तिन में जकड़े ॥ १९ ॥

लेकिन वजीर ने बतलाया कि सब धूसरों को नहीं पकड़ा जाना था बल्कि केवल हेमू की जाति से सम्बन्धित धूसरों को ही बंदी बनाना था।

"हेमू कुल धूसर को लाए, खोज तास रिवाड़ी से लाए ॥ २० ॥
बंदी किये बहुत त्रास दिखाए दूरे छिपे तिनहीं बताए ॥ २१ ॥

सैनिकों ने परिवर्तित आज्ञा का पालन किया और केवल रिवाड़ी से हेमू जाति के लगभग २०० धूसरों को पकड़ लिया। उनको बंदी बनाया गया और डराया-धमकाया गया जिससे और बहुतों का भी पता चल गया जो भाग गए थे तथा छिपे हुए थे। यह दमन इतना व्यापक था कि रिवाड़ी और दिल्ली में या उसके आस पास कोई एक धूसर भी नहीं मिल सकता था। उस समय सम्राट को यह सूचना मिली कि केवल एक धूसर शेष रह गया था जो वृन्दावन में तपोमय जीवन-यापन कर रहा था — शाही दूतों ने आकर कहा—

धूसर तो अब कोई नाहीं, एक रह्यो वृन्दावन माहीं ॥ २२ ॥
तब वृन्दावन अहदी[1] आये नवलदास को ले पहुँचाए ॥ २३ ॥

जब संत नवलदास को अकबर के सामने लाया गया तो उसने उनसे उनकी जाति और पूर्वधारणायें पूछीं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया —

"उनकी कोई जाति नहीं थी और हरिभक्ता की अपनी निजी पूर्ण धारणायें थीं जिसके अन्तर्गत वर्ण अथवा जाति का कोई भेद भाव नहीं रह गया था। यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है —

"बादशाह ने पूछी बात कहिये नवल अपनी जात ॥ २४ ॥
नवल कही बिन पैदा किये अब जन हम अपने करि लिये ॥२५ ॥

१—कुलीन अश्वारोही (Gentleman Troopers) डॉ० शर्मा मुगल शासन के राज्य पृ० १४५ मुगल सम्राट के अधीन एक बरगी के नायकत्व में कुलीन अश्वारोहियों का एक दल होता था।

जाति न कोई भये अतीत, हरि भक्तन की औरहि रीति ॥ २६ ॥
साह कही बाबु मत तोही, न्यारी रीत दिखावत मोहि ॥ २७ ॥

संत के ढीठ और उदासीन उत्तरों से मुगल सम्राट उत्तेजित हो उठा और उसको कारागार में डाल दिया। उसके तदुपरान्त् वह घटना घटी जिससे अकबर सबसे अधिक प्रभावित हुआ। नवलदास कारागार में भी प्रार्थनाएँ करते रहे और कठिनाइयों व यातनाओं के होते हुए भी अपने श्याम के गुण गाते रहे तथा उन्होंने कारागार-गृह से बच निकलने एवं सशरीर वृन्दावन में भक्तों के बीच पहुँचने का चमत्कार दिखाया। जब अकबर को इसकी सूचना मिली तो वह बहुत पछताया और उन्हें एक बार फिर बुलवा भेजा। इस बार कैद करने के लिए नहीं बल्कि सम्मानित करने के लिए। इस घटना का वर्णन कवि द्वारा इन पंक्तियों में किया गया है—

साखी नवलकृत

जो कोई करे जंजीरन में तो छोड़ों सत संत।
प्रभ तन्तु भटक्यों नवल भटक्यों तनक न जात ॥ २८ ॥"

चौपाई—साह न समझी नवल जू कह्यो बर्ष बखीर रहै तो कह्यो ॥२९॥
सुनत साह जंजीर मंगाई पग अरु हाथ गुदुरी में नाई ॥३०॥
बांधि जंजीर दियो बंदखाना, मारि कपाट लगायो ताला ॥३१॥
बस भव भक्त जानि नहिं पाव ह्वाई ही नवल स्याम गुन गावै ॥३२॥
गुन पर ध्यान चित लायो, देह सहित वृन्दावन आयो ॥३३॥
दीन दिना पाछ सुध लीनी तब जंजीर कोठे मधि चीन्ही ॥३४॥
फिरि के महली साहि पठायो नवल बहुरि वृन्दावन पायो ॥३५॥

जब नवलदास दूसरी बार अकबर के सामने आए, उनको बैठने को स्थान दिया गया और कोई प्रार्थना करने को कहा गया —

'करामात तुम प्रगट दिखाई ताते मो मन बढ़ा न जाई ॥३७॥
आसा करी सोई फरमान ‥　　‥　　‥ ‥ ‥　　॥३८॥

इस पर नवलदास ने उत्तर दिया—

‥ ‥　　　　‥　　दूसर क्यों रोके बिन काम ॥३८॥
जो कोई करै सोई करा पाव क्यों तू इनको वृथा सतावै ॥३९॥
जैसे घपरेल्यों बहु ताम दूसर सब छुड़ाय आन　　॥४०॥
अपने अपने धरनि पठाऐ तब से दूसर जात कहाये　　॥४१॥

"तुमने बिना उनका अपराध जाने दूसरों को बंदी क्यों बना रखा है? जो जैसा करता है वैसा ही फल पायगा। उनका अपना कोई दोष न होने पर

तुम उनको दंड क्यों देते हो ? ऐसी मर्मस्पर्शी प्रार्थना ने अकबर में सद्विचार जागृत कर दिए और उसने हूसरों को मुक्त कर दिया तथा उनको उनके स्थानों पर पहुँचा दिया। तब से हूसर राजभक्त हो गए और मुगलों द्वारा मित्र बना लिए गए। नवलदास का कुछ भी स्वीकार करने को मना कर देने से मुगल सम्राट इतना प्रभावित हुआ कि उसने महिपाल हूसर के पुत्र चौधरी माधमल के नाम में नारनौल की सरकार में एक जागीर प्रदान की।

कथा की सत्यता—

यही समय था जब कि राधावल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन में प्रथम शिखर पर था जब कि विद्वान और निष्ठावान् संत हित हरिवंश के निकट एकत्रित हुए थे। अकबर द्वारा नवलदास के प्रति दर्शायी गयी उदारता से संबंधित उपर्युक्त कथा को राधावल्लभी संतों के बीच बहुत बड़ा विश्वास प्राप्त हुआ और सन्तति के लिए भगवतमुदित द्वारा रसिक अनन्यमाल द्वारा सुरक्षित किया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी के पुस्तकालय में रसिक अनन्यमाल की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।[1] हस्तलेखों में से एक पर तो वर्ष १८१३ वि० संवत् (अर्थात् १७८० ई०) अंकित है और दूसरे पर वर्ष १८१७ वि० स० (अर्थात् १७६० ई०) प्रथम तो सभा का मौलिक संग्रह है, जब कि दूसरा भी मामा शंकर याज्ञिक के संग्रह में से लिया गया है। उन पर निम्नांकित हस्तलिखित अंतिम वाक्य अंकित है, जो उनकी सत्यता और प्राचीनता की और पुष्टि करते हैं—

(१) "इति श्री रसिक माल भगवत मुदित कृत समाप्तं सम्पूर्णम्। अनन्य पुस्तक लिखितं। श्री वृन्दावन धाम। श्री जमुना तट संवत् १८१७ मिती चैत सुदी २ मंगलवार। श्री हस्ताक्षर प्रियादास पठनार्थ नवनीत नाम। श्री' (हस्तलेख)

(२) 'संवत् १८१३ वर्षे मासानां आश्विन मासयु मस्तपक्षे पुनमितिथी

१—भगवतमुदित—

रसिक अनन्यमाल (हस्तलेख) काशी-नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय की प्रति में उद्धृत। अन्तिम पृ०—१२७-१२८ यह भी देखिए विजेन्द्र स्नातक "राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' (हिन्दी में) वि० संवत २०१४ (१९५७ ई०)।

द्वितीया मास्य मुधा से लिख्यतेहि इदं स्वामी बालकदास समीपे श्री गुरु प्रसाद छूपरसी लिख्यते ।"[1]

हस्तलिखित प्रति से यह स्पष्ट है कि नवलदास हित हरिवंश के शिष्य उस समय जीवित थे जब कि वृन्दावन राधावल्लभी सम्प्रदाय की क्रियाओं से गुंजार रहा था। सम्प्रदाय के संस्थापक की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर के लोग मथुरा में एकत्रित होने लगे। हित-हरिवंश के शिष्यों में से कुछ ने सुदूर स्थानों की यात्रा की और लोगों को अपनी विचारधारा में परिवर्तित किया। नवलदास को ओड़छा भेजा गया जहाँ उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर हरी राम व्यास ने उनका पथानुसरण किया और वे वृन्दावन जा कर बस गये।[2] उनकी धार्मिक कविताएं एवं रचनाएं भी उपलब्ध हैं। नवलदास के अतिरिक्त हेमू के पिता श्री पूरनदास का उल्लेख है जो स्वयं भी नवलदास के साथ-साथ वृन्दावन आये थे। उनका द्रष्टा (शिष्य) जाने को कहा गया और वे एक प्रमुख मनसबदार श्री परमानन्द को अपनी विचारधारा में परिवर्तित करने में सफल हुए।[3] उसने अपने मनसबदारी अधिकार त्याग दिये और वह मथुरा पहुँचने पर हित हरिवंश का शिष्य बन गया। इस प्रकार श्री पूरनदास को प्रेम सन्देश का प्रचार करने का अवसर मिला और उन्होंने सिन्ध में एक दूरस्थ स्थान के लिए सफलतापूर्वक एक सद्भावनापूर्ण यात्रा की।

हस्तलेखों में अनेक संतों के वर्णनात्मक स्थापित हैं — जैसे हित हरिवंश, हरीराम व्यास सुन्दरदास श्री पूरनदास और नवलदास। इन संतों के विशद वर्णन से इस सम्प्रदाय के निष्ठावान संतों के प्रभाव के विस्तार पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। कोई आश्चर्य नहीं यदि अकबर का राधावल्लभी कवि और संतों में श्रद्धा हो गई हो। मथुरा और वृन्दावन को की गई उसकी खुली और गुप्त यात्राओं के विषय में कई कथाएँ प्रचलित हैं। उसकी उदारात्मक नीति के कारण इस क्षेत्र में शान्तिपूर्ण भक्तिभावयुक्त कार्य होने लगे। मन्दिरों के निर्माण के विषय में भी विवरण उपलब्ध है जिससे प्रकट होता है कि अकबर के समय में

१—भगवत मुदित रसिक अनन्यमाल साभार्थकर पाठक की प्रति से उद्धृत (नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित)।

२—वही प्रकरण हितचरित—व्यास जू की प्रसंग १४ २४ प्र० सं० १२ १८।

३—वही प्रकरण हितचरित हरिवंश का वृन्दावन आगमन—पृ सं ४ ५। तथा रसिक अनन्यमाल—प्रकरण—परमानन्द की परिचय—१ ११ तक पृ० सं ५२ ५४।

यह सम्प्रदाय चर्मोत्कर्ष पर था। १२८५ ई० में ही वृन्दावन में एक मन्दिर का निर्माण हुआ जो राधा को समर्पित कर दिया गया। [१ २ ३]

हेमू के वंशज—

हेमू के मतीज महिपाल के वंशजों में से चौधरी नाथमल का जागीर प्रदान करने वाला मूल फरमान उपलब्ध है। इससे बिना किसी शंका से यह सिद्ध होता है कि दयालु-हृदय मुगल सम्राट ने दूसरा से पूर्णतः राजीनामा कर लिया था। फरमान स्थाई रूप से प्रदान किया गया था। चौधरी नाथमल या उसके वंशजो के लिए वर्ष प्रति वर्ष उसका नवीकरण आवश्यक न था। यह भी सत्य है कि पिछले मुगल सम्राटों द्वारा १९ वीं शताब्दी तक इस फरमान का मान किया गया था और पटियाला राज्य का सिख शासक तक जिसके अधिकार-क्षेत्र में यह जागीर आई कुछ वर्षों तक उसका मान करता रहा। अनुदान राशि को धीरे-धीरे घटाकर, राज्य ने कनौडिया दूसरों को यह अनुदान बंद कर दिया। पटियाला राज्य के नारनौल इलाका में ढोसी पहाड़ी में जातीय मंदिर और अन्य इमारतों को राज्य-कोष से सहायता अनुदान प्राप्त होते रहे थे। [४] नाथमल को जागीर मिलने के पश्चात् कई अन्य दूसरों को मथुरा बुलन्दशहर गुड़गांव और दूसरी सरकारों में परगनों की कानूनगोई प्राप्त हुई। इनके उपरान्त कुछ दूसरों मुगल सम्राट के अधीन उच्च पदों पर पहुंच गए।

१—उसने वहाँ एक मन्दिर भी बनवाया जो अब भी स्थिर है—और द्वार पर अंकित लेख से यह प्रकट होता है कि यह संवत् १६४१ या १२८५ ई० में हरिवंश द्वारा श्री राधावल्लभ को समर्पित कर दिया गया था।

२—'राधावल्लभजी का 'श्री राधा वल्लभ' के नाम से वृन्दावन में कृष्ण को समर्पित एक मन्दिर है, जिसका निर्माण सम्प्रदाय के संस्थापक तथा सहारनपुर जिले में देवबंद के निवासी हरिवंश द्वारा वर्ष १२८२ ई० में कराया गया कहा जाता है। दीवारों पर अधिपत्य से लिखित कई लेख हैं लेकिन इस समय वर्णनीय सबसे प्राचीन लेख पर संवत् १६८४ (१६२७ ई०) की तिथि अंकित है—मथुरा-पृ० १२ १२९।

३—'इन की पत्नियों से उसके दो पुत्र थे—वृज चन्द्र और कृष्ण चन्द्र। जिनमें से दूसरे ने राधामोहन का मन्दिर बनवाया जो अब भी उसके वंशजों के अधिकार में है। वृजचन्द्र सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिर राधावल्लभ का मंन्दिर के वर्तमान गोसाइयों का पूर्वज था। मन्दिर के स्तम्भों में से एक पर लेख है जिस पर तिथि १६८३ संवत् (१६२६ ई०) अंकित है।

४—ढोसी में स्थित मंदिर और इमारतों के पोषण के लिए जो भार्गव सभा के प्रबंध में है जागीर में कानूनगोई और नम्बरदार अधिकारों के स्थान पर अनुदानों को प्रदान करने तथा लौटाने के लिए मुख्य मंत्री दीवान बहादुर सर पण्डित दया किशन कौल को भेजा गया धर्म मित्र भार्गव का प्रार्थना-पत्र देखें—दिनांक ८ जनवरी १९२४ ई०। देखिए परिशिष्ट—क

इनमें से राव सुजानसिंह पर्याप्त प्रसिद्ध हुए। वह कुतुबपुर के निवासी थे और १८ वीं शताब्दी में वह मथुरा और कोल (अलीगढ़) में एक उच्च पदाधिकारी के रूप में रहे। इनके वंशज अब भी अलीगढ़ में रहते हैं।

इस प्रकार हेमू के शक्तिशाली नेतृत्व में दूसर एक व्यवसायी जाति के नीरता के शिखर पर पहुँचे और उन्होंने उसके परिणाम भी भोगे। व्यापारिक प्रवीणता व सैनिक भावना के इन दो पूर्णतः विपरीत भावों का सम्मिश्रण आज भी हेमू की जाति में स्पष्ट है। यद्यपि संख्या में जाति कभी बड़ी नहीं रही है[1] इसकी पृथकता और संकीर्णता ने अन्य जातियों से—यहाँ तक कि गुजरात और दक्षिण के भार्गवों तक से उसके सम्मिश्रण को परिमित बना दिया था। कुछ सहस्र की संख्या वाली जाति की ऐसी संकीर्ण परिधि के लाभ और हानि सारे देश में फैल जाने के कारण और अधिक हो गए हैं। विवरण के लिए अधिकतर नागरिक क्षेत्र इसके पर्याप्त साक्षी हैं। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमान दूसरों ने वीर राजनीतिज्ञ हेमू के साथ विशेषता कथाएँ और वृत्तान्त पर्याप्त सीमा तक सुरक्षित रखी हैं। मुगल सम्राट द्वारा लिखे गये राजीनामे ने इनको एक नया जीवन दान दिया था। ऐसी छोटी जाति का क्लेश रहित संताप के कारण सर्व नाश हो जाना बहुत कठिन न होता।

अकबर ने दूसरों से राजीनामा किया उनकी राजभक्ति प्राप्त की और अपने द्वारा धीरे-धीरे निर्मित नई कुलीनता सामन्तशाही में अफगानों को सम्मिलित कर लिया। २० वर्ष की अवधि में जैसा कि पहले के एक अध्याय में उल्लिखित है अकबर ने निर्णायिक गुजरात ग्वालियर कालपी चुनार, रोहतास गाजीपुर पटना बंगाल और उड़ीसा में अफगान योद्धाओं को सफलतापूर्वक दाव निकाला। उनकी जागीरें का पूरा नाश उनके गढ़ और छिपने के स्थानों पर निष्ठुरतापूर्वक अधिकार कर लिया गया और एक एक करके अफगानों ने या तो अकबर की कृपा प्राप्त की या युद्ध करके परास्त हो गए। जब २० वर्ष पश्चात उसके प्रभावशाली शत्रु दूसर और अफगानों ने उसके राज्य से पूर्णत राजीनामा कर लिया तब अकबर के राज्य की प्रथम अवस्था समाप्त हो गई और मुगल साम्राज्य शुरू हो गया।

१—विभिन्न जनगणना की रिपोर्टों के अनुसार जाति की संख्या यह रही है—

१९०० ई०	१०१७ पुरुष	२८६६ स्त्रियां	=५८८०
१९११ ई	९८८१	२७४९	=५११०
१९२१ ई	१८६५ ,,	११९७ ,,	=११४२

उपसंहार

हेमू का उत्थान उज्ज्वल था। वह विद्युत की भाँति चमका और प्रकाशमान हुआ। उसके यश और कीर्ति ने उसके समकालीनों की आँखें चौंधिया दी। वह कुछ काल तक काले बादलों में रजत-रेखा सा चमका लेकिन राजनैतिक क्षेत्र के दृश्य से उसका ग्रहण भी उतना ही अचानक और अप्रत्याशित हुआ।

जन्म से ही एक असाधारण व्यक्ति जिसमें नाम अथवा शिक्षा न कोई खानदानी अभिमान न था, हेमू एक सेनापति, शूरवीर, विजेता, दिग्विजेता एवं एक प्रमुख सेनानायक बन गया। उसकी चतुराई भरी चालें, उसके आक्रमण का ढंग और उसकी संगठनात्मक दक्षता ने उसके शत्रुओं को स्तम्भित कर दिया। अपने स्वामी अदली द्वारा, राजा विक्रमादित्य की उपाधि से सम्मानित किए जाने पर वह दिल्ली का राजा बल्कि यूँ समझिए कि मध्यकालीन भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट बन गया।

एक धर्मात्मा पिता के पुत्र होने के कारण जो वृन्दावन में श्री हित वंश के शिष्य के रूप में श्याम और हरी के प्रेम और पूजा में रत थे, हेमू ने विष्णु सम्प्रदाय की सभी भावनाओं और विश्वास-दृढ़ता को ग्रहण कर लिया। संख्या में अल्प और कमजोर, रिवाड़ी और आसपास स्थानों के निवासी धूसर भार्गवों की जाति का होते हुए, उसने राजपूतों और अफगानों का सच्चा और स्थायी सहयोग प्राप्त किया। अपने दुर्बल शारीरिक गठन, विनीत व्यक्तित्व, अदली जैसे स्वामी के प्रति अनन्य राजभक्ति न होने पर भी उसकी वाणी आवेशात्मक थी और वह युद्ध के बीच में उत्साहपूर्वक चिल्लाता था। वह अपने संगी साथियों पर काबू पाने में सफल रहा, उसने सेनानियों की राजभक्ति प्राप्त की और अपने भीषणतम शत्रुओं पर विजय पाई। चाहे रणभूमि हो या प्रीति भोज का भवन वह सदैव कोलाहल पूर्ण था और जो उपस्थित होते थे उनको पराक्रम और शूरवीरता के शिखर पर पहुँचाने के लिए उत्तेजित किया करता था।

हेमू प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न था। उसका बहुत ही अल्प समय में प्रधान-मंत्रित्व प्राप्त कर लेना और भारत की तत्कालीन राजधानी दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ होने की घटना इतिहास में अद्वितीय है। उसने इस्लाम शाह के अधीन सरकारी नौकरी पाई, और सन् १५५३ ई० में मुबारिज़ खाँ अर्थात् अदली के सिंहासनारूढ़ होने पर उसने प्रधान-मंत्रित्व केवल योग्यता के बल पर प्राप्त किया। उत्तरी भारत में तीन वर्ष की अवधि तक सब मामलों की बागडोर सँभालकर वह आगे-आगे रहा। इतने कम समय में उसने २२ युद्धों का विजेता होने, दिल्ली को जीतने तथा अन्ततः पानीपत में शहीद होने का यश प्राप्त किया। उसके विपक्षी वृत्तान्तकारों द्वारा छोड़े गए वर्णनों से उसके साहस और बुद्धिमानी और प्रत्येक पग पर निर्विवाद सफलता का प्रमाण

मिलता है। एक सेनानायक के लिए यह वस्तुतः एक गौरवमय लेखा है विशेष कर उसके लिए जो पेशे या जन्म से नहीं बल्कि समय की आवश्यकताओं द्वारा एक योद्धा बन गया।

हेमू की युद्ध की तैयारियां और आवश्यकता से अधिक सावधानी से किए गए विवरण पाठकवृन्द को आज भी आश्चर्यान्वित कर देते हैं। पर्याप्त सबूत १५०० युद्ध-गजों को एकत्रित करने में उसकी प्रमुख सफलता निहित थी। उनको खिलाना-पिलाना—और वह भी भयंकर अकाल और बरसात का मौसम—विशेषतः जब कि भारत के कुछ भागों में अकाल और महामारी का जोर था—बहुत ही विस्मयकारी कार्य था—यही नहीं युद्ध भी लड़े जाने थे शान्ति पुनः स्थापित की जाने वाली थी और दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार भी किया जाना था। युद्ध की सर्वांगीण तैयारियों के बिना यह सब संभव नहीं था। युद्ध की गतिविधि की कला में हेमू अपने देशवासियों को अतिक्रमित कर गया था। १५० हाथियों और हजारों घोड़ों सहित एक टिड्डीदल के समान सेना को पूर्णतः सुव्यवस्थित रखकर वह एक प्रकार का चमत्कार दिखा रहा था। सब लेखकों ने उसकी युद्ध की तैयारियों की प्रशंसा की है, और उसके द्वारा प्राप्त की गई सफलता शस्त्रों युद्ध सामग्री सैनिकों हाथियों तथा अश्व एवं अपार खजानों के अतुलनीय संग्रह को एकत्रित करने में निहित थी।

हेमू अध्यवसायी और अविचलित था। यद्यपि उसे अधिक घुड़सवारी नहीं आती थी यह कहा जाता है कि वह हाथियों के हौदों में आरूढ़ रहने का आदी हो गया था। कल्पना कीजिए एक आदमी की जो एक रणभूमि से दूसरी रणभूमि को कभी अजमेर में तो कभी बयानापुर टीला में ग्वालियर से चुनार तथा कालपी को कालपी से आगरा को कभी पीछे को कभी आगे को घूम रहा हो। यदि कोई उस समय का अनुपात निकालने का यत्न करे तो उसने तीन वर्ष की अल्प अवधि में १६ वीं शताब्दी के भारत में विभिन्न स्थानों में यात्रा की होगी जो बहुत आश्चर्यजनक है। कहा जाता है कि उसके युद्ध के हाथी इतने द्रुतगामी थे कि घोड़े भी उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। संसार में वे विस्मयकारी अथवा द्रुत गति के आदर्श रहे होंगे नहीं तो ३ वर्ष उससे भी कम की संक्षिप्त अवधि में कोई भी सेना-नायक इतने युद्ध नहीं लड़ सकता था और विपक्षियों के विरुद्ध उत्तर में पूर्व में तथा पश्चिम में भी अपने को स्थिर नहीं रख सकता था।

हेमू दूरदर्शी था। वह जानता था कि शान्ति तभी स्थापित की जा सकती थी जब कि अड़ियल विरोधी अथवा विद्रोही अफगान मुखियों को अवरुद्ध किया जा सके। उसने उन्हें नीचा दिखाने उन्हें शिकार बनाने तथा बंगाल की सीमाओं तक

उनका पीछा करने में संकोच नहीं किया। उसने इब्राहीम को उसके गढ़ों से निकाल बाहर किया और परिणामतः दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए मार्ग साफ कर लिया। उसने सिकन्दर सूर से, जो मुगलों से युद्ध करने में लगा था अपना सम्पर्क बनाया। जब हुमायूं दिल्ली में अपना शासन पुनः स्थापित करने में सफल हुआ हेमू ने उतावलेपन में कोई कार्यवाही नहीं की। उसने अवसर की प्रतीक्षा की। हुमायूं की मृत्यु ने वह अवसर प्रदान किया। उसने उसे ग्रहण किया और इतनी शक्तिशाली सेना एकत्रित की कि दिल्ली में उसके सामने से मुगलों को भागना पड़ा। विजय के समय भी उसने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया। संकटपूर्ण पीछा करने से वह दूर ही रहता था और बिना अपनी स्थिति को दृढ़ किए वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता था। यह दूरदर्शिता उसकी सफलता की कुंजी थी।

हेमू प्रमुखतः १६ वीं शताब्दी की देन था और उसको 'शताब्दी का सबसे अधिक विलक्षण व्यक्ति" ठीक ही कहकर पुकारा गया है। वह उस युग में रहा जो शूरवीरों राजनीतिज्ञों और प्रतिभावान व्यक्तियों से भरा था। एक ओर बाबर और शेरशाह तथा दूसरी ओर अकबर के कार्यों के शानदार एवं उपर्युक्त वर्णनों के कारण—हेमू की कीर्ति और सफलता छिप गई। इन सबमें हेमू के कार्यों की अवधि सबसे छोटी थी लेकिन अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के हेतु लिए गए समय में अनुपाततः हेमू सबसे आगे निकल जाता है। बाबर ने तीन प्रमुख युद्ध लड़े और समय के अभाव के कारण अधिक नहीं कर सका। उसने अपने पुत्र के लिए एक अस्थिर साम्राज्य छोड़ा। हुमायूं को सदैव संकटपूर्ण समय का सामना करना पड़ा। शेरशाह के जीवन-काल की हेमू के जीवन काल से उत्तम समानता है और ऐसा भास पड़ता है कि हेमू ने उसके पद चिन्हों का अनुसरण किया। लेकिन उस काल द्वारा निर्णय करने से जिसमें दोनों कीर्ति शिखर पर पहुँचे हेमू उससे कहीं अधिक उत्तम ठहरता है। हुमायूं के न रहने से शेरशाह का समय बड़ी सुगमता से बीत रहा था। लेकिन उसको राजा मालदेव और मरुस्थल प्रदेश के विरुद्ध कड़ा युद्ध करना पड़ा और उसने कालिंजर में अपना अमूल्य जीवन खो दिया।

इसके विपरीत हेमू को बहुमुखी अराजकता का सामना करना पड़ा। अफगान सामन्तों में न तो कोई एकता थी और न एकमत। जब कि शेरशाह अफगानों की एक सम-सेना का नेतृत्व कर सका हेमू को एक विषम-सेना लेकर लड़ना पड़ा। शेरशाह के अपने सैनिक अफगानों से जातीय तथा धार्मिक खून के सम्बन्ध के बन्धन थे जबकि हेमू को जो न तो राजपूत था और न अफगान अपना मार्ग निर्धारित करने के लिए और उनकी सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के लिए लड़ना पड़ा। उसको एक के बाद दूसरी विजय

मिलता है। एक सेनानायक के लिए यह वस्तुतः एक गौरवमय लेखा है विशेष कर उसके लिए जो पैसे या जन्म से नहीं बल्कि समय की आवश्यकताओं द्वारा एक योद्धा बन गया।

हेमू की युद्ध की तैयारियां और आवश्यकता से अधिक सावधानी से किए गए विवरण पाठकवृन्द को आज भी आश्चर्यान्वित कर देते हैं। पर्वत सदृश १२०० युद्ध-गजों को एकत्रित करने में उसकी प्रमुख सफलता निहित थी। उनको खिलाना पिलाना—और वह भी चावल मक्खन और शक्कर का भोजन—विशेषतः जब कि भारत के कुछ भागों में अकाल और महामारी का जोर था—बहुत ही विस्मयकारी कार्य था—यही नहीं युद्ध भी लड़े जाने थे शान्ति पुनः स्थापित की जाने वाली थी और दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार भी किया जाना था। युद्ध की सर्वांगीण तैयारियों के बिना यह सब संभव नहीं था। युद्ध की गतिविधि की कथा में हेमू अपने देशवासियों को अचम्भित कर गया था। १५० हाथियों और हजारों घोड़ों सहित एक टिड्डीदल के समान सेना को पूर्णतः सुव्यवस्थित रखकर वह एक प्रकार का चमत्कार दिखा रहा था। सब लेखकों ने उसकी युद्ध की तैयारियों की प्रशंसा की है और उसके द्वारा प्राप्त की गई सफलता शस्त्रों युद्ध सामग्री सैनिकों हाथियों तथा अश्व एवं अथाह खजानों के अतुलनीय संग्रह को एकत्रित करने में निहित थी।

हेमू अध्यवसायी और अविश्रान्त था। यद्यपि उसे अधिक घुड़सवारी नहीं आती थी यह कहा जाता है कि वह हाथियों के हौदों में आरूढ़ रहने का आदी हो गया था। कल्पना कीजिए एक आदमी की जो एक रणभूमि से दूसरी रणभूमि को कभी अजमेर में तो कभी बहादुरपुर टांडा में ग्वालियर से चुनार तथा कालपी को कालपी से आगरा को कभी पीछे को कभी आगे को घूम रहा हो। यदि कोई उस समय का अनुपात निकालने का यत्न करे तो उसने तीन वर्ष की अल्प अवधि में १६ वीं शताब्दी के भारत में विभिन्न स्थानों में यात्रा की होगी जो बहुत आश्चर्यजनक है। कहा जाता है कि उसके युद्ध के हाथी इतने द्रुतगामी थे कि घोड़े भी उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। संभव है वे विस्मयकारी अथवा द्रुत गति के आदर्श रहे होंगे नहीं तो ३ वर्ष उससे भी कम की संक्षिप्त अवधि में कोई भी सेना-नायक इतने युद्ध नहीं लड़ सकता था और विपक्षियों के विरुद्ध उत्तर में पूर्व में तथा पश्चिम में भी भागने का स्थिर नहीं रख सकता था।

हेमू दूरदर्शी था। वह जानता था कि शान्ति तभी स्थापित की जा सकती थी जब कि अड़ियल विरोधी अथवा विद्रोही अफगान कुलीनों को अवरुद्ध किया जा सके। उसने उन्हें नीचा दिखाने उन्हें पिछाड़ लगाने तथा बंगाल की सीमाओं तक

उनका पीछा करने में संकोच नहीं किया। उसने इब्राहीम को उसके मंत्रों से निकाल बाहर किया और परिणामतः दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए मार्ग साफ कर लिया। उसने सिकन्दर सूर से, जो मुगलों से युद्ध करने में लगा था अपना संघर्ष बचाया। जब हुमायूँ दिल्ली में अपना शासन पुनः स्थापित करने में सफल हुआ हेमू ने उतावलेपन में कोई कार्यवाही नहीं की। उसने अवसर की प्रतीक्षा की। हुमायूँ की मृत्यु ने वह अवसर प्रदान किया। उसने उसे ग्रहण किया और इतनी शक्तिशाली सेना एकत्रित की कि दिल्ली में उसके सामने से मुगलों का भागना पड़ा। विजय के समय भी उसने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया। संकटपूर्ण पीछा करने से वह दूर ही रहता था और बिना अपनी स्थिति को दृढ़ किए वह एक इंच भी आगे नहीं बढ़ता था। यह दूर दर्शिता उसकी सफलता की कुंजी थी।

हेमू प्रमुखतः १६ वीं शताब्दी की देन था और उसको 'शताब्दी का सबसे अधिक विलक्षण व्यक्ति' ठीक ही कहकर पुकारा गया है। वह उस युग में रहा जो शूरवीरों राजनीतिज्ञों और प्रतिभावान व्यक्तियों से भरा था। एक ओर बाबर और शेरशाह तथा दूसरी ओर अकबर के कार्यों के शानदार एवं दर्पयुक्त वर्णनों के कारण—हेमू की कीर्ति और सफलता छिप गई। इन सबमें हेमू के कार्यों की अवधि सबसे छोटी थी लेकिन अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के हेतु लिए गए समय में अनुपाततः हेमू सबसे आगे निकल जाता है। बाबर ने तीन प्रमुख युद्ध लड़े और समय के अभाव के कारण अधिक नहीं कर सका। उसने अपने पुत्र के लिए एक अस्थिर साम्राज्य छोड़ा। हुमायूँ को सदैव संकट पूर्ण समय का सामना करना पड़ा। शेरशाह के जीवन-काल की हेमू के जीवन काल से उत्तम समानता है और ऐसा जान पड़ता है कि हेमू ने उसके पद चिन्हों का अनुसरण किया। लेकिन उस काल द्वारा निर्णय करने से जिसमें दोनों कीर्ति शिखर पर पहुँचे हेमू उससे कहीं अधिक उत्तम ठहरता है। हुमायूँ के न रहने से शेरशाह का समय बड़ी सुगमता से बीत रहा था। लेकिन उसको राजा मालदेव और मरुस्थल प्रदेश के विरुद्ध कड़ा युद्ध करना पड़ा और उसने कालिंजर में अपना अमूल्य जीवन खो दिया।

इसके विपरीत हेमू को अभूतपूर्व असुविधा का सामना करना पड़ा। अफगान सामन्तों में न तो कोई एकता थी और न एकमत। जब कि शेरशाह अफगानों की एक युद्ध-सेना का नेतृत्व कर सका हेमू को एक विषम-सेना लेकर लड़ना पड़ा। शेरशाह के अपने सैनिक अफगानों से जातीय तथा धार्मिक सूत्र के सम्बन्ध के बन्धन थे जबकि हेमू का था न तो राजपूत था और न अफगान अपना भाग्य निर्धारित करने के लिए और उनकी सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के लिए लड़ना पड़ा। उसका एक के बाद दूसरी विजय

प्राप्त होना यह प्रकट करता है कि वह उनके बीच कितना लोक-प्रिय था। अकबर के यश और कीर्ति के कारण जो उसने गाजी बन जाने के पश्चात् प्राप्त की हेमू की सफलताओं को निस्संदेह धक्का पहुँचा। अकबर के दरबारी लेखकों ने हेमू पर विष उगलने के लिए अपना सम्पूर्ण वाग्जाल समाप्त कर दिया था फिर भी अपने सम्राट की प्रशंसा करने के लिए अधिक उत्साह ने उनको ऐसे विवरण लिखने के लिए बाध्य कर दिया जिससे हेमू की ज्योतिर्मयी कीर्ति प्रस्फुटित होती है।

हेमू की पराजय के कल्पनात्मक कारण बताये गए हैं। वह पागलपन के लगभग निकट अभिमानी कहा गया था। उस पर इस्लाम के आदेशों को भंग करने का भी आरोप लगाया गया था। उसे अफगान सामन्तशाही जो उसको त्यागने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे समूल नष्ट करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था। लेकिन ये सब आरोप बिना प्रमाण के आधार हीन तथा 'द्वेषयुक्त' हैं। वास्तविक तथ्य एक प्रसिद्ध-इतिहासकार डा० त्रिपाठी द्वारा एक वाक्य में कहा गया है।

उसकी पराजय के कारण थे—उसकी तोपखाना का बन्दी बना लिया जाना और वह आकस्मिक तीर जिसने उसे बेहोश कर दिया तथा उसकी सेना में आतंक फैला दिया। उसकी पराजय आकस्मिक थी और अकबर की विजय दैवी थी। यह सच है कि यदि यह दुर्घटना न हुई होती तो मुगल पराजित हुए बिना नहीं रह सकते थे। उनका केवल १ हजार घुड़सवारों का ही अवलम्ब था जो हेमू की प्रभावशाली सेना के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था और जो ऐक्य स्थापित करने वाली एक ही शक्ति थी जिसमें हेमू के विलक्षण व्यक्तित्व की झलक थी। यह भी सत्य है कि अपने अंतिम आक्रमण के अवसर पर हेमू आवश्यकता से अधिक उत्साहित हो गया था जबकि शत्रु को केवल एक अल्पबल समझकर वह आगे बढ़ गया और शीघ्र विजय प्राप्त करने के हेतु अपने अमूल्य जीवन को संकट में डाल दिया। यदि उसने अपने हाथियों को आगे भेज दिया होता और अपने सेना नायकों को पहले आक्रमण करने दिया होता तो वह उन अविवेकपूर्ण धनुर्धारियों के घातक संघर्ष से बच जाता जिन्होंने पराक्रम के अन्तिम कार्य के रूप में कभी बायें और कभी दाएं तीर चलाए थे। लेकिन दैव ने अकबर के भाग्य का साथ दिया और एक ही प्रहार में राजनैतिक शतरंज के मैदान में उसका अकेला प्रभावशाली शत्रु लुप्त हो गया। हेमू के शहीद होने से भारत में मुगलों की प्रभुता स्थापित होने और अकबर के महानता में विस्तार पर पहुँचने के लिए मार्ग खुल गया। जो कुछ भी हुआ या होना था यह सत्य है कि हेमू ने एक गौरवमय जीवन व्यतीत किया और उसका संक्षिप्त लेकिन घटना पूर्ण जीवन समाज के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा।

परिशिष्ट—'क'

प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि

धर्म मित्र साधु किशोरी शरण प्राचीन निवासी नारनौल उर्फ महेन्द्रगढ़ की ओर से सम्मान्य दीवान बहादुर सर पंडित दया किशन साहब कौल (के. सी. आई. ई.) (सी. आई. ई.) प्रधान मंत्री रियासत पटियाला की सेवा में कस्बा नारनौल की कानूनगोई व नम्बरदार के हक के सम्बन्ध में प्रेषित प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि।

शुभचिन्तक ८ अप्रैल १९२० को स्थान पटियाला में पत्र द्वारा राय बहादुर पण्डित पुरोहित गोपी नाथ जी एम० ए० (सी० आई० ई०) मंत्री जयपुर मंत्री मंडल से भेंट करके सम्मानित हुआ था तथा उल्लिखित विषय में वैधानिक रूप से प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया था और उसके समर्थन में एक प्रार्थना पत्र मार्फत जनरल रजिस्ट्रार सभा आगरा से मन्त्री ने जनवरी १९२२ में भेजा था। श्री मान जी ने उस पर पर्याप्त ध्यान देकर नारनौल की निज़ामत से मिसिल मंगवाई थी। निवेदन यह है कि यह हक सम्राट अकबर के राज्यारोहण के समय प्रदान हुआ है। जिसको ३६७ साल का समय हुआ। अकबरी राजाज्ञा (फरमान) में ११ हजार प्रति वर्ष अंकित है और उसके साथ अन्य अधिकार भी थे। यह अधिकार अन्य सरकारों के समय में भी जो नारनौल पर अधिकार पाए हुए थे पाने को प्राप्त रहे। परन्तु पटियाला शासन के अधिकार पाने पर यह अधिकार कम होकर कुछ वर्षों तक प्राप्त रहा जैसा कि मिसिल से स्पष्ट होगा। अब निवेदन यह है कि— — — यह इलाका पटियाला व नारनौल स्थित मार्ग। पवन में स्थित धर्मार्थी इमारतें भगवान के मन्दिर, जिसकी पूजा व भोग इत्यादि के व्यय की सहायतार्थ अब पटियाला सरकार प्रदान करती रही व वैसी ही अन्य धर्मार्थी इमारतें बनवाकर जो अलवर में ढहरा में स्थित है......अर्थात अन्य स्थान महात्मा रामचरण दास आचार्य जिनके सहायक महाराज अलवर हैं और जिन्होंने कुछ समय पहिले ही ढहरा तक यात्रियों की सुविधा के लिए पक्की सड़क तैयार करा दी है, के विस्तार व पूरा करने हेतु उन भागों जनरल सभा को प्रदान किया जाय। और भविष्य में पालित था पहली रकम में सम्मिलित करके मन्दिर स्वामी के अतिरिक्त पूजा के व्यय हेतु जारी की जाय। ऐसा करने से श्री सरकार पटियाला का पुण्य बढ़ेगा और

हकदार अपने प्राचीन हक के पाने से वंचित न रहेंगे । द्वितीय आप जैसे प्रतिष्ठित व सम्मानित व धर्मपालक अधिकारी से इस बात की पुष्टि करना है कि आज कल लोग सांसारिक उन्नति की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं और आध्यात्मिक उन्नति को पूर्णत: भुला बैठे हैं और विश्वास भी नहीं करते हैं (कि) महात्मा नवल दास जी योगबल से कैसे विशाल स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर बना कर बन्दी के गृह से निकल गए। महात्मा नवल दास जी की इस आध्यात्मिक शक्ति का उल्लेख दो विविध स्थानों पर पूर्व समय का मिलता है—एक हेमू के भतीजे महीपाल की सन्तान जो कानौड़ में आबाद रही और अब भी है, के कागजात व दूसरे अनन्य रसिक माल पुस्तक जो राधा वल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन के यहाँ है में उल्लिखित है। मानों इस विषय में दोनों एक मत हैं। इन दो लेखों का प्रमाण भी इन दोनों बातों से भली प्रकार सिद्ध है। प्रथम तो अकबर जैसे भाग्य शाली के विषय में मिस्टर गिरट इत्यादि इतिहासकारों ने कुछ वाक्य लिखे हैं।

अत: ऐसे मुगल शहन्शाह का अपने धर्म अवलम्बियों से निडर होकर राधावल्लभी तिलक मस्तक पर लगाना हाथ में तुलसी की माला गले में तुलसी की कण्ठी और वस्त्र का होना क्या महात्मा नवल दास जी की आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव नहीं समझा जावेगा विशेष कर ऐसी दशा में जब कि साधारण हिन्दू भी तिलक लगाने में संकोच करते हैं। महान अकबर का यह हुलिया तथा वैष्णवी वेश भूषा असम्भव बातों में से था। राज्य जब अकबर के हाथ में आया और महात्मा नवल दास जी से भेंट हुई तो वह पूरे १४ वर्ष का भी न था। महात्मा नवलदास जी का " देख कर समझ लिया कि इससे बढ़कर और क्या सिफारिश हो सकती है।

अत: अकबर के हृदय पर महात्मा जी के चमत्कार का इतना महान प्रभाव पड़ा कि उसने राधा वल्लभी रूप धारण कर लिया। इस रूप में अकबर के चित्र भारतखण्ड इत्यादि बहुत इतिहासों में दिए हुए हैं। द्वितीय हेमू अकबर का प्राचीन (पुश्तैनी) शत्रु था। अकबर के पिता हुमायूं को बादशाह ने हिंदुस्तान से निकाल दिया था और जब हुमायूं ईरान के शाह से सहायता लेकर हिन्दुस्तान में आया तब उस समय शेरशाह के राज्य पर २ सीधा युद्धों का विजेता हेमू ही अधिकार किए हुए था। इसके विषय में अबुल फजल ने लिखा है 'अगरचे दूर बीने कि हेमू अज बख्त मुसाइद करदा बस्मीसामान रा दर आवरदन मैयस्सर न बूद बूद अर्थात वास्तव में हेमू ने सौभाग्य से जिस किस्मत से मिलता की वह उस समय बादशाही का भी प्राप्त न थी'। अत: ऐसी दशा में अकबर के संरक्षक (अतालीक) बैरम खां के आदेश से हेमू के अनुयायियों के साथ जो अन्याय हुआ वह भी इतिहास बतलाता है। इन

सब बातों के होते हुए भी हेमू के भतीजे महीपाल के पुत्र नयनमल को रामूमोई का मनसब व ग्यारह हजार रुपया वार्षिक आय की जागीर प्रदान करना क्या महात्मा नवल दास जी की (के) उस चमत्कार का प्रमाणित नहीं करता जैसा कि उन दोनों प्राचीन लेखों से स्पष्ट होता है। महीपाल का नाम तीन विभिन्न सभा[1] में उल्लिखित है और दो लेखों से हेमू का भतीजा होना प्रमाणित है। असली अकबरी फरमान मौजूद है। उसमें भायमल पुत्र महीपाल लिखा है। परन्तु हस्तलिखित पुस्तक में शिकस्त लिपि में महीपाल (""""""") लिखा था। नकल करने वालों ने घरपाल लिख दिया। घरपाल कोई नाम ही नहीं। महीपाल की सन्तानों के पुराने वंश वृक्ष में दूसरे शाखा (सर्वश्रेष्ठ पुरुष) महीपाल लिखा है। "" """" """"कागजात स्वयं उपस्थित होकर आप को दिखा दिए जावेंगे। चूंकि धर्म निष्ठ धर्मात्मा सरकार की प्रजा में से महीपाल के वंश से है और पिता जयपुर में " " ""हुए। अतः दोनों रियासतों का हृदय व जान से शुभ चिन्तक प्रार्थना करता है। यहाँ भी एक प्रार्थना पत्र रियासत जयपुर के अधिकारियों की सेवा में छपा कर प्रस्तुत की गई। उसमें यहाँ के महात्माओं की शक्तियों व चमत्कारों का शुभ चिन्तक होने के प्रमाण हेतु प्रस्तुत किया गया। एक प्रति उसकी भी आपके अवलोकनार्थ संलग्न है। इति।

१—सन १५५९ ई० के लिखे सम्राट अकबर के दान-पत्र में महिपाल दूसर लिखा हुआ है।

परिशिष्ट—ख

हेमचन्द्र विक्रमादित्य विषयक

श्री राहुल सांकृत्यायन की खोज[1] व उसकी समीक्षा

१—सिकन्दर इत्यादि के विषय में .... ।

× × ×

२— 'प्राचीन काल से ही व्यापारियों के सार्थ (कारवाँ) और देशों की तरह भारत में भी चलते थे। कितने ही सार्थवाह उस समय लखपती करोड़पती थे। माल से भरी उनकी नावें हमारे देश की नदियों और समुद्रों में चलती थीं। जहाँ नाव की सुविधा नहीं थी वहाँ स्थल-मार्ग पर व्यापारी बैलगाड़ियों और बैलों पर माल लादे एक जगह से दूसरी जगह उन्हें बेचने जाते थे। कम्पनी के राज्य में भी बलिया के रौनियार सार्थवाह बैलों पर कपड़े लादकर नैपाल की राजधानी काठमाण्डू पहुँचते थे। साधारण सार्थवाह की चीजें साधारण होती थीं। कितने ही रौनियार गाढ़ा (खादी) या छपा छींट या रँगा कपड़ा नैपाल ले जाते। सन् १८५० से कुछ साल पहले उनका बहुत सा माल बिका नहीं। माल लौटा लाना उनके लिए घाटे की चीज थी इसलिए वह उसे बेचने के लिए वहीं रह गये। आज भी उनके वंशज काठमाण्डू में रहते हैं। श्री शिवप्रसाद जी रौनियार उनके मुखिया हैं। विवाह सम्बन्ध वे बिहार या उत्तर प्रदेश के रौनियारों में करते हैं नहीं तो वह वैसे ही नैपाली हैं जैसे दूसरे।

रौनियार पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के सार्थवाह हैं। शिव प्रसाद के पूर्वजों की तरह उनमें कुछ हजार पूँजीवाले भी व्यापारी थे और दूसरे लाखों के स्वामी भी जिनकी कोठियां चटगाँव और समुद्र के कितने ही और बन्दरों में थी। अपने प्रदेश के बड़े-बड़े शहरों में भी उनका कारबार होता था। सार्थवाह का काम वे लोग नहीं कर सकते थे जिन्हें कि हम लालकम बनिया समझने के आदी हैं। सार्थ को जिन राज्यों में से गुजरना पड़ता था उनमें सभी अपने यहाँ शान्ति स्थापित करने में समर्थ नहीं थे। जहाँ समर्थ शासक थे वहाँ सार्थवाह भेंट पूजा देकर अपना काम बनाते थे। जहाँ अशान्ति थी वहाँ अपनी

---

[1]—सरस्वती मासिक पत्रिका में प्रकाशित लेख—मई १९६१ पृ० सं० १०९—१११।

रक्षा का भार वे खुद अपने ऊपर लेते थे। इसके लिए वे सैकड़ों और कभी हजारों की संख्या में चलते थे। उनके पास तलवार भाले तीर धनुष ही नहीं बल्कि उस समय का सबसे जबर्दस्त हथियार पलीतेदार बन्दूकें भी होती थीं। गरम मसाले वालों का सार्थ में गुजर नहीं था। इसलिए बैलों पर माल के बैल गाड़ियों को चलाने के लिए वही जवान लिये जाते जो मौका पड़ने पर सिपाही बन जाते। भोजपुरियों में सिपाहीपन की स्वाभाविक आदत थी।

सहसराम का एक ऐसा ही रौनियार सार्थवाह था जो अपने प्रदेश में धन-वैभव उदारता और बहादुरी के लिए ख्याति रखता था। मामूली शासक नहीं बल्कि अपने-अपने इलाकों के प्रभु भी उसकी इज्जत करते और समय समय पर वह सार्थवाह अपने धन से उन्हें मदद करके अनुगृहीत भी करता। यदि धरमाह राजा होते हुए भी फावड़ा थाम सकता था तो रौनियार सार्थवाह भी साधारण बैल हाँकनेवाले अपने आदमी के सभी कामों का करने के लिए तैयार था। उसने अपनी जवानी में यह किया था और चाहता था कि उसका लड़का भी इसे अच्छी तरह सीखे। उसने भारी कारबार के लिए विद्या पढ़ना बहुत आवश्यक है। सार्थवाह ने अपने लड़के को उसे भी सिखलाया था और कई बार समुद्र (चट्गाम) की ओर जानेवाले बड़ी सार्थों के और कितनी ही बार स्थल की बैलपान्थियों के सार्थों के साथ भी भेजा था। तरुण ने एक ओर अपनी विद्या-बुद्धि से अपने पिता को प्रसन्न किया था तो दूसरी ओर अपनी बहादुरी को उसने कई बार शत्रुओं के सामने दिखलाया था। इस लड़के का नाम हेमचन्द्र था जिसे प्यार से लोग हेमू भी कहा करते थे।

१—इधर पिता के स्थान को हेमचन्द्र ने सँभाला और उधर उत्तरी भारत के छत्रपति बनने के प्रयत्न में दूर तक आग बढ़ चुका था और उसने सहसराम को अपनी राजधानी बनाया था। शेर को गुनियों का पारखी था और हमेशा उनकी खोज निकालने की फिक्र में रहता था। हेमचन्द्र कैसे उनकी नजर से ओझल हो सकता था? उसने बुलाकर हेमचन्द्र को अपना खाद्य विभाग सौंप दिया। वह यह जानता था कि हेमचन्द्र में किसी भोजपुरी से कम युद्ध की क्षमा की निपुणता नहीं है। पर राज्य के लिए कोष सेना से कम आवश्यक नहीं था। हेमचन्द्र ने कोष का इतनी योग्यता से प्रबन्ध किया कि शेरशाह की बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में भी वह कभी खाली नहीं हुआ। हुमायूँ का पीछा करते हुए शेरशाह कन्नौज दिल्ली और राजस्थान के रेगिस्तानों तक पहुँचा। वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि उसके सैनिकों का एक महीने का वेतन अगले महीने मिले। और हेमचन्द्र कुबेर भण्डारी थे। कोष क्यों कभी खाली होने लगा।

अपनी कार्यदक्षता के साथ साथ हेमचन्द्र शेरशाह का बहुत विश्वासपात्र

भी था। वह शेरशाह की सभी सफलताओं को अपनी ही सफलता समझता था। शेरशाह मुसलमान था और हेमचन्द्र हिन्दू, लेकिन दोनों अपने को एक देश और आदर्श की सन्तान मानते थे। शेरशाह ने जिस तरह दिल खोलकर हिन्दुओं को आगे बढ़ाया था और सदियों से चले आते भेद भाव को अपने यहाँ स्थान नहीं दिया था, उसके कारण सभी हिन्दू शेरशाह के भक्त हो गए थे भोजपुरी तो उसे अपने ही जैसा भोजपुरी मानते थे इसलिए उसके साथ विशेष आत्मीयता रखते थे। यदि कम्पनी की सेना के साथ-साथ भोजपुरी सिपाही कलकत्ता से पेशावर तक पहुँचे थे तो इस काम से उन्होंने चार सौ वर्ष पहले शेरशाह के समय को ही दोहराया था।

१५३९ ई में शेर खाँ शेरशाह का नाम धारण कर गौड़ में तख्त पर बैठा। १५४० ई० में हुमायूँ भारत छोड़ कर भागा। हुमायूँ के भागने के थोड़े ही दिनों बाद शेरशाह बंगाल से सिंध तक का बादशाह बन गया। वहाँ उसका शासन हुआ वहाँ खुशहाली और शान्ति व्यवस्था के स्थापित होने में देर नहीं हुई। उसमें काफी हाथ हेमचन्द्र का भी था। शेरशाह को पाँच ही साल भारत का अधिराज रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालिंजर में अकस्मात् बारूद में आग लगने से शेरशाह को प्राण खोना पड़ा। उसको दिल्ली नहीं अपना सहसराम प्यारा था यह सभी जानते थे। इसलिए उसे वहीं लाकर दफनाया गया। आज भी तालाब के बीच में अपने विशाल मकबरे के भीतर वह बहादुर सो रहा है जिसने अकबर का पथ प्रदर्शन किया। कुछ बातों में यदि अकबर बढ़ चढ़ कर था तो कितनी ही बातों में शेरशाह भी।

शेरशाह के मरने के बाद उसका पुत्र इस्लाम शाह गद्दी पर बैठा। उसके नौ वर्ष (१५४५-५४ ई०) के शासन में शेरशाह की शासन-व्यवस्था चलती रही और किसी हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं रहा। योग्यता का आगे करना प्रजा को सुखी रखना शासन का ध्येय था। इस सारे काल में हेमचन्द्र को और भी अपना जौहर दिखलाने का मौका मिला। पहले शेरशाह की छाया में होने के कारण वह उतना प्रकाशमान नहीं दीखता था अब वह शासन का सबसे बड़ा स्तम्भ था। भू कर व्यवस्था में ही नहीं बल्कि सामरिक धूम-धाम में भी वह असाधारण समझा जाता था। हेमचन्द्र के बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था। इस्लामशाह अपने पिता के इस योग्य आमात्य को बड़े आदर की दृष्टि से देखता।

\+ \+ \+

४—इस्लामशाह के मरने के बाद घर में फूट पड़ गई। उसके नाबालिग पुत्र को मारकर शेरशाह के भतीजे आदिल शाह ने गद्दी सँभाली। हेमचन्द्र को यह पसन्द नहीं आया लेकिन कुछ करना संभव नहीं था। पठानों के आपसी

झगड़े से जो कमजोरी भीतर पैदा हुई उससे वह और भी चिन्तित था। हेमचन्द्र की योग्यता को देखकर आदिलशाह ने उसे अपना वजीर और सेनापति बनाया। घर में पठानों ने आग लगा दी थी इसलिए हेमचन्द्र का पहले बिहार को सँभालना था। आखिर वहीं की सेना सूरी वंश की सेना का मुख्य अंग थी। दिल्ली में हेमचन्द्र के न रहने पर वह अरक्षित हो गई और हुमायूँ ने आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। इसके छः ही महीने बाद (१५५५ में) ? हुमायूँ पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर दिल्ली में मर गया और उसके १३ वर्ष के पुत्र अकबर को बैरम खाँ की अभिभावकता में गद्दी सँभालनी पड़ी। हेमू अपने वीरों की सेना लेकर दिल्ली की तरफ दौड़ा और मुगलों का सामने में ही खैरियत मालूम हुई।

हेमचन्द्र को मालूम था कि जिस वंश के लिए वह लड़ रहा है वह अब इस योग्य नहीं है कि इस बड़े भार को अपने कन्धे पर उठा सके। सभी सूरी नहीं बल्कि सभी पठान बादशाह बनने के लिए तुले हुए थे। ऐसी स्थिति में सेना का विश्वास डिग सकता था। उसके सेना नायकों और सैनिकों ने बार दिया और हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से १५५५ ई० ? दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। पिथौरा और जयचन्द्र के समय खाली सिंहासन का फिर हेमचन्द्र के रूप में हिन्दू शासक मिला। अब भी मुगल शक्ति का उच्छेद नहीं हुआ था। यदि पठानों में शेरशाह के समय की एकता होती तो हेमचन्द्र को यह कदम न उठाना पड़ता। पठान भी उस पर विश्वास रखने थे इसलिए उसके झण्डे के नीचे लड़ने (के) लिये तैयार थे। हेमचन्द्र ने मुगलों की सेना को हार पर हार दी थी। तुगलकाबाद में हेमू की सफलता साधारण नहीं थी। लेखक के अनुसार बड़े-बड़े अरबवाले जंगी तलवारबाज अफगान और वंश के भारी सामान राजपूतों पठानों और मेवातियों की ३० हजार जबर्दस्त फौज एक हजार हाथी, ५१ दुर्गध्वंसक तोपें ५०० शतनाल और ईंदनाल जम्बूरक उसके साथ थे। यह विशाल सेना अपने स्थान से चली और रास्ते के मुगल हाकिम को रौंदती हुई दिल्ली पहुँच गई।

आखिरी फैसला पानीपत के मैदान में हुआ जहाँ अकबर का सेनापति खानेजमा अली कुली खाँ सीस्तानी अपनी फौज लिए खड़ा था। इस युद्ध के बारे में मम्मुल उलेमा मौलाना आजाद ने अपनी 'दरबार अकबरी' में लिखा है—"हेमू अपने हवाई नामक हाथी पर सवार हो सेना के मध्य को सँभालने खड़ा फौज को लड़ा रहा था। जंग में मैदान का रंग-ढंग देखकर उसने हाथी हूल दिये। काले पहाड़ों ने अपनी जगह से हरकत की और काली घटा के साथ अकबरी नमकख्वार पीछे हटे। आगे लेकिन अमन हाथ-हवास के साथ। काले पानी की बाढ़ को उन्होंने रास्ता दिया। लड़ते-भिड़ते हटते

चले गये। लड़ाई के समय सेना का रुख और नदी का बहाव एक सा होता है, जिधर को फिर गया। उधर चला जाता है। शत्रु के हाथियों की पांती बादशाही फौज के एक पार्श्व को रेलती हो गई। खानेजमां अपनी जगह खड़ा था, और सेनापति की दूरबीन से चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा कि काली आंधी जो सामने से उठी बराबर को निकल गई। अब हेमू की सेना के मध्य का सिरे खड़ा था। एकाएक सेना को ललकार कर हमला किया। शत्रु हाथियों के घेरे में था उसके चारों ओर बहादुर पठानों का झुंड था। उसमें फिर भी घेरे को ही देखा तर्क तीरों की बौछार करते हुए बढ़े। उधर से हाथी तलवार सूंडों में फिराते और जंजीरें झुलाते आगे आये। हाथियों के हमले को हौसले और हिम्मत से रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि चाहे हाथियों से निकले हैं तो कूद पड़े और तलवारें खींचकर शत्रु की पांतियों में घुस गये। उन्होंने तीरों की बौछार से काल राक्षसों के मुंह फेर दिये और काले पहाड़ों का मिट्टी का ढेर सा बनादिया। अद्भुत घमासान रन पड़ा। हेमू की बहादुरी तारीफ के लायक है। वह तराजू बाट का उठाने वाला दाल चपाती का खाने वाला हौदे के बीच में नंगे सिर खड़ा था। सेना की हिम्मत बढ़ा रहा था।"" जीत और हार भगवान के हाथ में है।

शादीखान पठान जो हेमू के सरदारों की नाक था कटकर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना अनाज के दानों की तरह बिखर गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथी पर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारों के नाम ले-लेकर पुकारता था कि समेटकर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतने में एक मौत का तीर उसकी आंख में लगकर आर पार हो गया उसने अपने हाथ से तीर खींच कर निकाला और आंख पर रूमाल बांध लिया मगर घाव से इतना बेहोश और बेकरार हुआ कि हौदे में गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनुयायियों की हिम्मत टूट गई। सब तितर-बितर हो गये।

पानीपत का मैदान अकबर के हाथ में रहा। खानेजमां ने मुगल सल्तनत की हिन्दुस्तान में नींव रखदी। शुक्रवार मुहर्रम महीने की दूसरी तारीख हिजरी सन ९६४ (५ नवम्बर १५५६ ई) का पानीपत का रन भारत के भाग्य के निपटारे की तारीख है।

सेना भग गई। तुर्कों ने हाथी को घेर लिया। हेमचन्द्र अब उनके बन्दी थे। उन्हें अकबर के सामने ले जाया गया। किसी सवाल का जवाब देना हेमचन्द्र ने अपनी शान के खिलाफ समझा। उन्हें अफसोस नहीं हो सकता था कि युद्ध क्षेत्र में जिन्दा पकड़ा आया। बैरमखां ने अकबर से कहा कि अपने हाथ से इस काफिर को मारकर गाजी की पदवी धारण कीजिए। अकबर ने मरणासन्न के ऊपर तलवार उठाने से इन्कार कर दिया। यदि अकबर

अभी १४ वर्ष का छोकरा न होता और उसका ज्ञान और चतुर्दा परिपक्व होता तो इसमें शक नहीं कि हेमचन्द्र का वह अपनी तरफ करने की कोशिश करता और हेमू अकबर के नौरत्नों में होते।

हेमचन्द्र को मुसलमान इतिहासकारों ने बक्काल (बनिया) लिखा है। मौलाना आज़ाद ने उन्हें दूसर बनिया कहा है। दूसर बनिया आज कल अपने को भार्गव ब्राह्मण कहते हैं। अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहासकार हेमचन्द्र के जन्मस्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते। पिछले इतिहासकारों ने उन्हें पश्चिम का ही कोई बनिया माना है। परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के धौनिवार वैश्यों में दूसरी ही परम्परा पाई जाती है जो अधिक विश्वसनीय मालूम होती है। उनके कथन के अनुसार हेमचन्द्र धौनिवार थे। सहसराम के आसपास के ही रहने वाले थे और अपनी योग्यता से इतने ऊँचे पद पर पहुँचे थे। श्री रामगोविन्द शरण 'बिहारी' स्वयं धौनिवार हैं। उन्होंने लेखक को बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं। मैंने उनसे उन गीतों को जमा करने के लिए कहा। ऐसे महत्व पूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब बूढ़ी बूढ़ी ही रह गई हैं। जो दिन पर दिन खतम हो रही हैं। हेमचन्द्र का भोजपुरी भाषी बिहारी होना अधिक विश्वसनीय इसलिए भी मालूम होता है कि शेरशाह की प्रभुता का आरंभ और आधार भोजपुरी क्षेत्र था। शेर शाह और उनके वंशजों का यहाँ के लोगों को अधिक विश्वसनीय समझना स्वाभाविक था। हेमचन्द्र दाल-चपाती खाने वाले बनिये नहीं थे। धौनिवार आज भी माँस मछली के प्रेमी हैं, और जैसा पहले कहा गया है सार्थवाह होने के कारण उनमें एक सैनिक की हिम्मत थी। भोजपुरी इलाके का तो हरएक जाति का तरुण भारी और हिम्मत का धनी होता है।

चले गये। लड़ाई के समय सेना का रुख और नदी का बहाव एक सा होता है, जिधर को फिर गया। उधर चला जाता है। शत्रु के हाथियों की पाँती बाद शाही फौज के एक पार्श्व को रेलती हो गई। खानेजमां अपनी जगह खड़ा था, और सेनापति की दूरबीन से चारों तरफ नजर दौड़ा रहा था। उसने देखा कि काली आँधी जो सामने से उठी बराबर को निकल गई। अब हेमू की सेना के मध्य का लिये खड़ा था। एकाएक सेना को ललकार कर हमला किया। शत्रु हाथियों के घेरे में था उसके चारों ओर बहादुर पठानों का झुंड था। उसने फिर भी घेरे को ही देखा तर्क तीरों की बौछार करते हुए बढ़े। उधर से हाथी असवार धूमें में फिराते और जंजीरें झुलाते आगे आये। हाथियों के हमले का हौसले और हिम्मत से रोका। वह तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि घोड़े हाथियों से बिदकते हैं, तो कूद पड़े और तलवारें खींचकर शत्रु की पाँतियों में घुस गये। उन्होंने तीरों की बौछार से काले राक्षसों के मुँह फेर दिये और काले पहाड़ों का मिट्टी का ढेर सा बनादिया। अद्भुत घमासान रन पड़ा। हेमू की बहादुरी तारीफ के लायक है। वह तराजू बाट का जानने वाला बाल बच्चों का पालने वाला हौदे के बीच में नंगे सिर खड़ा था। सेना की हिम्मत बढ़ा रहा था।"""" जीत और हार भगवान के हाथ में है।

शादीखान पठान जो हेमू के सरदारों की नाक था कटकर मिट्टी पर गिर पड़ा। सेना अनाज के दानों की तरह बिखर गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथी पर सवार चारों तरफ फिरता था। सरदारों के नाम ले-लेकर पुकारता था कि समेटकर उन्हें फिर एकत्रित कर ले। इतने में एक मौत का तीर उसकी आँख में लगकर आर पार हो गया उसने अपने हाथ से तीर खींच-कर निकाला और आँख पर रूमाल बाँध लिया मगर घाव से इतना बेहोश और बेकरार हुआ कि हौदे में गिर पड़ा। यह देखकर उसके अनुयायियों की हिम्मत टूट गई। सब तितर-बितर हो गये।

पानीपत का मैदान अकबर के हाथ में रहा। खानजमा ने मुगल सल्तनत की हिन्दुस्तान में नींव रखी। शुक्रवार मुहर्रम महीने की दूसरी तारीख हिजरी सन ९६४ (५ नवम्बर १५५६ ई०) का पानीपत का रन भारत के भाग्य के निपटारे की तारीख है।

सेना भग गई। तुर्कों ने हाथी को घेर लिया। हेमचन्द्र अब उनके बन्दी थे। उन्हें अकबर के सामने ले जाया गया। किसी सवाल का जवाब देना हेमचन्द्र ने अपनी शान के खिलाफ समझा। उन्हें अफसोस यही हो सकता था कि युद्ध क्षेत्र से मैं जिन्दा क्यों यहाँ आया। बैरमखाँ ने अकबर से कहा कि अपने हाथ से इस काफिर को मारकर गाजी की पदवी धारण कीजिए। अकबर ने भग्नाशय के ऊपर तलवार उठाने से इन्कार कर दिया। यदि अकबर

अभी १४ वर्ष का छोकरा न होता और उसका ज्ञान और तजुर्बा परिपक्व होता तो इसमें शक नहीं कि हेमचन्द्र को वह अपनी तरफ करने की कोशिश करता और हेमू अकबर के नौरत्नों में होते।

हेमचन्द्र को मुसलमान इतिहासकारों ने बक्काल (बनिया) लिखा है। मौलाना आज़ाद ने उन्हें दूसर बनिया कहा है। दूसर बनिया आज कल अपने को भार्गव ब्राह्मण कहते हैं। अकबर के पुत्र जहांगीर के समकालीन इतिहासकार हेमचन्द्र के जन्मस्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते। पिछले इतिहासकारों ने उन्हें पश्चिम का ही कोई बनिया माना है। परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के रौनियार वैश्यों में दूसरी ही परम्परा पाई जाती है जो अधिक विश्वसनीय मालूम होती है। उनके कथन के अनुसार हेमचन्द्र रौनियार थे। सहसराम के आसपास के ही रहने वाले थे, और अपनी योग्यता से इतने ऊँचे पद पर पहुँचे थे। श्री रामलोचन शरण 'बिहारी' स्वयं रौनियार हैं। उन्होंने लेखक को बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं। मैंने उनसे उन गीतों को जमा करने के लिए कहा। ऐसे महत्त्वपूर्ण गीतों की गाथिकाएँ अब कुछ बूढ़ी ही रह गई हैं। जो दिन पर दिन खतम हो रही हैं। हेमचन्द्र का भोजपुरी भाषी बिहारी होना अधिक विश्वसनीय इसलिए भी मालूम होता है कि शेरशाह की प्रभुता का आरंभ और आधार भोजपुरी क्षेत्र था। शेर शाह और उनके वंशजों का यहाँ के लोगों को अधिक विश्वसनीय समझना स्वाभाविक था। हेमचन्द्र दाल-भात-खाने वाले बनिये नहीं थे। रौनियार आज भी मांस मछली के प्रेमी हैं, और जैसा पहले कहा गया है, सार्थवाह होने के कारण उनमें एक सैनिक की हिम्मत थी। भोजपुरी इलाके का तो हरएक जाति का तरुण लाठी और हिम्मत का धनी होता है।

समीक्षा

श्री राहुल जी को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सभी जानते हैं परन्तु इतिहास अन्वेषण में योग देने का श्री राहुल जी का हेमू विषयक लेख सम्भवतः पहला प्रयास है। इसको पढ़कर प्रतीत होता है कि राहुल जी प्रचलित लोक गीतों के आधार पर तथा कुछ व्यक्तियों के कथनों के अनुसार इस निश्चय पर पहुँच गए हैं कि हेमू अथवा हेमचन्द्र रौनियार थे और सहसराम के आसपास के ही रहनेवाले थे। राहुल जी का यह कथन कि अकबर के पुत्र जहाँगीर के समकालीन इतिहासकार हेमचन्द्र के जन्म स्थान के बारे में कोई निश्चित बात नहीं बतलाते यह ठीक नहीं है। अकबर के समकालीन इतिहासकार व लेखकों ने स्पष्टतः हेमू को रिवाड़ी का निवासी बताया है।

(२) राहुल जी ने शेरशाह व हेमू को समकालीन एवं सहकर्मी बताया है, और शेरशाह की विजयों में हेमचन्द्र का भी काफी हाथ बताया है। परन्तु इसकी पुष्टि तथ्यों से नहीं होती। मुगल तथा अफगान इतिहासकारों ने एक-मत से यह कहा है कि सर्वप्रथम हेमू इस्लामशाह के शासन काल में बाजार अधीक्षक के रूप में नियुक्त हुआ था। यदि राहुल जी का कथन स्वीकार करके यह मान लिया जाये कि हेमू शेरशाह के साथ सेना संचालन में भाग ले रहा था तो उसकी मृत्यु के पश्चात् वह केवल बाजार-अधीक्षक का पद स्वीकार नहीं करता।

(३) राहुल जी का यह कथन कि इस्लामशाह के शासन-काल में 'हेमचन्द्र के बिना कोई काम पूरा नहीं समझा जाता था'—भी सत्य नहीं मालूम पड़ता। यह परिस्थिति तो आदिलशाह अथवा अदली के शासन-काल में उत्पन्न हुई थी जब कि अफगान सामन्त तीन विभिन्न वर्गों में विभाजित होगए थे।

(४) हेमचन्द्र का सर्वप्रथम कार्य क्षेत्र पश्चिम में ही रहा—इस्लाम शाह की शक्ति का केन्द्र ग्वालियर था न कि सहसराम। बिहार क्षेत्र में हेमू केवल अदली के चुनार में स्थापित हो जाने के पश्चात् सम्मान पाये। इस क्षेत्र में ही हेमू ने अपनी सैनिक दक्षता व अपूर्व वीरता का परिचय दिया जिसके फल स्वरूप उसे विक्रमादित्य की उपाधि प्रदान की गई। चुनार के भीषण युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् बंगाल व बिहार में हेमू की धाक जम गई। हेमू ने इस क्षेत्र को अदली के लिए सुरक्षित मात्र कर नहीं रखने

की प्रार्थना की। स्वयं हेमू न पूर्व में करौनियों का पीछा किया न पश्चिम में काल्पी तक भागा मारा। अबुलफजल द्वारा वर्णित २२ युद्धों में हेमू ने अधिकतर युद्ध पश्चिमी क्षेत्र में ही लड़े। हेमू का ध्यान सर्वत्र पश्चिमी क्षेत्रों के प्रमुख शक्ति के केन्द्रों—आगरा काल्पी ग्वालियर तथा दिल्ली की ओर रहता था।

(५) दिल्ली व पानीपत के युद्धों के विस्तृत वर्णनों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि हेमू की सेना में सम्भल (आधुनिक मुरादाबाद जिले में) के हाजी खाँ व अलवर के हाजी खाँ थे। दिल्ली में विजय भी प्राप्त करने में अलवर के हाजी खाँ का सबसे बड़ा हाथ था। पानीपत के युद्ध में भी हाजीखाँ ने प्रमुख भाग लिया। इसके अतिरिक्त हेमू के भानजे रमैया भगवानदास व सदामखाँ का उल्लेख है। इनमें से कोई भी बिहार क्षेत्र का नहीं था।

(६) हेमू के सेनानायक शादी खाँ व भगवानदास की मृत्यु हेमू के आहत हो जाने के पश्चात् घमासान युद्ध में हुई थी न कि उसके पहले। हेमू की *आँख में तीर लगने के समय तक सेना अथवा सेना नायक भी युद्ध में तत्पर थे।*

(७) राहुल जी ने अपने लेख में बताया है कि श्री राम लोचन शरण 'बिहारी' जो स्वयं दरभंगा के हैं, उन्होंने बतलाया कि उनके यहाँ स्त्रियाँ विशेष समयों में हेमू के गीत गाती हैं ऐसे महत्त्वपूर्ण गीतों की गायिकाएँ अब कुछ बूढ़ी ही रह गई हैं। ऐसे गीतों का प्रचलन कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। क्यों कि हेमू ने इसी क्षेत्र में सर्वप्रथम अपनी अद्भुत सैनिक प्रतिभा दिखलाई थी व इस क्षेत्र के निवासियों को अदली के आधीन कुछ वर्षों के लिए शान्ति व संरक्षण प्रदान किया था, तो वहाँ के निवासी अवश्य ही उनके गुणगान करेंगे व करते रहेंगे।

(८) उपरोक्त विषयों पर विचार विनिमय करने से राहुल जी के निर्णय तक पहुँचने के लिए कोई अवलम्ब नहीं मिलता। दूसरी ओर प्रस्तुत पुस्तक में दिये गए अबुल फजल अब्बासखाँनी नियामतुल्ला फिरिश्ता आदि के कथनों से स्पष्ट हो जायेगा कि पानीपत के युद्ध में भाग लेने वाले हेमू का मुख्य कार्य स्थल पश्चिमी क्षेत्र था न कि बिहार, तथा उनका जन्मस्थान अलवर प्रदेश में था न कि बिहार में। स्वयं शेरशाह मुख्यतः "साकिन ए कस्बा नारनौल" था न कि सहसराम का निवासी यद्यपि शेरशाह का प्रधान कार्य स्थल बिहार ही बन गया था। अस्तु श्रीराहुल जी द्वारा प्रदत्त सामग्री को ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टि न होने के कारण उनपर पृथक ही प्रकाश डाला जा सकता है। पाठक गण स्वयं ही उसका मूल्य आँक सकते हैं।

सम्मतियाँ और समालोचनाएँ

DR. RAM KUMAR VARMA
M. A., Ph. D.,
Ex-Hindi Professor Moscow (USSR.) Vishwavidyalaya

'Saket Phone No. [illegible]
Hindi Vibhag
Prayag

3. 8. 195[illegible]

I have read the treatise HEMU AND HIS TIMES wi[th] great interest. It is divided into ten chapters and has a conv[incing] historical background The matter has been gathered fr[om] authentic sources and an attempt has been made to make [a] coherent assessment of the historical events and personalities. The writer has discovered new facts and a co-relation has bee[n] established between reasons and realities. He has the capacity for the critical judgment and his conclusions are founded on rationalism and logic.

One fact must be brought into notice. The details of Hemu's biography are missing The psychological background of Hemu's character and the gradual stages which switched him off from trade into politics should have been gathered and pre sented with authentic accuracy For this, recourse should b[e] made into persian records or the writings of the followers o[f] Swami Hit Hari Vansh. Further research into realm of Hemu['s] mental make-up will improve the book which is a lasting con tribution to an important chapter of history

University of Allahabad,
ALLAHABAD

Sd/-RAM KUMAR VARMA
Head of Hindi Department.

सम्मतियाँ और समालोचनाएँ

DR. RAM KUMAR VARMA, Saket Phone No. 2016.
M. A. Ph. D., Hindi Vibhag

Ex Hindi Professor Moscow (USSR.) Vishwavidyalaya, Prayag

5 8. 1959

I have read the treatise HEMU AND HIS TIMES with great interest. It is divided into ten chapters and has a correct historical background. The matter has been gathered from authentic sources and an attempt has been made to make a coherent assessment of the historical events and personalities. The writer has discovered new facts and a co-relation has been established between reasons and realities. He has the capacity for the critical judgment and his conclusions are founded on rationalism and logic.

One fact must be brought into notice. The details of Hemu s biography are missing The psychological background of Hemu s character and the gradual stages which switched him off from trade into politics should have been gathered and presented with authentic accuracy For this, recourse should be made into persian records or the writings of the followers of Swami Hit Hari Vansh. Further research into realm of Hemu s mental make-up will improve the book which is a lasting con tribution to an important chapter of history

University of Allahabad,
ALLAHABAD

Sd/ RAM KUMAR VARMA
Head of Hindi Department.